सत्यमेव जयते

भारत सरकार

भारत का विधि आयोग

रिपोर्ट सं0 262

मृत्युदंड

अगस्त 2015

न्यायमूर्ति अजित प्रकाश शहा
भूतपूर्व मुख्य न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
अध्यक्ष
भारत का विधि आयोग
भारत सरकार
14वां तल, हिन्दुस्तान टाईम्स हाऊस,
कस्तूरबा गांधी मार्ग
नई दिल्ली – 110 001

अ.सा.सं0 6(3)263/2014-एलसी(एलएस) 31 अगस्त, 2015

प्रिय श्री सदानंद गौड़ा जी,

भारत के विधि आयोग ने भारत में मृत्युदंड के विषय पर अध्ययन करने के लिए उच्चतम न्यायालय से संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र [(2009)6 एससीसी498] और शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र'' [(2013)5 एससीसी 546] में ''इस विषय पर अद्यतन और जागरूक विचार-विमर्श तथा चर्चा किए जाने की अनुज्ञा देने के लिए एक निर्देश प्राप्त किया था।

यह पहली बार नहीं है कि आयोग से मृत्युदंड पर विचार करने के लिए कहा गया है—35वीं रिपोर्ट (''मृत्युदंड'', 1967), वस्तुत: इस विषय में एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट है। उस रिपोर्ट में भारत में मृत्युदंड बनाए रखने की सिफारिश की गई थी। उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह बनाम भारत संघ [एआईआर 1980 एससी 898] में मृत्युदंड की संवैधानिकता को बनाए रखा था, किन्तु उसने उसके दिए जाने में मनमानेपन को कम करने के लिए उसके लागू किए जाने को ''विरले मामलों में से विरलतम'' तक सीमित कर दिया था। तथापि, देश के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भ में 35वीं रिपोर्ट के पश्चात् से नाटकीय रूप से परिवर्तन हो गए हैं। इसके अतिरिक्त, मनमानापन 35 वर्षों में, मृत्युदंड संबंधी मामलों के न्यायनिर्णयन में, इस विषय पर सर्वप्रथम उदाहरण के अधिकथित किए जाने के समय से मुख्य चिंता का विषय रहा है।

तदुनसार, और इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि मृत्युदंड बहुत ही संवेदनात्मक प्रकृति का मुद्दा है, आयोग ने इस विषय पर एक व्यापक अध्ययन करने का विनिश्चय किया। मई, 2014 में आयोग ने एक परामर्श पत्र जारी करके जनता से टिप्पणियां आमंत्रित की और इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने नई दिल्ली में 11 जुलाई, 2015 को ''भारत में मृत्युदंड'' पर एक दिन का परामर्श सत्र आयोजित किया। तत्पश्चात् व्यापक विचार-विमर्श, चर्चा और गहराई से अध्ययन करके आयोग ने वर्तमान रिपोर्ट को आकार दिया है। इस विषय में आयोग की सिफारिश **''मृत्युदंड''** नामक आयोग की **रिपोर्ट सं0 262** के रूप में सरकार के विचारार्थ भेजी जा रही है।

अंशकालिक सदस्य प्रो0 (डा0) योगेश त्यागी द्वारा कुछ चिंताएं प्रकट की गई थीं, जिन्हें वर्तमान रिपोर्ट में सर्वोत्तम संभव सीमा तक हल करने का प्रयास किया गया है। तथापि, रिपोर्ट पर उनके हस्ताक्षर प्राप्त नहीं किए जा सके, क्योंकि वह देश के बाहर थे। न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) सुश्री ऊषा मेहरा, सदस्य ; श्री पी.के. मलहोत्रा, विधि सचिव और डा0 संजय सिंह, सचिव, विधायी विभाग, पदेन सदस्यों ने रिपोर्ट पर हस्ताक्षर न करने का चयन किया है और इस विषय पर अपनी टिप्पणियां प्रस्तुत की है, जो परिशिष्ट के रूप में इस रिपोर्ट के साथ संलग्न है।

सादर,

आपका,
ह/-
(अजित प्रकाश शहा)

श्री डी.वी.सदानंद गौड़ा
माननीय विधि और न्याय मंत्री
भारत सरकार
शास्त्री भवन
नई दिल्ली

रिपोर्ट सं0 262

मृत्युदंड

विषयवस्तु की सारणी

अध्याय	नाम	पृष्ठ
1	**प्रस्तावना**	**1-19**
क	उच्चतम न्यायालय से संदर्भ	1
ख	विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें	3
(i)	मृत्युदंड पर 35वीं रिपोर्ट (1967)	3
(ii)	फांसी के ढंग पर 187वीं रिपोर्ट (2003)	5
ग	35वीं रिपोर्ट की पुन:परीक्षा करने के लिए आवश्यकता	5
(i)	भारत में विकास	6
(ii)	1973 में नई दंड प्रक्रिया संहिता	8
(iii)	संवैधानिक सम्यक् प्रक्रिया के मानकों का प्रकट होना	10
(iv)	मृत्युदंड के मनमाने और व्यक्तिपरक रूप से लागू किए जाने संबंधी न्यायिक विकास	12
(v)	हाल के राजनैतिक विकास	14
(vi)	अंतरराष्ट्रीय विकास	15
घ	आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्शी प्रक्रिया	16
ड	वर्तमान रिपोर्ट	18
2	**भारत में मृत्युदंड का इतिहास**	**20-54**
क	संविधान-पूर्व इतिहास और संविधान सभा विचार-विमर्श	20
ख	विधायी पृष्ठभूमि	23
ग	विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें	25
(i)	विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट	25
(ii)	विधि आयोग की 187वीं रिपोर्ट	28
घ	भारत में मृत्युदंड की संवैधानिकता	29
(i)	जगमोहन से बचन सिंह तक	29
(ii)	आदेशात्मक मृत्युदंडादेश	37
(iii)	फांसी देने की पद्धति	39

(iv)	विलंब और मृत्युदंड	39
ड.	भारत में मृत्युदंड पर विधियां	42
(i)	मृत्युदंड के क्षेत्र के हाल में किए गए विस्तार	46
(ii)	मृत्युदंड और गैर मानव वध अपराध	47
(iii)	आज्ञापक मृत्युदंड की लगातार विद्यमानता	50
(iv)	मृत्युदंड और आतंक विरोधी विधियां	50
(v)	मृत्युदंड को समाप्त करने का प्रस्ताव करने वाले विधेयक	51
च	हाल में भारत में दिए गए मृत्युदंड	53
3	**अंतरराष्ट्रीय रुझान**	**55-108**
क	अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार विधि में विकास विरचना	58
(i)	अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार संधियों में मृत्युदंड	58
क.	अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा	60
ख.	मृत्युदंड समाप्त करने का उद्देश्य रखते हुए अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा का दूसरा वैकलपिक प्रोटोकाल	63
ग.	बालक के अधिकारों पर कन्वेंशन	64
घ.	यातना और क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन	65
ड.	अंतरराष्ट्रीय आपराधिक विधि	66
च.	भारतीय विधि में अंतरराष्ट्रीय संधि बाध्यताएं	68
(ii)	अंतरराष्ट्रीय विधि में मृत्युदंड से संबंधित रक्षोपाय	69
क.	आर्थिक और सामाजिक परिषद् रक्षोपाय	70
ख.	गैर न्यायिक, संक्षिप्त या मनमाने निष्पादनों पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्टें	73
ग.	यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजक व्यवहार अथवा दंड पर विशेष रिपोर्टर	74
(iii)	मृत्युदंड के संबंध में वैश्विक रूप से राजनैतिक बाध्यताएं	75
क.	महासभा संकल्प	76
ख.	संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद्	77
(iv)	मृत्युदंड और प्रत्यर्पण की विधि	78
ख	मृत्युदंड पर अंतरराष्ट्रीय रुझान	81

(i)	मृत्युदंड के संबंध में क्षेत्रीय रुझान	82
क.	अमरीका	82
ख.	यूरोप	85
ग.	अफ्रीका	91
घ.	एशिया और पैसिफिक	96
1.	दक्षिण एशिया	101
ग	निष्कर्ष	104
4	**मृत्युदंड के लिए दंड संबंधी न्यायोचित्य**	**109-154**
क	विचारण का क्षेत्र	109
ख	विधि आयोग की 35 वीं रिपोर्ट का दृष्टिकोण	111
ग	भयोपरतता	112
(i)	मृत्युदंड की भयपरतता के मूल्य पर आनुभविक साक्ष्य	116
(ii)	भयोपरतता की धारणाएं	121
क.	जानकारी संबंधी भूलें	122
ख.	युक्तिसंगतता संबंधी भूलें	123
(iii)	आतंकवाद का मामला	124
घ	असमर्थता	128
ड.	प्रतिशोध	131
(i)	बदले के रूप में प्रतिशोध	132
(ii)	प्रतिशोध, ऐसे दंड के रूप में, जिसके योग्य अपराधी हो	133
च	आनुपातिकता	136
छ	सुधार	141
(i)	सुधार के संबंध में उच्चतम न्यायालय	142
ज	अन्य महत्वपूर्ण विषय	146
(i)	जनता की राय	146
झ	सुधारात्मक न्याय की दिशा में गतिविधि	148
5	**मृत्यु से दंडनीय अपराधों में दंड देना**	**155-253**
क	बचन सिंह विरचना : मार्गनिर्देशित विवेकाधिकार और व्यक्ति विशेष पर आधारित दंड देना	155

ख	बचन सिंह विरचना का कार्यान्वयन	158
(i)	सैद्धांतिक विरचना	162
क.	माछी सिंह	163
ख.	अपराध केंद्रित फोकस	165
ग.	सामूहिक चेतना को धक्का और न्याय के लिए समाज की पुकार	169
घ.	अपराध परीक्षण, आपराधिक परीक्षण और विरले में से विरलतम का परीक्षण	173
(ii)	गुरुतरकारी और कम करने वाले समझे गए कारक	177
क.	गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार न करना	178
ख.	कम करने वाले कारक के रूप में आयु	179
ग.	गुरुतरकारी कारक के रूप में अपराध की प्रकृति	182
घ.	किसी भड़काने वाले कारक के रूप में अपराधी का पूर्व आपराधिक अभिलेख	187
ड.	सुधार की संभावना	189
(iii)	प्रज्ञा के नियम	194
क.	परिस्थितिजन्य साक्ष्य	195
ख.	न्यायाधीशों के बीच दोषिता या दंडादेश पर असहमति	197
(iv)	मृत्युदंड के अधिरोपण पर आनुभविक आंकड़े	205
क.	मृत्युदंड के अधिरोपण की दरें	205
ख.	'न्यायाधीश – केंद्रित' मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र	209
ग.	भौगोलिक विभिन्नताएं	211
ग	आपराधिक न्याय प्रक्रिया की व्यवस्था संबंधी और विरचना संबंधी चिंताएं	212
(i)	सुधार करने की क्षमता का निर्धारण करना	212
(ii)	आर्थिक और शैक्षणिक दुर्बलता	219
घ	आपराधिक न्याय प्रणाली की भ्रमशीलता और मृत्युदंड	227
(i)	दोष का अवधारण	228
(ii)	मृत्युदंड अधिरोपित करने में स्वीकार की गई गलती	236
(iii)	समान मामलों में 'विरले मामलों में से विरलतम' विरचना के लागू करने में विभिन्नाएं	241
6	**क्षमा करने संबंधी शक्तियां और मृत्युदंड का निष्पादन करने से संबंधित सम्यक् प्रक्रिया विवाद्यक**	**254-307**

क	प्रस्तावना	254
ख	क्षमा करने संबंधी शक्तियों की प्रकृति, प्रयोजन और क्षेत्र	254
ग	दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग की परीक्षा करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन का मानक	267
घ	दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग का न्यायिक पुनर्विलोकन करने वाले रिट न्यायालयों का कर्तव्य	269
ड.	राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 72 के अधीन शक्ति के प्रयोग में व्यक्तिपरकता	272
च	दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग का न्यायिक पुनर्विलोकन	277
(i)	दीर्घकालिक मानिसक बीमारी की उपेक्षा की गई : सुन्दर सिंह का मामला	279
(ii)	अन्वेषण और विचारण में लंबे विलंब अंतर्वलित करने वाले मामले	280
क.	गुरमीत सिंह का मामला	280
ख.	साइमन और अन्य के मामले	281
(iii)	राष्ट्रपति के लिए तैयार किया गया भागत: और अपूर्ण संक्षेप : महेंद्र नाथ दास का मामला	282
(iv)	मस्तिष्क का अनुपयोजन	282
क.	धनन्जय चटर्जी का मामला	282
ख.	बंडू बाबूराव तिडके का मामला	283
(v)	मामले के सुसंगत अभिलेखों तक पहुंचे बिना नामंजूर की गई दया याचिका : प्रवीण कुमार का मामला	283
(vi)	सदोष फांसी और क्षमा संबंधी प्रक्रिया की असफलता	284
क.	जीता सिंह का मामला	284
ख.	रवजी राव और सुरजा राम के मामले	285
(vii)	पश्चातवर्ती अनवधानता से किए गए घोषित निर्णयों के अधीन मृत्युदंड दिए गए अन्य कैदियों के मामले	287
(क)	ऐसे मामले, जिन्होंने रवजी के अनवधानता से किए गए विनिश्चय पर भरोसा किया है	287
(ख)	साई बन्ना का मामला	289
(ग)	संगीत और खादे द्वारा अनवधानता से किए गए अभिनिर्धारित विनिश्चय	290
छ	फांसी पूर्व स्थिति में मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषियों पर अधिरोपित दर्द और पीड़ा के संवैधानिक निहितार्थ	291
(i)	मृत्यु पंक्ति में सहनशील लंबे वर्ष	293

क.	प्राट में विलंब का पुनरीक्षित मानक	297
ख.	विलंबित निष्पादन किसी दंड संबंधी प्रयोजन की पूर्ति नहीं करता है और इसीलिए अत्यधिक है	301
(ii)	निरोध की अवैध एकांत दशाएं	303
ज	निष्कर्ष	306
7	**निष्कर्ष और सिफारिशें**	**308-314**
क	निष्कर्ष	308
ख	सिफारिश	313

	उपाबंध	
I	भाग लेने वालों की सूची, एक दिन का परामर्श	315-318

	परिशिष्ट	
क	न्यायमूर्ति (सेवानिवृत्त) सुश्री ऊषा मेहरा, सदस्य का टिप्पण	319 - 327
ख	डा0 संजय सिंह, सदस्य (पदेन) का टिप्पण	328 - 333
ग	श्री पी.के. मल्होत्रा, सदस्य (पदेन) का टिप्पण	334 – 343

अध्याय 1

प्रस्तावना

क. उच्चतम न्यायालय से संदर्भ

1.1.1 शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य ('खादे')[1] में भारत के उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंडादेश के विषय पर एक अपील के संदर्भ में कार्यवाही करते हुए, मृत्युदंड देने और क्षमा प्रदान करने के लिए संशक्त और नियमित प्रयोजन की कमी के बारे में अपनी चिंता व्यक्त की थी। न्यायालय ने इन दो विषयों पर भारत के विधि आयोग ('आयोग') से विनिर्दिष्ट रूप से हस्तक्षेप करने के लिए, यह टिप्पणी करते हुए, कहा :

> मुझे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि न्यायालय ने विरले मामलों में से विरलतम सिद्धांत लागू करते रहे हैं, किन्तु कार्यपालिका ने मृत्युदंडादेश को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित करने के लिए कुछ ऐसे तथ्यों को ध्यान में रखा है जो न्यायालयों को ज्ञात नहीं है। इस संबंध में, चूंकि हम व्यक्तियों (अपराधी और बलात्संग-हत्या के पीड़ित, दोनों) के जीवन से संबंधित है, यह अनिवार्य है कि न्यायालय मृत्युदंड देने के लिए और जब कि विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हों, न्यायशास्त्र संबंधी आधार अधिकथित करें, जिससे कि वर्तमान अनिश्चितता से बचा जा सके। मृत्युदंड और उसका निष्पादन अनिश्चितता का विषय नहीं होना चाहिए और न ही मृत्युदंडादेश को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित करना संयोग का विषय होना चाहिए। कदाचित भारत का विधि आयोग इस विषय की परीक्षा करके कि क्या मृत्युदंड एक भयपरतिकारी दंड है या प्रतिकरात्मक न्याय है या असमर्थ कर देने वाले उद्देश्य की पूर्ति करता है, इस विषय का समाधान कर सकता है।[2] (जोर दिया है)
>
> प्रथमदृष्टया यह प्रतीत होता है कि राज्य के दो महत्वपूर्ण अंग अर्थात् न्यायपालिका और कार्यपालिका, मृत्यु से दंडनीय किसी अपराध के दोषी सिद्धदोषियों के जीवन के साथ विभिन्न मानकों से व्यवहार कर रहे हैं। जबकि न्यायपालिका द्वारा लागू मानक विरले मामलों में से विरलतम सिद्धांत का है (यद्यपि यह अपने लागू किए जाने में विषयगत या न्यायाधीश केंद्रित हो सकती हैं) किन्तु न्यूनीकरण प्रदान करने में कार्यपालिका द्वारा लागू किया गया मानक ज्ञात नहीं है। अत: यह हो सकता है (और हुआ भी हो) कि प्रस्तुत मामले में सत्र न्यायाधीश, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय किसी सिद्धदोषी को मृत्युदंड देने के अपने विचार में एकमत हों और कोई अन्य विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो, किन्तु न्यायपालिका ने पूर्ण रूप से विरोधी राय रखी हो और मृत्युदंड को लघुकृत कर दिया हो। इस पर भी भारत के विधि आयोग द्वारा विचार किए जाने की आवश्यकता है।[3] (जोर दिया है)

1.1.2 खादे मृत्युदंड से संबंधित हाल का पहला उदाहरण नहीं था जिसे उच्चतम न्यायालय ने आयोग को मृत्युदंड से संबंधित प्रश्न के लिए निर्दिष्ट किया था। संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राष्ट्र ('बरियार')[4] में इस विषय पर आनुभविक अनुसंधान की कमी पर दुख प्रकट करते हुए न्यायालय ने कहा था :

> हमें यह भी ज्ञात है कि 18-12-2007 को राष्ट्र संघ महासभा ने उन देशों का आह्वान करते हुए, जिन्होंने मृत्युदंड को बनाए रखा है, मृत्युदंड समाप्त करने की दृष्टि से उसके निष्पादनों पर संपूर्ण विश्वव्यापी अधिस्थगन स्थापित करने के लिए संकल्प 62/149 को अंगीकार किया था। तथापि भारत 59 राष्ट्रों में से एक है, जिन्होंने मृत्युदंड को बनाए रखा है।

---

[1] (2013) 5 एससीसी 546।

[2] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546, पैरा 148 पर।

[3] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546, पैरा 149 पर।

[4] (2009) 6 एससीसी 498

विश्वसनीय अनुसंधान शायद भारत के विधि आयोग द्वारा या राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग, इस विषय पर अद्यतन और जागरूक चर्चा तथा विचार-विमर्श के लिए अनुज्ञा दे जा सकता है।[5] (जोर दिया है)

1.1.3 इस प्रकार वर्तमान रिपोर्ट में अधिकतर विचार-विमर्श उच्चतम न्यायालय के इन निर्देशों, परिवर्तित परिस्थितियों की दृष्टि से मृत्युदंड पर आयोग की अपनी सिफारिशों की पुन:परीक्षा की आवश्यकता है, द्वारा संचालित है।

ख. विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें

(i) मृत्युदंड पर 35वीं रिपोर्ट (1967)

1.2.1 आयोग ने दिसंबर, 1962 में ''मृत्युदंड'' संबंधी अपनी 35वीं रिपोर्ट पर कार्य आरंभ किया था, जो उसने दिसंबर, 1967 में प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट संसद् द्वारा भेजे गए एक निर्देश का परिणाम थी, जब तीसरी लोक सभा ने मृत्युदंड समाप्त करने के लिए श्री रघुनाथ सिंह, सदस्य लोक सभा द्वारा प्रस्तुत किए गए संकल्प पर बहस की थी।[6] आयोग ने कानूनी पुस्तकों में से मृत्युदंड समाप्त किए जाने के विषय पर विचार करने की व्यापक प्रक्रिया आरंभ की। विद्यमान सामाजिक-आर्थिक- सांस्कृतिक संरचनाओं (जिनके अंतर्गत शैक्षिक स्तर और आपराधिक दरें भी हैं) के अपने विश्लेषण के आधार पर और किसी भारतीय आनुभविक अनुसंधान के न होने पर इसने यह निष्कर्ष निकाला कि मृत्युदंड बनाए रखा जाना चाहिए।

1.2.2 इसकी सिफारिशों में कहा गया कि :

> मृत्युदंड समाप्त करने के लिए बहुत से तर्कों की विधिमान्यता को और उनके पीछे की शाक्ति को अपवर्जित करना कठिन है। आयोग न तो मृत्युदंड की अप्रतिसंहरणीयता के तर्क को हल्के से लेता है, मृत्युदंड की गंभीरता और मानवीय मूल्यों के गहरे प्रश्नों पर जोर देने में, जनता के कतिपय वर्गों द्वारा दर्शित गहरी भावनाओं के लिए आधुनिक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।
>
> तथापि, भारत की दशाओं, इसके नागरिकों के सामाजिक ताने बाने की विविधता, देश में नैतिकता और शिक्षा के स्तर में विभिन्नता को इसके क्षेत्र की विशालता, इसकी जनता की अनेक रूपता और वर्तमान घटना पूर्ण स्थिति में देश में विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए सर्वोच्च आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत मृत्युदंड समाप्त करने के प्रयोग की जोखिम नहीं उठा सकता है।
>
> ऐसे तर्क जो, विश्व के एक क्षेत्र के संबंध में विधिमान्य होंगे, इस संदर्भ में दूसरे क्षेत्र के संबंध में अच्छे नहीं हो सकते हैं। समान रूप से मृत्युदंड का समाप्त करना, चाहे भारत के कुछ भागों में महत्वपूर्ण अंतर न भी डाले तो भी दूसरे भागों में उसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। सभी अंतर्वलित मुद्दों पर विचार करने के पश्चात् आयोग की यह राय है कि मृत्युदंड भारत की वर्तमान स्थिति में बनाए रखा जाना चाहिए।[7]

(ii) फांसी के ढंग पर 187वीं रिपोर्ट (2003)

---

[5] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 112 पर।

[6] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1and3.pdf http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol2.pdf पर उपलब्ध है, (25.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[7] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

1.2.3 आयोग ने मृत्युदंड के विषय पर एक बार और—2003 में ''मृत्युदंड के निष्पादन का ढंग और आनुषंगिक विषय'' पर अपनी 187वीं रिपोर्ट में विचार किया।[8] यह आयोग द्वारा स्वप्रेरणा से उठाया गया विषय था, जो ''विज्ञान, प्रौद्योगिकी, ओषधि, निष्चेतकों के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय उन्नति''।[9] यह केवल फांसी के ढंग पर सीमित प्रश्न से संबंधित था और इसमें दंड के रूप में मृत्युदंड की संवैधानिकता और वांछनीयता के सारभूत प्रश्न पर विचार नहीं किया गया था।

ग. 35वीं रिपोर्ट की पुन:परीक्षा करने के लिए आवश्यकता

1.3.1 35वीं रिपोर्ट में आयोग का निष्कर्ष कि ''विद्यमान घटनापूर्ण स्थिति में भारत मृत्युदंड समाप्त करने के प्रयोग की जोखिम नहीं उठा सकता है''[10] और आयोग की सिफारिश कि ''मृत्युदंड देश की वर्तमान स्थिति में बनाए रखा जाना चाहिए''[11] उन दशाओं पर निर्भर थी और उनके द्वारा प्रभावी थी जो उस समय भारत में विद्यमान थी। भारत में उस समय से बहुत कुछ बदल गया है और विश्व में दिसम्बर, 1967 के पश्चात् से, इतना अधिक परिवर्तन हो गया है कि समकालीन संदर्भ में इस विषय पर पुन: विचार करना वांछनीय हो गया है। छह कारकों का विशेष रूप से उल्लेख किया जाना अपेक्षित है।

(i) भारत में विकास

1.3.2 मृत्युदंड समाप्त करने को नामंजूर करने वाली 35वीं रिपोर्ट में आयोग के निष्कर्ष ''भारत में स्थितियां, उसके निवासियों के सामाजिक ताने-बाने की विविधता, देश में नैतिकता और शिक्षा के स्तर में भिन्नता''[12] से संबंधित थे।

1.3.3 तथापि, शिक्षा, साधारण कुशल-क्षेत्र, सामाजिक तथा आर्थिक दशाएं 35 वीं रिपोर्ट लिखे जाने के समय से आज बहुत भिन्न है। उदाहरण के लिए प्रति व्यक्ति कुल राष्ट्रीय आय स्थिर कीमतों पर, 2004-2005 की आवलियों पर आधारित 2011-2012 में 1838.5 रुपए थी, जबकि यह 1967-1968 में यह 191.9 रुपए थी।[13] समान रूप से वयस्क शिक्षा 1961 में 24.02 प्रतिशत थी[14] और 2011 में 74.0 प्रतिशत थी[15] और जीवन प्रत्याशा (पोषण, स्वास्थ्य संबंधी देखभाल, आदि का

---

[8] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th report.pdf पर उपलब्ध है (25.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[9] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 5, http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[10] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[11] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[12] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[13] सारणी 1.1 देखिए, आर्थिक सर्वे 2014-2015 का सांख्यिकी परिशिष्ट http://indiabudget.nic.in/es2014-15/estat1.pdf पर उपलब्ध है (6.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[14] ''राज्य की साक्षरता'' भारत की जनगणना, भारत की जनगणना 1961, http://consusindia.gov.in/Data_Products/Library/Provisional_Population_Total_link/PDF_Links/chapter 7.pdf पर उपलब्ध है (19.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[15] ''राज्य की साक्षरता'' भारत की जनगणना, भारत की जनगणना 2011, http://consusindia.gov.in/2011-pro-results/data_film/mp/07Lieracy.pdf पर उपलब्ध है (19.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

उत्पाद) 1965-1970 में 47.1 वर्ष थी[16] और 2010-2015 में 64.9 वर्ष थी।[17]

1.3.4 आगे 35वीं रिपोर्ट में विद्यमान (ऊंची) अपराध की दर पर ''वर्तमान घटनापूर्ण स्थिति में'' मृत्युदंड समाप्त करने के प्रयोग का खतरा उठाने में अपना संकोच न्यायोचित ठहराया। इसमें अपनी चिंता निम्नलिखित रीति से प्रकट की :

> कुछ वर्षों के दौरान भारत में मानव वध के आंकड़ों ने कोई स्पष्ट कमी दर्शित नहीं की है। प्रति दस लाख जनसंख्या में मानव वध की दर भारत में बहुत से देशों से, जहां मृत्युदंड समाप्त कर दिया गया है, पर्याप्त रूप से ऊंची है।[18]

1.3.5 तथापि भारत में अपराध संबंधी रिपोर्टों[19] के अनुसार, जो राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो ('एनसीआरबी') और गृह मंत्रालय के तत्वाधान में प्रकाशित की गई है, मृत्यु दर 1992 से लगातार और अबाधित रूप से कम हो रही है, जब यह प्रति एक लाख जनसंख्या 4.6 थी,[20] 2013 के नवीनतम आंकड़ों के अनुसार मृत्यु दर प्रति लाख जनसंख्या 2.7 है, जो 2012 से जब वह 2.8 थी[21] और गिर गई है। मृत्यु दर में यह कमी फांसी देने की दर में तदनुसार कमी से मेल खा रही है, इस प्रकार यह इस बारे में प्रश्न उठाती है कि क्या मृत्युदंड आजीवन कारावास से बड़ा भयपरतिकारी प्रभाव रखता है।[22]

1.3.6 यह स्पष्ट है कि भारत में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशाएं, जिन्होंने आयोग को अपनी 35वीं रिपोर्ट में अपने निष्कर्ष निकालने में प्रभावित किया था, 1967 से पर्याप्त रूप से बदल गई हैं।

(ii) 1973 में नई दंड प्रक्रिया संहिता

1.3.7 35वीं रिपोर्ट में आयोग की सिफारिशें वर्तमान दंड प्रक्रिया संहिता ('दंप्रसं') जो 1973 में अधिनियमित की गई थी, से पूर्व की हैं। इसके परिणामस्वरूप धारा 354(3) में एक संशोधन लाया गया, जिसमें जब किसी ऐसे अपराध के लिए, जहां दंड आजीवन कारावास या मृत्यु हो सकती है, मृत्युदंडादेश अधिरोपित किया जाता है तो ''विशेष कारण'' दिए जाने की अपेक्षा की गई। बचन सिंह बनाम पंजाब ('बचन सिंह')[23] में उच्चतम न्यायालय ने इसका यह अभिप्रेत करने के रूप में निर्वचन किया कि हत्या के लिए सामान्य दंडादेश आजीवन कारावास होना चाहिए और यह कि विरले मामलों में से विरलतम में मृत्युदंड अधिरोपित किया जाना चाहिए।

---

[16] जन्म पर जीवन प्रत्याशा- दोनों लिंग सम्मिलित, 1965-70, यूएन डाटा, http://data.un.org/Data.aspx?q=india+life+expectancy+1965&d=PopDiv&=variableID%3a68%3bcrID%3a356%3btimeID%3a103%2c104 पर उपलब्ध है (19.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[17] जन्म पर जीवन प्रत्याशा- दोनों लिंग सम्मिलित, 1965-70, यूएन डाटा, http://data.un.org/Data.aspx?q=india+life+expectancy+1965&d=PopDiv&=variableID%3a68%3bcrID%3a356%3btimeID%3a112%2c113 पर उपलब्ध है (19.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[18] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 262, 263 http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[19] भारत में अपराध, राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो,http://ncrb.gov.in/CD-CII2013/Home.asp पर उपलब्ध है (2.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[20] भारत में अपराध, 2013 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो, http://ncrb.gov.in/ciiprevious/Data/CII-1992/CII-1992/table-2.pdf पर उपलब्ध है (8.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[21] भारत में अपराध, 2013 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो,http://ncrb.gov.in/CD-CII2013/figure%20at%20glance.pdf पर उपलब्ध है (8.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[22] युग मोहित चौधरी, हैंगिंग ऑन थ्योरीज, फ्रंटलाइन, 7 सितंबर 2012, 29-32

[23] (1980) 2 एससीसी 684

1.3.8 धारा 354(3) 35वीं रिपोर्ट की सिफारिशों के, जिनमें यह कहा गया था कि ''आयोग किसी ऐसे उपबंध (क) की सिफारिश नहीं करता कि हत्या के लिए साधारण दंडादेश आजीवन कारावास होना चाहिए किन्तु भड़काने वाली परिस्थितियों में न्यायालय मृत्युदंड दे सकता है'', विरुद्ध थीं।[24]

1.3.9 प्रसंगानुरूप से रिपोर्ट ने यह भी सिफारिश की कि भारतीय दंड संहिता की धारा 303 अपरिवर्तित रहे[25] (तत्पश्चात् मीठू बनाम पंजाब राज्य में इसे असंवैधानिक निर्धारित किया गया)[26] और यह कि मृत्युदंडादेश और वास्तविक फांसी[27] के बीच किसी न्यूनतम अंत:क्षेप की (तत्पश्चात् इसे शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ में चौदह दिन किया गया) आवश्यकता नहीं थी।[28] ऐसे विकास रिपोर्ट पर पुन: विचार करने के महत्व पर जोर देते हैं।

(iii) संवैधानिक सम्यक् प्रक्रिया के मानकों का प्रकट होना

1.3.10 1967 के पश्चात् भारत ने संविधान के अनुच्छेद 21 के निर्वचन में विस्तार को देखा है, जिसमें प्रतिष्ठा और सारवान तथा सम्यक् प्रक्रिया के अधिकार को भी पढ़ा गया है। अत्यधिक प्रसिद्ध मेनका गांधी बनाम भारत संघ[29] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विधि द्वारा विहित प्रक्रिया को ऋजु, न्यायसंगत और युक्तियुक्त होना चाहिए न कि कल्पनापूर्ण, दमनात्मक या मनमाना।[30]

1.3.11 पश्चातवर्ती बचन सिंह में न्यायालय ने यह कहा कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 354(3) मत्युदंड पर सम्यक् प्रक्रिया संबंधी विरचना का भाग है। इस संबंध में न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :

> ऐसी बहुत सी अन्य परिस्थितियां हैं जो हल्के दंडादेश का दिया जाना न्यायोचित ठहराती हैं। क्योंकि वहां भड़काने की प्रतिरोधी परिस्थितियां होती हैं। हम स्पष्ट रूप से न्यायिक कम्प्यूटर में ऐसी सभी स्थितियों को फीड नहीं कर सकते हैं क्योंकि वे अपूर्ण और ऊंचे समाज में ज्योतिष संबंधी परिबद्धताएं हैं। तथापि इस पर भी अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि मृत्युदंड के क्षेत्र में कम करने वाले कारकों की परिधि और धारण का धारा 354(3) में विस्तृत रूप से लिखी हुई दंड देने वाली नीति के अनुसार न्यायालय द्वारा उदार और व्यापक अर्थ लगाया जाना चाहिए। हत्यारों को फांसी पर लटकाना उनके

---

[24] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 7 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[25] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 4 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[26] (1983) 2एससीसी 277

[27] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1161-1162 (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf) पर उपलब्ध है (7.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया।

[28] (2014)3 एससीसी 1

[29] (1978) 1 एससीसी 248

[30] मेनका गांधी बनाम भारत संघ, (1978) 1 एससीसी 248, पैरा 48 पर

लिए कभी बहुत अच्छा नहीं रहा है, तथ्य और आंकड़े, चाहे अपूर्ण हों, जो भारत सरकार द्वारा दिए गए हैं, दर्शित करते हैं कि अतीत में न्यायालयों ने कभी कभार अत्यधिक दंड दिया है—एक तथ्य, जो कि उस सावधानी और दया को प्रमाणित करता है जिसका कि उन्होंने सदैव ऐसे गंभीर मामले में अपने दंड देने के विवेकाधिकार पर प्रयोग किया है। अत: इस चिंता को आवाज देना आवश्यक है कि न्यायालय, जिन्हें हमारे द्वारा दर्शित किए गए विस्तृत उदाहरणात्मक मार्ग निर्देशक तत्वों द्वारा सहायता प्राप्त होगी, इससे भी अधिक सावधानी और मानवीय चिंता के साथ इस दुर्भर कृत्य का निर्वहन करेंगे, जो धारा 354(3) में लिखी गई विधायी नीति के उस उच्च आदर्श निदेशित होंगे कि हत्या के सिद्धदोषी व्यक्तियों के लिए, आजीवन कारावास नियम है और मृत्युदंडादेश एक अपवाद। मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और स्थायी चिंता विधि के माध्यम से जीवन लेने के विरोध को बिना प्रमाण स्वीकार करती है। ऐसे विरले मामलों में से विरलतम में के सिवाय, जब कोई आनुकलपिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो, नहीं किया जाना चाहिए।[31] (जोर दिया गया)

1.3.12 विरले मामलों में से विरलतम मानक के अपने अन्तस्तल में मृत्युदंड की संकल्पना को ऐसे दंडादेश के रूप में रखता है जो जीवन के पूर्ण तिरस्कार में अद्वितीय है। न्यायालय ने, मानव जीवन और मानव गरिमा के लिए उसकी चिंता और इस दंड की पूर्ण अप्रतिसंहरणीयता के लिए उसकी मान्यता के भागरूप में आपराधिक विधि के अत्यधिक मांग करने वाले और विवश करने वाले मानकों में से एक को सोचकर निकाल लिया। विरले मामलों में से विरलतम उक्ति का प्रकटीकरण, जब ''आनुकलपिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो''[32], भारत में मृत्युदंड के संवैधानिक विनियमन का पूर्ण रूप से प्रारंभ था।

1.3.13 तथापि, यह महत्वपूर्ण है कि वार्षिक रूप से दिए गए मृत्यु दंडादेशों की संख्या पर एनसीआरबी द्वारा दिए गए आंकड़ों पर विचार किया जाए। औसतन रूप से एनसीआरबी बोर्ड ने अभिलिखित किया है कि 129 व्यक्तियों को प्रत्येक वर्ष या मोटे रूप से प्रत्येक तीसरे दिन एक व्यक्ति को मृत्युदंड से दंडादिष्ट किया जाता है। खादे में उच्चतम न्यायालय ने इन आंकड़ों पर ध्यान दिया और कहा कि यह संख्या 'वस्तुत: ऊंची'[33] है और वह यह सुझाव देते हुए प्रतीत हुए कि मृत्युदंड बचन सिंह में परिकलपित रूप से बहुत अधिक रूप में लागू किया जा रहा है। वास्तव में जैसा कि पश्चातवर्ती पृष्ठ सुझाव देते हैं, उच्चतम न्यायालय को स्वयं विरले मामलों में से विरलतम परीक्षण के सिद्धांतपूर्ण और निरंतर कार्यान्वयन की संभावना पर संदेह हुआ है।

(iv) मृत्युदंड के मनमाने और व्यक्तिपरक रूप से लागू किए जाने संबंधी न्यायिक विकास

1.3.14 बचन सिंह में न्यायालय की इस आशावादिता के बावजूद कि उसके मार्गनिर्देशक तत्व मृत्युदंड के मनमाने रूप से दिए जाने के खतरे को न्यूनतम करेंगे, इस विषय पर अभी तक चिंता बनी हुई है, ''मृत्युदंड मनमाने रूप से या सनकी रूप से अधिरोपित किया जाता है।''[34] बरियार में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि ''कम से कम कहने के लिए पूर्व उदाहरणों में कोई एकरूपता नहीं है'' अधिकांश मामलों में मृत्युदंड की, बिना कोई विधिक सिद्धांत अधिकथित किए हुए हमारे द्वारा पुष्टि की गई है या उसकी पुष्टि करने से इंकार किया गया है।[35]

---

[31] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 648, पैरा 209

[32] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 648, पैरा 209

[33] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी, पैरा 145--'दिए गए मृत्युदंड की संख्या ऊंची है, जिससे कि यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्या मृत्युदंड केवल विरले मामलों में से विरलतम में वास्तव में दिया जा रहा है।'

[34] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 15

[35] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 104 पर

1.3.15 ऐसी चिंताओं पर बहुत सारे अवसरों पर जोर दिया गया है जहां न्यायालय ने इंगित किया है कि बचन सिंह में प्रतिपादित विरले मामलों में से विरलतम की उक्ति को असमान रूप से लागू किया गया है। इस संदर्भ में यह निर्देशात्मक है कि आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[36], स्वामी श्रद्धानंद बनाम कर्नाटक राज्य ('स्वामी श्रद्धानंद')[37], फारूख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य ('गफूर')[38], संगीत बनाम हरियाणा राज्य ('संगीत')[39] और खादे[40] में उच्चतम न्यायालय के संप्रेक्षणों की परीक्षा की जाए। इन मामलों में न्यायालय ने यह अभिस्वीकार किया है कि मृत्युदंड के व्यक्तिपरक और मनमाने रूप से लागू किए जाने ने 'सिद्धांतपूर्ण दंड दिए जाने'' को ''न्यायाधीश केंद्रित दंड दिया जाना''[41] बना दिया है, जो ''न्यायपीठ का गठन करने वाले न्यायाधीशों की व्यक्तिगत अभिरुचि पर आधारित होता है।''[42]

1.3.16 यह ध्यान देने योग्य है कि उच्चतम न्यायालय ने स्वयं विभिन्न मामलों में मृत्युदंड के लागू किए जाने में गलतियों को स्वीकार किया है।[43]

(v) हाल के राजनैतिक विकास

1.3.17 कुछ हाल के विकास मृत्युदंड समाप्त करने के पक्ष में राजनैतिक मत में वृद्धि होने का संकेत देते हैं। बहुत हाल में, अगस्त, 2015 में, त्रिपुरा विधान सभा ने मृत्युदंड समाप्त करने की मांग करने वाले एक संकल्प के पक्ष में मतदान किया है।[44]

1.3.18 मृत्युदंड समाप्त करने के लिए मांग भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (भा.क.पा.), भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्कस्वादी) [भा.क.पा.-(मा.)], भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (मार्कस्वादी-लेनिनिस्ट लिब्रेशन) [भा.क.पा. मा.-ले)], विदुथलाई चिरुथाईगल काटची (वीसीके), मानिथनेया मक्कल काची (एमएमके), गांधिय मक्कल अयक्कम (जीएमआई), मारुमलारछी द्रविड़ मुनेत्र कड़गम (एमडीएमके) और द्रविड मुनेत्र कड़गम (डीएमके) द्वारा की गई हैं।[45]

---

[36] (2007) 12 एससीसी 230

[37] (2008) 13 एससीसी 767

[38] (2010) 14 एससीसी 641

[39] (2013) 2 एससीसी 452

[40] (2013) 5 एससीसी 546

[41] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452

[42] स्वामी श्रद्धानंद बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767

[43] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546 और संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452।

[44] सईद सज्जाद अली, त्रिपुरा ने मृत्युदंड के विरुद्ध संकल्प पारित किया, दि हिन्दू, 7 अगस्त, 2015।

[45] पीटीआई देखें, वामपंथी संयुक्त आंदोलन ने केंद्र से याकूब मेनन को फांसी न देने के लिए कहा, इकोनोमिक टाइम्स, 27 जुलाई, 2015; आईएएनएस, मृत्युदंड : सीपीई नेता डी राजा ने गैर सरकारी संकल्प पेश किया, इकोनोमिक टाइम्स, 31 जुलाई, 2015 ; ईटी ब्यूरो, मृत्युदंड समाप्त करने की मांग की ; डीएमके की कानीमोझी ने गैर सरकारी विधेयक का प्रस्ताव रखना चाहा, इकोनोमिक टाइम्स, 7 अगस्त, 2015 ; इसको भी देखें : मृत्युदंड का निरसन, सीपीआई एम-एल, 30 जून, 2015, http.//cpiml.in/cms/editorials/item/150-repeal-death-penalty) पर उपलब्ध है, (20.8.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया) ।

1.3.19 31 जुलाई, 2015 को भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के डी. राजा ने मृत्युदंड समाप्त किए जाने के लंबित रहते हुए मृत्युदंडादेश पर अधिस्थगन घोषित करने के लिए सरकार से कहते हुए एक गैर सरकारी सदस्य विधेयक पुर:स्थापित किया था ।[46] अगस्त, 2015 में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम की संसद् सदस्य कानिमोझी ने मृत्युदंड समाप्त करने की मांग करने वाला एक गैर सरकारी सदस्य विधेयक को राज्य सभा में पुर:स्थापित किया था। [47]

(vi) अंतरराष्ट्रीय विकास

1.3.20 1967 में, जब 35वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की गई थी, केवल 12 देशों ने सभी परिस्थितियों में सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड को समाप्त किया था ।[48] आज, 140 देशों ने विधि के अनुसार या व्यवहार में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है। आगे उन देशों की संख्या, जो ''सक्रिय प्रतिधारक'' रहे हैं अर्थात् जिन्होंने पिछले 10 वर्षों में कम से कम एक व्यक्ति को फांसी दी है, 2007 में 51 से घटकर 39 (जो अप्रैल 2014 में है) हो गई है ।[49] एक प्रवर्ग के देशों ने मामूली अपराधों जैसे हत्या, के लिए भी मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है और इसे अपवादात्मक अपराधों जैसे सैनिक विधि के अधीन अपराध या अपवादात्मक परिस्थितियों में अपराध, के लिए बनाए रखा है ।[50] मृत्युदंड का सबसे अधिक प्रयोग प्रकट रूप से ईरान, चीन, पाकिस्तान, सउदी अरब और सयुक्त राज्य अमेरिका में किया जाता है।

1.3.21 मृत्यु दंडादेश से और 35वीं रिपोर्ट के प्रकाशन के पश्चातवर्ती अंतरराष्ट्रीय रूप से मृत्युदंड समाप्त किए जाने की दिशा में किए जाने वाले उपायों से संबंधित विषयों पर ब्यौरे वार विचार किए जाने की आवश्यकता है।

घ. आयोग द्वारा अपनाई जाने वाली परामर्शी प्रक्रिया

1.4.1 इस विषय पर सभी हित धारकों के विचार समझने के क्रम में 20वें विधि आयोग ने मई, 2014 में एक परामर्श पत्र जारी किया था। आयोग ने उनसे उत्तर आमंत्रित किए, जो मृत्युदंड के विभिन्न पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त करने के इच्छुक थे।

1.4.2 आयोग को इस विषय पर विभिन्न विचारों सहित 350 उत्तर प्राप्त हुए, उन व्यक्तियों के लिए, जो मृत्युदंड का समर्थन कर रहे थे, प्राथमिक विचारण थे- मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव, समाज में प्रतिशोध और न्याय के लिए मांग, पीड़ित परिवार की मांगे, यह मांग कि दंड अपराध का आनुपातिक हो ; और यह विचार कि कतिपय 'जघन्य' अपराधी इस योग्य नहीं थे कि उन्हें सुधार के लिए अवसर प्रदान किया जाए। उन व्यक्तियों के लिए जो मृत्युदंड समाप्त करने की वकालत कर रहे थे, प्राथमिक चिंताएं न्यायालयों के भ्रमत्व और गलत दोषसिद्धि की संभावना ; किसी दंड संबंधी प्रयोजन की अनुपस्थिति और मृत्युदंड के विभेदकारी तथा मनमाने

---

[46] आईएएनएस, मृत्युदंड : सीपीआई नेता डी राजा, गैर सरकारी सदस्य ने संकल्प प्रस्तावित किया, इकोनोमिक टाइम्स, 31 जुलाई, 2015

[47] ईटी ब्यूरो, मृत्युदंड समाप्त करने की मांग की, डीएमके की कानीमोझी ने गैर सरकारी विधेयक का प्रस्ताव रखना चाहा, इकोनोमिक टाइम्स, 7 अगस्त, 2015।

[48] कोलंबिया (1910), कोस्टा रिका (1877), डोमिनिकन रिपब्लिक (1966), एक्वाडोर (1906), फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी (1949), होन्डुरस (1956), आइसलैंड (1928), मोनाको (1962), पनामा (1922), सैन मरीनो (1865), उरुगुआ (1907), वेनेजुएला (1863)। भारत का विधि आयोग, 35 वीं रिपोर्ट 1967, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (24.8.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया)।

[49] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 5 (5वां संस्करण 2015)।

[50] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 5 (5वां संस्करण 2015)।

कार्यान्वयन से संबंधित थीं। ध्यान देने योग्य है कि स्वर्गीय पूर्व भारत के राष्ट्रपति डा0 ए पी जे अब्दुल कलाम ने भी मृत्युदंड के विभेदकारी प्रभाव को विशेष रूप से बताते हुए परामर्श पत्र का उत्तर भेजा था।

1.4.3 इस विषय पर और उत्तर पाने के लिए, आयोग ने एक संपूर्ण दिन का परामर्श सत्र 11 जुलाई, 2015 को आयोजित किया था, जिसमें प्रसिद्ध विधिज्ञों, पारंगत न्यायाधीशों, राजनीतिक नेताओं, शिक्षाविदों, पुलिस अधिकारियों और सिविल समाज के प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया था। संपूर्ण दिन के परामर्श सत्र में भाग लेने वालों की ब्यौरेवार सूची इस रिपोर्ट के उपाबंध में दी गई है।[51] विचार-विमर्श में भारत की सांविधानिक बाध्यताओं, मृत्युदंड के लागू करने में मनमानेपन और विभेद, आपराधिक न्याय प्रणाली की गुणवत्ता और पुनर्वास विरचना की असफलता जैसे विषयों पर विचार किया गया था।

ड. वर्तमान रिपोर्ट

1.5.1 मृत्युदंड के समाप्त किए जाने के विषय पर व्यापक अध्ययन करने के क्रम में आयोग ने एक उप समिति बनाई। जिसके प्रधान अध्यक्ष थे और जिसमें दो अंशकालिक सदस्य थे- श्री वेंकट रमानी और प्रो0 (डा0) योगेश त्यागी और उसमें न्यायमूर्ति के.चंद्रू (सेवानिवृत्त), प्रो0 डा0 सी.राजकुमार, श्री दिलीप डिसूजा, डा0 मृणाल सतीश, डा0 अपर्णा चन्द्रा, सुश्री सुमथि चन्द्रशेखरन, सुश्री बृंदा भंडारी और सुश्री रागिनी आहूजा सममिलित थी । सुश्री सानिया कुमार और सुश्री सानिया सूद, जो दोनों राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली से विधि की विद्यार्थी थीं, ने टीम को व्यापक अनुसंधान सहायता दी। श्री प्रणय नाथ लेखी, सुश्री ज्योत्सना स्वामी, श्री अरविंद चारी, श्री हसरथ मेहता और सुश्री दीक्षा अग्रवाल, जो भारत के विधि आयोग में प्रशिक्षु थे और सुश्री कृतिका कडोड द्वारा दी गई सहायता भी प्रसंशनीय थी।

1.5.2 उप समिति के विभिन्न सदस्यों ने मृत्युदंड के विभिन्न पहलुओं पर संकल्पना पत्र तैयार किए। प्रारूपणों को तैयार करने और खादे तथा बरियार में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा आंकड़ा चालित अनुसंधान के लिए और विचार-विमर्श के लिए मांग को ध्यान में रखते हुए, सदस्यों ने मृत्युदंड से संबंधित विभिन्न अनुसंधान परियोजनाओं और अनुभवसिद्ध अध्ययनों पर भरोसा किया। इन प्रारूपणों पर उप समिति के विचार-विमर्शों के क्रम में और चर्चा की गई और उनका पुनरीक्षण किया गया। प्रारूपणों पर आयोग के पूर्ण कालिक सदस्यों, अर्थात् न्यायमूर्ति एसएन कपूर, न्यायमूर्ति ऊषा मेहरा और प्रो0 (डा0) मूलचंद्र शर्मा तथा अंशकालिक सदस्यों डा0 बीएन मणि और प्रो0 (डा0) गुरजीत सिंह के साथ भी विचार-विमर्श किया गया। उप समिति के सुझावों पर आधारित और आगे पुनरीक्षण किए गए और उसकी अंतिम रिपोर्ट संपूर्ण आयोग के समक्ष रखी गई। श्रीवेंकटरमानी और प्रो0(डा0) योगेश त्यागी ने ऐसे कई मूल्यवान सुझाव दिए जिन पर विचार किया गया। डा0 संजय सिंह, सचिव, विधायी विभाग और आयोग के पदेन सदस्य द्वारा प्रकट की गई चिंताओं पर भी विचार किया गया।

1.5.3 तत्पश्चात् व्यापक चर्चाओं, विचार-विमर्शों और गहरे अध्ययन के पश्चात् आयोग ने वर्तमान रिपोर्ट को आकार दिया।

[51] उपाबंध। देखिए

अध्याय 2

भारत में मृत्युदंड का इतिहास

क. संविधान-पूर्व इतिहास और संविधान सभा विचार-विमर्श

2.1.1 मृत्युदंड समाप्त करने का एक पूर्व प्रयास स्वतंत्रता पूर्व भारत में किया गया था, जब श्री दया प्रसाद सिंह ने 1931 में भारतीय दंड संहिता संबंधी अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त करने हेतु एक विधेयक पुर:स्थापित करने का प्रयास किया था। तथापि वह विधेयक विफल कर दिया गया।[52] लगभग उसी समय, मार्च, 1931 में ब्रिटिश सरकार द्वारा भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को फांसी दिए जाने के पश्चात् कांग्रेस ने कराची सत्र में एक संकल्प, जिसमें मृत्युदंड की समाप्ति के लिए मांग थी, प्रस्तावित किया।[53]

2.1.2 1947 और 1949 के बीच भारत की संविधान सभा के विचार-विमर्शों में मृत्युदंड की न्यायाधीश-केंद्रित प्रकृति, उसको देने में मनमानेपन, निर्धनता में रह रहे व्यक्तियों पर उसके विभेदकारी प्रभाव और गलती की संभावना के बारे में भी प्रश्न उठाए गए।[54]

2.1.3 उदाहरण के लिए, गलती की संभावना पर, पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कहा :

> यह सच है कि किसी व्यक्ति को प्रारंभिक न्यायालय में न्याय नहीं प्राप्त होता है। मैं जिला न्यायालयों की शिकायत नहीं कर रहा हूं। ऐसे बहुत से उपद्रवों के मामलों में, जिनमें 5 से अधिक व्यक्ति अंतर्वलित होते हैं, कई निर्दोष व्यक्तियों को आलिप्त कर लिया जाता है। मैं इस विषय पर प्राधिकार से बोल सकता हूं। मैं एक विधि व्यवसायी हूं और बहुत वर्षों से आपराधिक मामलों संबंधी विधि व्यवसाय कर रहा हूं।[55]

2.1.4 मृत्युदंड से अपील करने का अधिकार बहुत अधिक विचार-विमर्श का विषय है। इस संदर्भ में, प्रो0 सिब्बन लाल सक्सेना ने कहा :

> मैं अनुभव करता हूं कि ऐसे व्यक्तियों को, जिन्हें मृत्यु के लिए सिद्धदोषी घोषित किया जाता है, उच्चतम न्यायालय को अपील करने का अंतर्निहित अधिकार होना चाहिए और उन्हें इस बात का अवश्य ही संतोष होना चाहिए कि उनके मामलों को देश में सबसे उंचे अधिकरण द्वारा सुना गया है। मैंने ऐसे व्यक्तियों को देखा है, जो बहुत गरीब हैं, जो अपील करने के योग्य नहीं हैं क्योकि वे काउंसिल को फीस देने में समर्थ नहीं हैं। मैं देखता हूं कि अनुच्छेद 112 कहता है कि उच्चतम न्यायालय किसी निर्णय से अपील के लिए विशेष इजाजत दे सकता है किन्तु यह उन व्यक्तियों के लिए होगा जो धनवान हैं,

---

[52] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 12 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (24.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[53] विशेष संवाददाता, यह समय है जब मृत्युदंड को समाप्त कर दिया जाए : अय्यर, दि हिन्दू, 7 अगस्त, 2015 http://www.thehindu.com/news/nation/its-time-death-penalty-is-abolished-aiyar/article7509444.ece पर उपलब्ध है (24.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[54] 3 जून, 1949, भाग 2 की संविधान सभा डिबेट देखिए, जो http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol18p15b.htm पर उपलब्ध है (24.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[55] 3 जून, 1949 को संविधान सभा डिबेट, भाग 2, http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol18p15b.htm पर उपलब्ध है (24.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

जो आकाश-पाताल एक कर सकते हैं, किन्तु ऐसे साधारण व्यक्ति, जिनके पास धन नहीं है और जो गरीब हैं वह इस धारा का लाभ उठाने में स्वयं को समर्थ नहीं बना पाएंगे।[56]

2.1.5 डा0 अम्बेडकर व्यक्तिगत रूप से मृत्युदंड समाप्त करने के पक्ष में थे। उन्होंने कहा था :

मेरा दूसरा विचार यह है कि उच्चतम न्यायालय को, जिसे मृत्युदंडादेश के मामलों में अपीलें की जा सकती हैं, अपील संबंधी शक्ति प्रदान करने के लिए उपबंध किए जाने के बजाय, मैं मृत्युदंडादेश को ही समाप्त करने का समर्थन करूंगा। मैं समझता हूं कि यह उचित क्रम है और इससे यह विवाद ही समाप्त हो जाएगा। अंतत: यह देश अहिंसा के सिद्धांत में सार्वजनिक रूप से विश्वास करता है।यह इसकी पुरानी परंपरा रहीं है और हो सकता है जनता ने इसे वास्तव में व्यवहार में न अपना रही हो, किन्तु वे निश्चित रूप से नैतिक आदेश के रूप में अहिंसा के सिद्धांत का पालन करते हैं और जिसका उन्हें, जहां तक संभव हो सकता है, पालन करना चाहिए, मैं समझता हूं कि इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस देश के लिए उचित यही होगा कि मृत्युदंडादेश को पूर्णत: समाप्त कर दिया जाए।[57]

2.1.6 तथापि उन्होंने सुझाव दिया कि मृत्युदंडादेश पर विधान बनाने की वांछनीयता के विषय को संसद् के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए। इस सुझाव का आकस्मिक रूप से अनुसरण किया गया।

ख. विधायी पृष्ठभूमि

2.2.1 स्वतंत्रता प्राप्ति पर भारत ने ब्रिटिश औपनिवेशिक सरकार द्वारा बनाई गई विधियों को बनाए रखा, जिनमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 ('दंड प्रक्रिया संहिता, 1898'), और भारतीय दंड संहिता, 1860 ('भादंसं') सम्मिलित थीं। भारतीय दंड संहिता में छह दंडों को, मृत्युदंड सहित, विहित किया गया था, जिन्हें विधि के अधीन अधिरोपित किया जा सकता था।

2.2.2 ऐसे अपराधों के लिए, जहां मृत्युदंड वैकल्पिक था, दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 367(5) न्यायालय से वहां कारणों को, जहां न्यायालय ने मृत्युदंडादेश न देने का विनिश्चय किया था, कारण अभिलिखित करने की अपेक्षा करती थी :

यदि अभियुक्त, मृत्यु से दंडनीय किसी अपराध का सिद्धदोषी है और न्यायालय उसे मृत्यु से भिन्न कोई दंड देता है, तो न्यायालय अपने निर्णय में उन कारणों को कथित करेगा कि उसने मृत्यु का दंडादेश क्यों नहीं दिया।

2.2.3 1955 में संसद् ने मृत्युदंडादेश की स्थिति को महत्वपूर्ण रूप से परिवर्तित करते हुए दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 367(5) को निरसित कर दिया। मृत्युदंड अब कोई संननियम नहीं रह गया और न्यायालयों को ऐसे विशेष कारणों को कथित करने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई कि वे ऐसे मामलों में मृत्युदंडादेश को क्यों नहीं दे रहे थे, जहां वह विहित दंड था।

2.2.4 दंड प्रक्रिया संहिता को 1973 ('दंप्रसं') में पुन: अधिनियमित किया गया था और कई परिवर्तन किए गए थे, जिनमें से ध्यान देने योग्य धारा 354 (3) का था :

---

[56] 3 जून, 1949 को संविधान सभा डिबेट, भाग 2, http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol18p15b.htm पर उपलब्ध है (24.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[57] 3 जून, 1949 को संविधान सभा डिबेट, भाग 2, http://parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol18p15b.htm पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

> जब दोषसिद्धि मृत्यु से, अथवा अनुकल्पत: आजीवन कारावास से या कई वर्षों की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए है, तब निर्णय में, दिए गए दंडादेश के कारणों का और मृत्यु के दंडादेश की दशा में ऐसे दंडादेश के लिए विशेष कारणों का कथन होगा।

2.2.5 यह 1955 के संशोधन का अनुसरण करने वाली स्थिति से (जहां कारावास और मृत्युदंड की अवधियां किसी मृत्युदंड वाले मामले में समान संभावनाओं वाली थीं) महत्वपूर्ण उपांतरण था, और 1898 की विधि के अधीन, (जहां मृत्युदंडादेश संनियम था और उन कारणों को, यदि कोई अन्य दंड अधिरोपित किया गया था तो अभिलिखित किया जाना था) स्थिति से उलट था। अब न्यायाधीशों को उन विशेष कारणों को, जिनसे उन्होंने मृत्युदंडादेश अधिरोपित किया था, देने की आवश्यकता थी।

2.2.6 इन संशोधनों ने धारा 235(2) में किसी दंडादेश पर, जिसके अंतर्गत मृत्युदंडादेश भी सम्मिलित था, दोषसिद्धि पश्चात् सुनवाई की संभावना को प्रारंभ किया :

> यदि अभियुक्त सिद्धदोषी है तो न्यायाधीश, जब तक कि वह धारा 360 के उपबंधों के अनुसार अग्रसर नहीं होता है, दंडादेश के प्रश्न पर अभियुक्त को सुनेगा और तत्पश्चात् उसे विधि के अनुसार दंडादेश देगा।

ग. विधि आयोग की पूर्व रिपोर्टें

(i) विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट

2.3.1 विधि आयोग ने 1967 में **'मृत्युदंड'** पर अपनी 35वीं रिपोर्ट यह सिफारिश करते हुए विमोचित की थी कि मृत्युदंड बनाए रखा जाए। उसे समाप्त करवाने वालों और बनाए रखने वालों के तर्कों पर, विभिन्न देशों में मृत्युदंड की स्थिति और मृत्युदंड के उद्देश्यों पर विचार करने के पश्चात्, आयोग ने यह सिफारिश की कि भारत में मृत्युदंड को बनाए रखा जाए और यह कहा कि :

> तथापि भारत की दशाओं, उसके निवासियों के सामाजिक पालन पोषण की विभिन्नताओं, देश में नैतिकता और शिक्षा के स्तर में असमानताओं, उसके क्षेत्र की विशालता, उसकी जनता की विविधता और वर्तमान स्थिति में देश में विधि और व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए भारत मृत्युदंड को समाप्त करने के प्रयोग की जोखिम नहीं उठा सकता है।[58]

2.3.2 आयोग ने यह भी जोड़ा कि मृत्युदंड का भयपरतिकारी उद्देश्य 'उसका अत्यधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य था', और यह कि 'यह उसका कठोरतम न्यायोचित्य' था।[59] आयोग ने न्यायालयों के उस विवेकाधिकार पर भी टिप्पणी की जो वे मृत्युदंड या आजीवन कारावास अधिरोपित करने में रखते थे, उसने यह पाया कि 'ऐसे विवेकाधिकार का निहित करना आवश्यक है और ऐसे विवेकाधिकार को प्रदान करने वाले उपबंध संतोषप्रद रूप से कार्य कर रहे हैं'।[60] उसने यह भी कहा कि 'देश की वर्तमान स्थिति में' भारत मृत्युदंड समाप्त करने के प्रयोग की जोखिम नहीं उठा सकता, ऐसा करने से नागरिकों के जीवन को खतरा हो जाएगा।[61] आयोग ने यह भी कहा कि 'ऐसे व्यक्ति, जिनके पास पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं हैं और जो किसी अन्य कारण से मामले को अंत तक नहीं ले जा सकते हैं, कष्ट

---

[58] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 293 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[59] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 295 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[60] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 580 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[61] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 265 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

उठाते हैं और यह कि विधि साबित करती है कि वह उनके प्रति अन्यायपूर्ण है, यह एक ऐसा तर्क है, जो सारवान् दांडिक विधि के बजाय विधिक सहायता के विषय से संबंधित है।'[62]

2.3.3 इस पर विचार करते हुए कि यदि किसी न्यायालय को, जब वह इस पर अपना विनिश्चय करता है कि मृत्युदंड अधिरोपित किया जाना चाहिए था या नहीं, कारण देने चाहिए, आयोग ने सिफारिश की कि विधि को 'न्यायालय से, जब कभी वह किसी मृत्युदंड में दोनों दंडादेशों में से किसी में बचना चाहता हो, कारण कथित करने की अपेक्षा' किए जाने के लिए' परिवर्तित किया जाना चाहिए।[63] आयोग की 41वीं रिपोर्ट ने दंड प्रक्रिया संहिता 1898 को पुनरीक्षित करने और पुन: अधिनियमित करने के लिए इस सिफारिश पर पुन: जोर दिया।[64]

2.3.4 35वीं रिपोर्ट में आयोग ने कुछ आनुषंगिक विषयों पर सिफारिशें की। उदाहरण के लिए उसने ऐसे मामलों में, जहां मृत्युदंडादेश की या तो पुष्टि की गई थी या किसी उच्च न्यायालय द्वारा उसे अधिरोपित किया गया था, यह देखते हुए कि यह आवश्यक नहीं था, उच्चतम न्यायालय को अपील करने के अधिकार के प्रश्न पर विचार किया।[65] आयोग की 187वीं रिपोर्ट ने इससे भिन्न सिफारिश की थी।[66]

2.3.5 समान रूप से जबकि 35वीं रिपोर्ट को मृत्युदंडादेश देने के लिए न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करने की बात भी स्वीकार्य लगी, पश्चातवर्ती उच्चतम न्यायालय ने मामलों में देखा कि यह क्यों समस्या मूलक है।[67] 35वीं रिपोर्ट में भारतीय दंड संहिता की धारा 303 को भी बनाए रखने की सिफारिश की गई, जो आदेशात्मक मृत्युदंड के लिए उपबंध करती है। तथापि, उच्चतम न्यायाल ने मीठे बनाम पंजाब राज्य में 1987 में इसे असंवैधानिक अभिनिर्धारित कर दिया।[68]

---

[62] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 265 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[63] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 265 पर, (मुख्य निष्कर्षें और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[64] भारत का विधि आयोग, 41वीं रिपोर्ट, 1969, पैरा 26.9 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 41.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[65] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 982 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[66] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2003, पैरा 2- ''''आगे इस समय उन मामलों में, जहां उच्च न्यायालय किसी सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए मृत्युदंडादेश की पुष्टि करता है या जहां उच्च न्यायालय सत्र न्यायाधीश द्वारा पारित दंडादेश में वृद्धि करता है और मृत्युदंड देता है, उच्चतम न्यायालय को अपील करने का कोई कानूनी अधिकार नहीं है। आयोग विभिन्न उत्तरों और विचारों पर विचार करने के पश्चात् मृत्युदंड की पुष्टि करने वाले या उसे देने वाले उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील के कानूनी अधिकार का उपबंध करने के लिए सिफारिश करती है' http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[67] आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य , (2007) 12 एससीसी 230; स्वामी श्रद्धानंद बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी ; संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र, (2009) 6 एससीसी 498 ; फारूख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र , (2010) 14 एससीसी 641।

[68] (1983) 2 एससीसी 277।

(ii) विधि आयोग की 187वीं रिपोर्ट

2.3.6 2003 में आयोग ने **''फांसी देने का तरीका और आनुषंगिक विषय''** पर अपनी 187वीं रिपोर्ट प्रस्तुत की ।[69] आयोग ने अपनी 35वीं रिपोर्ट के पश्चात् से ''विज्ञान, प्रौद्योगिकी, औषधीय, निष्चेतकों के क्षेत्र में प्रौद्योगिकीय उन्नतियों''[70] के कारण स्वप्रेरणा से इस विषय पर कार्रवाई की थी । इस रिपोर्ट ने इस विषय को संबोधित नहीं किया कि क्या मृत्युदंड वांछनीय था । इसके बजाय इसने अपने आप को तीन विषयों : क. फांसी देने की पद्धति ; ख. मृत्युदंड देने में उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के बीच न्यायिक मतों में भिन्नताएं दूर करने की प्रक्रिया; और (ग) मृत्युदंडादेश संबंधी मामलों में उच्चतम न्यायालय को अभियुक्त के अपील करने के अधिकार के लिए उपबंध करने की आवश्यकता तक सीमित कर लिया ।[71]

2.3.7 जनता की राय प्राप्त करने के पश्चात् और भारत में तथा अन्य देशों में इन विषयों पर व्यवहार का अध्ययन करने के पश्चात्, विधि आयोग ने सिफारिश की कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(5) का, फांसी पर लटकाने के अतिरिक्त फांसी देने की पद्धति के रूप में विषैला इंजेक्शन देने के लिए संशोधन किया जाए । पर आयोग ने यह भी सिफारिश की कि ऐसे मामलों में उच्चतम न्यायालय को अपील करने का कानूनी अधिकार होना चाहिए, जहां उच्च न्यायालय मृत्युदंड की पुष्टि करता है या दंडादेश को बढ़ाकर मृत्युदंड कर देता है । इसके अतिरिक्त इसने सिफारिश की कि सभी मृत्युदंडादेश संबंधी मामलों को उच्चतम न्यायालय की कम से कम पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुना जाना चाहिए । [72]

घ. भारत में मृत्युदंड की संवैधानिकता

(i) जगमोहन से बचन सिंह तक

2.4.1 भारत में मृत्युदंड की संवैधानिकता को पहली चुनौती जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ('जगमोहन') के मामले में मिली ।[73] अर्जीदारों ने तर्क दिया कि मृत्युदंड भारत के संविधान के अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 19, और अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण करता है । यह तर्क दिया गया कि मृत्युदंड, जीवन के साथ, अनुच्छेद 19(1)(क) से (छ) तक के अधीन गारंटीकृत सभी स्वतंत्रताओं को समाप्त कर देता है, अत: यह इन स्वतंत्रताओं का अयुक्तियुक्त प्रत्याख्यान था और यह जनता के हित में नहीं था । आगे अर्जीदारों ने तर्क दिया कि न्यायाधीशों में मृत्युदंडादेश अधिरोपित करने के लिए विनिश्चय करने का निहित विवेकाधिकार अनियंत्रित था और मार्गदर्शित नहीं था तथा अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण करता था । अंतिम रूप से यह तर्क दिया गया कि क्योंकि विधि के उपबंध मृत्युदंड और आजीवन कारावास के बीच चयन करने के लिए कठिन परिस्थितियों का विचार करने के लिए किसी प्रक्रिया का उपबंध नहीं करते थे, अत: यह अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण था । फरमैन बनाम जार्जिया में अमेरिकन उच्चतम न्यायालय का विनिश्चय, जिसमें मृत्युदंड को क्रूर होने के कारण असंवैधानिक घोषित किया गया था और असाधारण दंड भी संवैधानिक न्यायपीठ के समक्ष रखा गया था ।

---

[69] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2003 http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[70] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2003, पैरा 5, http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[71] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2003, पैरा 7, http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[72] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2003, पैरा 3, http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[73] (1973) 1 एससीसी ।

2.4.2 मृत्युदंड को अपवादात्मक दंडादेश बनाने वाला यह मामला दंड प्रक्रिया संहिता को 1973 में पुन: अधिनियमित किए जाने के पूर्व, विनिश्चित किया गया था।

2.4.3 जगमोहन में उच्चतम न्यायालय ने पाया कि मृत्युदंड अनुज्ञेय दंड था और यह संविधान का अतिक्रमण नहीं करता था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि :

> मानकों को अधिकथित करने की असंभवता भारत में प्रशासित रूप में आपराधिक विधि के मूल में है, जो न्यायाधीशों में दंड की डिग्री नियत करने के मामले में बहुत व्यापक विवेकाधिकार को निहित करती है। दंडादेशों के मामले में वह विवेकाधिकार, जैसा पहले ही बताया जा चुका है, उच्चतर न्यायालयों द्वारा सही किए जाने का दायी है..... । मान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग, अंतिम विश्लेषण में, अपराधी के लिए सबसे सुरक्षित संभव रक्षोपाय है।[74]

2.4.4 न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि :

> यदि विधि ने अपराध की सभी भड़काने वाली और उसे न्यून करने वाली परिस्थितियों को तौलने के पश्चात् न्यायाधीश को दंडादेश के मामले में उसके द्वारा प्रयोग किए जाने वाला व्यापक विवेकाधिकार दिया है, तो यह कहना असंभव होगा कि उसमें कोई भी विभेद होगा क्योंकि एक मामले के तथ्य और परिस्थितियां कठिनाई से वैसी हो सकती हैं जैसे तथ्य और परिस्थितियां दूसरे मामले की हो सकती हैं।[75]

2.4.5 उसी समय के लगभग 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता के विधि बनने के ठीक पूर्व, उच्चतम न्यायालय ने भी एडिगा अनम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य के मामले में दंडादेश पर दोषसिद्धि पश्चात् सुनवाई प्रारंभ करने की बुद्धिमत्ता पर टिप्पणी की।[76] मृत्युदंडादेश को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने में न्यायालय ने निम्नलिखित कहा :

> किसी भी वैज्ञानिक प्रणाली में, जो दंडादेश के प्रक्रम पर ध्यान, न केवल अपराध पर बल्कि अपराधी पर भी केंद्रित करता है और दंड को व्यक्तिगत करना चाहता है जिससे कि सुधारात्मक संघटक उतना ही सक्रिय हो जितना कि भयपरतिकारी तत्व, यह अनिवार्य है कि सामाजिक और व्यक्तिगत प्रकृति के तथ्यों को, कभी-कभी वह पूर्णरूप से असंगत हो सकते हैं यदि दोष नियत करने के प्रक्रम पर हानिकारक न भी हों तो, न्यायालय के ध्यान में लाया जाना होगा, जब वास्तविक दंडादेश का अवधारण किया जाता है।[77]

2.4.6 न्यायालय के विचार में विधि के परिवर्तन, 'सावधानीपूर्वक आंशिक रूप से समाप्त करने और पूर्ण रूप से बनाए रखने से वापस आने की दिशा में' प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं'।[78] किसी ऐसे कथन में, जो ऐसी चिंताओं को प्रतिबिंबित करता है, जिन्होंने स्पन्दन प्राप्त कर लिया है, न्यायालय ने कहा, 'जीवन और मृत्यु पर किसी विधिक नीति को तदर्थ मन:स्थिति या व्यक्तिगत अभिरुचि के लिए नहीं छोड़ा जा सकता है और इसलिए हमने उसे संभव सीमा तक, प्रतिशोधात्मक निष्ठुरता को त्यागते हुए जीवन समाप्त कर देने के अत्यधिक

---

[74] जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1973) 1 एससीसी 20, पैरा 26 पर।

[75] जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1973) 1 एससीसी 27, पैरा 26 पर।

[76] (1974) 4 एससीसी 443।

[77] एडिगा अनम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1974) 4 एससीसी 443, पैरा 14 पर।

[78] एडिगा अनम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1974) 4 एससीसी 443, पैरा 21 पर।

और अप्रतिसंहरणीय दंड के विरुद्ध भयपरतिकारक मत का संशोधन करते हुए और प्रवृतति को स्वर देते हुए उद्देश्य पूर्ण बनाना चाहा है ।'[79]

2.4.7 1979 में राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य ('राजेंद्र प्रसाद')[80] के मामले में इस पर विचार-विमर्श किया गया था कि मृत्युदंडादेश को अधिरोपित करने में क्या 'विशेष कारण' हो सकते हैं। न्यायालय ने स्वयं को मृत्युदंड की संवैधानिकता से नहीं किन्तु दंडादेश देने के विवेकाधिकार से विरोध रखते हुए पाया । न्यायालय ने बहुमत के अनुसार (दो न्यायाधीशों के) कहा, 'मृत्युदंड' अधिरोपित करने के लिए आवश्यक विशेष कारण उसी रूप में अपराध से नहीं किन्तु अपराधी से अवश्य संबंधित होने चाहिए ।'[81] उन्होंने दंडादेश देने में सुधार पर ध्यान केंद्रित किया यद्यपि उन्होंने अभिनिर्धारित किया कि यह केवल अपराध की प्रकृति नहीं है जो दंडादेश का विनिश्चय करने में सुसंगत होगी। न्यायालय ने कहा, 'प्रतिशोधात्मक सिद्धांत' का अपना दिन था और अब यह विधिमान्य नहीं रह गया है। भयपरतिकारिता और सुधार प्रारंभिक सामाजिक उद्देश्य हैं जो दांडिक रामबाण के रूप में जीवन और स्वतंत्रता से वंचित किया जाना युक्तियुक्त बनाते हैं।'[82] महत्वपूर्ण रूप से उन चिंताओं को स्वर देते हुए, जो पुन: प्रकट होनी आरंभ हो गई हैं न्यायालय ने पूछा : 'अधिकांशत: वे कौन से मनुष्य हैं, जिन्हें फांसी का तख्ता निगल जाता है'[83] और पाया कि कुछ अपवादों सहित ये 'पुश्तैनी ग्रामीण.....कार्य करने वाले कार्यकर्ता.....राजनैतिक विरोध करने वाले.....बेघर और भटके हुए व्यक्ति हैं जिन्हें समाज ने उपेक्षा करके सड़क पर घूमने वाला कठोर व्यक्ति बना दिया है या गरीब गृहस्वामी-पति या पत्नी, जो आवेश के विस्फोटों से उत्तेजित थे।'[84] उन्हें अत्यधिक दंड दिया गया था।

2.4.8 1979 में उच्चतम न्यायालय की विभिन्न न्यायपीठों ने दलबीर सिंह बनाम पंजाब राज्य[85] और बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य[86] के मामलों में सुनवाई की। जबकि दलबीर सिंह में किसी विनिश्चय पर पहुंचने के लिए राजेंद्र प्रसाद पर भरोसा किया गया था, बचन सिंह में न्यायपीठ ने देखा कि राजेंद्र प्रसाद में निर्णय जगमोहन में किए गए विनिश्चय के विरुद्ध था और उन्होंने उसे संवैधानिक न्यायपीठ को निर्दिष्ट कर दिया। इसका परिणाम बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य ('बचन सिंह') में संवैधानिक न्यायपीठ के प्रमुख निर्णय के रूप में सामने आया।[87]

2.4.9 बचन सिंह में मृत्युदंड की चुनौती को, अन्य बातों के साथ, उलटने योग्य न होने और भ्रमशील होने तक सीमित कर दिया गया था और यह कि दंड आवश्यक रूप से क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक है। यह भी प्रतिवाद किया गया था कि भयपरतिकारिता का दंड संबंधी प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ था, प्रतिशोध दंडके आधार पर स्वीकार्य नहीं था और यह कि सुधार और पुनर्वास दो बातें थी, जो दंड का प्रयोजन थीं।

---

[79] एडिगा अनम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, (1974) 4 एससीसी 443, पैरा 26 पर।

[80] (1979) 3 एससीसी 646।

[81] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 3 एससीसी 646, पैरा 88 पर।

[82] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 3 एससीसी 646, पैरा 88 पर।

[83] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 3 एससीसी 646, पैरा 77 पर।

[84] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 3 एससीसी 646, पैरा 77 पर।

[85] (1979) 3 एससीसी 745।

[86] (1980) 2 एससीसी 684।

[87] (1980) 2 एससीसी 684।

2.4.10 इस मामले की सुनवाई करने वाले पांच न्यायाधीशों में से चार ने इस तर्क को स्वीकार नहीं किया कि मृत्युदंड असंवैधानिक था। उन्होंने राजेंद्र प्रसाद को उलट दिया और जगमोहन की पुष्टि कर दी, जब उन्होंने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड को उन मामलों तक निर्बंधित नहीं किया जा सकता है, जब कि राज्य और समाज की सुरक्षा, लोक व्यवस्था और सामान्य जनता के हित संकट में पड़ते हों। उन्होंने अभिनर्धारित किया कि गलतियों को उच्चतर न्यायालयों द्वारा ठीक किया जा सकता है और दंडादेश-पूर्व की सुनवाई और वह प्रक्रिया, जो उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि की अपेक्षा करती है, गलतियों को ठीक कर देगी।

2.4.11 बचन सिंह में न्यायालय ने मृत्युदंड का अधिरोपण करने के लिए 'विरले मामलों में से विरलतम' मार्गदर्शक सिद्धांत को स्वीकार किया और यह कहा कि मृत्युदंड अधिरोपित करने या अधिरोपित न करने के कारणों में अपराध की या अपराधी की परिस्थितियां सम्मिलित होनी चाहिए। यह वह भी मामला था जहां न्यायालय ने दंडादेश देने की अपनी प्रक्रिया में निश्चित रूप से अंतर किया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> इस उपबंध के संदर्भ में अभिव्यक्ति 'विशेष कारणों' से स्पष्टत: अपराध और साथ ही अपराधी से संबंधित विशिष्ट मामले की अपवादात्मक रूप से गंभीर परिस्थितियों में पाए गए 'अपवादात्मक कारण' अभिप्रेत थे।[88]

2.4.12 उसमें आगे जोड़ा :

> इस पर और अधिक जोर नहीं दिया जा सकता कि मृत्युदंड के क्षेत्र में कम करने वाले तथ्यों की परिधि और संकल्पना का न्यायालयों द्वारा धारा 354(3) में विस्तृत रूप से लिखी हुई दंडादेश देने की नीति के अनुसार उदार और व्यापक अर्थांवयन किया जाना चाहिए। न्यायाधीशों को कभी खून का प्यासा नहीं होना चाहिए.....अत: इस चिंता को स्वर देना आदेशात्मक है कि न्यायालय, जो हमारे द्वारा निर्देशित ऐसे विस्तृत उदाहरणात्मक मागदर्शक सिद्धांतों द्वारा सहायता प्राप्त हैं, जो धारा 354(3) में लिखी गई उच्च विधायी नीति के साथ निदेशित किए गए हैं, अर्थात् यह कि हत्या के सिद्धदोषी व्यक्ति के लिए आजीवन कारावास नियम है और मृत्युदंड अपवाद, और अधिक सावधानी तथा मानवीय चिंताओं के साथ दुर्भर कृत्य का निर्वहन करेंगे। मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और आबद्धकारी चिंता विधि की सहायता के माध्यम से जीवन लेने के प्रतिरोध को मानती है। उसे विरले मामलों में विरलतम में के सिवाए, जबकि आनुकलपिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो, नहीं दिया जाना चाहिए।[89] (जोर दिया गया)

2.4.13 न्यायमूर्ति भगवती ने अपने विरोधी मत में मृत्युदंड को मनमाना, विभेदकारी और सनकी पाया, उन्होंने कारण दिया कि 'मृत्युदंड' अपने वास्तविक प्रवर्तन में विभेदकारी है क्योंकि वह अधिकतर गरीब और समाज के वंचित अनुभागों के विरुद्ध दिया जाता है और अमीर तथा समृद्ध व्यक्ति सामान्यतया उसके पंजों से बच जाते हैं। यह परिस्थिति भी मृत्युदंड की मनमानी और सनकी प्रकृति में वृद्धि करती है और अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 के अतिक्रमणकारी होने के रूप में इसे असंवैधानिक बनाती हैं।'[90]

2.4.14 1991 में शशि नायर बनाम भारत संघ,[91] में मृत्युदंड को एक बार फिर, अन्य कारणों के साथ, आयोग की 35वीं रिपोर्ट ने बचन सिंह में भरोसा किए जाने के लिए चुनौती दी। न्यायालय ने उस याचिका को, देश में विधि और व्यवस्था की गिरती हुई अवस्था का उदाहरण देकर इस संप्रेक्षण के साथ अस्वीकार कर दिया कि इस विषय पर विधि पर पुनर्विचार करने के लिए अभी उपयुक्त समय नहीं

---

[88] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 161 पर।

[89] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 161 पर।

[90] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, 1982 3 एससीसी 24 (न्यायमूर्ति भगवती, विरोधी मत), पैरा 81 पर।

[91] (1992) 1 एससीसी 96।

था। इस अभिवाक्य को भी कि लटकाकर फांसी देने का मृत्युदंड असभ्य और अमानवीय था और इसको दंडादेश का निष्पादन करने में किसी अन्य सभ्य और कम पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित किया जाना चाहिए, अस्वीकार कर दिया गया था।[92]

2.4.15 पिछले कुछ वर्षों में न्यायालयों द्वारा बचन सिंह विरचना के मनमाने रूप से लागू करने की ओर तथा ऐसे मामलों में, जहां मृत्युदंडादेश अधिरोपित किया गया है, न्यायिक गलती की संभावना पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है। उच्चतम न्यायालय ने आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,[93] स्वामी श्रद्धानंद बनाम कर्नाटक राज्य[94], संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य[95] और फारूख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य[96] में, अन्य मामलों के साथ, यह देखा है कि मृत्युदंड के मामलों में दंडादेश देना मनमाना हो गया है और यह कि बचन सिंह में दंड देने वाली विधि का न्यायालय की विभिन्न न्यायपीठों द्वारा विभिन्न रूप में निर्वचन किया गया है।

(ii) आदेशात्मक मृत्युदंडादेश

2.4.16 यद्यपि 1983 में विधि को मृत्युदंड को अपवाद बनाने के लिए परिवर्तित कर दिया गया था और न्यायाधीशों से यह अधिनिर्णय करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की अपेक्षा की गई थी कि मृत्युदंड को अधिरोपित किए जाने की आवश्यकता है या नहीं, न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने के लिए आगे आने पड़ा कि आदेशात्मक मृत्युदंड अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में गारंटीकृत अधिकारों के विरुद्ध थे।

2.4.17 मीठू बनाम पंजाब राज्य[97] में उच्चतम न्यायालय को भारतीय दंड संहिता की धारा 303 में अधिनियमित मृत्यु के आदेशात्मक दंडादेश का सामना करना पड़ा। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आदेशात्मक मृत्युदंडादेश असंवैधानिक था और कहा :

> एक मानकीकृत आदेशात्मक दंडादेश और वह भी मृत्यु के दंडादेश के रूप में, प्रत्येक विशिष्ट मामले के तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखने में असफल होता है। ये वे तथ्य और परिस्थितियां हैं जो प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में दंडादेश के प्रश्न का अवधारण करने के लिए सुरक्षित मार्गदर्शक सिद्धांत का गठन करती हैं।[98]

2.4.18 न्यायालय ने इस पर ध्यान दिया कि :

> यह इस कारण से है कि मृत्युदंडादेश को किसी विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों के संबंध में धारा 303 द्वारा आदेशात्मक बनाया गया है और यह कि आवश्यक परिणाम के रूप में उन्हें यह कारण दर्शित करने से कि उन्हें मृत्युदंडादेश क्यों नहीं दिया जाना चाहिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) के अधीन अवसर दिए जाने से वंचित रखा गया है और न्यायालय मृत्युदंडादेश अधिरोपित करने के लिए विशेष कारणों का कथन करने से उस संहिता की धारा 354(3) के अधीन अपने

---

[92] (1992) 1 एससीसी 96, पैरा 7 पर।

[93] (2007) 12 एससीसी 230।

[94] (2008) 13 एससीसी 767।

[95] (2009) 6 एससीसी 498।

[96] (2010) 14 एससीसी 641।

[97] (1983) 2 एससीसी 277

[98] मीठू बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 277, पैरा 16 पर।

दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। इन अधिकारों और ऐसे रक्षापायों से वंचित करना, जिनका परिणाम अन्याय होना निश्चित है, कठोर मनमाना और अन्यायपूर्ण है।[99]

(iii) फांसी देने की पद्धति

2.4.19 1983 में दीना बनाम भारत संघ ('दीना')[100] में उच्चतम न्यायालय ने लटकाकर फांसी देने की संवैधानिक चुनौती को अस्वीकार करके अभिनिर्धारित किया कि जब किसी कैदी के साथ फांसी दिए जाने के पूर्व बर्बरता, उसकी अवमानना नहीं की जा सकती, उसको यातना नहीं दी जा सकती या उसका अपमान नहीं किया जा सकता, तो फांसी देकर लटकाने में इनमें से कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित नहीं है। दीना में भी मृत्युदंडादेश की संवैधानिकता का पुनरीक्षण किए जाने का प्रयास किया गया था किन्तु न्यायालय ने इस प्रश्न पर पुन: विचार नहीं किया।

2.4.20 परमानंद कटारु बनाम भारत संघ[101] के पश्चातवर्ती विनिश्चय में न्यायालय ने स्वीकार किया कि मृत्यु के पश्चात् शरीर को लटकाए रखना- पंजाब जेल मैनुअल का यह अनुदेश कि शरीर को मृत्यु के पश्चात् आधे घंटे तक लटकाए रखा जाए- व्यक्ति की गरिमा का अतिक्रमण था और इसलिए वह असंवैधानिक था।

(iv) विलंब और मृत्युदंड

2.4.21 विलंब आपराधिक न्याय प्रणाली में चिंता का विषय रहा है, इस लोकोक्ति के साथ कि 'विलंब से दिया गया न्याय, वस्तुत न्याय से वंचित किया जाना है' जो अपराध के पीड़ित और साथ ही साथ अपराधी दोनों के दुखों का कारण बनता है। कारावास की लंबी अवधियां, जो अवधियां मृत्यु पंक्ति में और एकांत परिरोध में होती हैं, वर्षों से न्यायालयों में चिता का विषय रही हैं। टी.वी. वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य ('वाथीस्वरन')[102] के मामले में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे दंडादेश के निष्पादन में विलंब, जो दो वर्ष से अधिक हो, अनुच्छेद 21 द्वारा गारंटीकृत प्रक्रिया का अतिक्रमण होगा। तथापि, शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य[103] में यह अभिनिर्धारित किया गया कि विलंब अनुच्छेद 21 का आह्वान करने के लिए आधार हो सकता है, किन्तु यह कि इस संबंध में कोई भी कठिन और निश्चित नियम अधिकथित नहीं किया जा सकता कि विलंब किसी कैदी को मृत्यु के दंडादेश को अभिखंडित कराने का हकदार बनाएगा।

2.4.22 त्रिवेणीबेन बनाम गुजरात राज्य[104] के मामले में उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया और अभिनिर्धारित किया कि केवल कार्यपालिका के विलंब पर न कि न्यायिक विलंब पर, अनुच्छेद 21 के आक्षेप से सुसंगत होने के रूप में विचार किया जा सकता है। न्यायालय ने कहा 'केवल ऐसा विलंब, जो विचारण के लिए तात्विक होगा, वह दया याचिकाओं के निपटारे में या कार्यपालिका की प्रेरणा पर होने वाला विलंब होगा।'[105]

---

[99] मीठू बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 277, पैरा 17 पर।

[100] (1983) 4 एससीसी 645।

[101] (1995) 3 एससीसी 248।

[102] (1983) 2 एससीसी 68।

[103] (1983) 2 एससीसी 344।

[104] (1989) 1 एससीसी 678।

[105] त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 678, पैरा 17 पर।

2.4.23 यदि, इसलिए फांसी में असाधारण विलंब होता है तो सिद्धदोष कैदी न्यायालय आकर उससे यह परीक्षा करने के लिए अनुरोध करने का हकदार है कि क्या मृत्युदंडादेश को निष्पादित किए जाने की अनुज्ञा देना न्यायोचित और ऋजु है।

2.4.24 न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया :

> मृत्यु दंडादेश के निष्पादन में असम्यक् लम्बा विलंब सिद्धदोष व्यक्ति को अनुच्छेद 32 के अधीन इस न्यायालय तक पहुंचने के लिए हकदार बनाएगा किन्तु यह न्यायालय दंडादेश की न्यायिक प्रक्रिया द्वारा अंतिम रूप से पुष्टि किए जाने के पश्चात् कारित विलंब और परिस्थितियों की प्रकृति की परीक्षा करेगा, किंतु उस मृत्युदंडादेश को अंतिम रूप से बनाए रखते हुए, उस न्यायालय द्वारा निकाले गए निष्कर्षों को पुन: देखने की कोई अधिकारिता नहीं होगी.....विलंब की कोई निश्चित अवधि मृत्युदंडादेश को अनिष्पादनीय बनाने के लिए अभिनिर्धारित नहीं की जा सकी।[106]

2.4.25 शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ[107] के मामले में इसकी पुन: पुष्टि की गई थी। इस मामले में 'मृत्यु पंक्ति के सिद्धदोषियों के हितों की रक्षा करने'[108] के लिए मार्गदर्शक सिद्धांतों को भी अभिनिर्धारित किया गया था, जिनमें राष्ट्रपति द्वारा दया याचिका को नामंजूर किए जाने के पूर्व एकांत या एकल सेल परिरोध की असंवैधानिकता पुन: पुष्ट किया जाना, विधिक सहायता देने की आवश्यकता और दया याचिका के नामंजूर किए जाने और फांसी के बीच 14 दिन की अवधि की आवश्यकता, सम्मिलित थे।

2.4.26 हाल में उच्चतम न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 364क की संवैधानिकता को बनाए रखा है जो फिरौती के लिए अपहरण के मामलों में मृत्युदंडादेश के अधिरोपण के लिए अनुज्ञा देता है। विक्रम सिंह बनाम भारत संघ[109] के मामले में यह तर्क दिया गया था कि धारा 364क, अन्य बातों के साथ, असंवैधानिक थी क्योंकि यह न्यायालयों को ऐसा दंड देने में विवेकानुसार से वंचित करती थी जो आजीवन कारावास या मृत्युदंडादेश नहीं था, विशेष रूप से अपहरण के मामलों में, जो ऐसे ऊंचे दंड का समर्थन नहीं करता। उच्चतम न्यायालय ने अभिस्वीकार किया कि 'दंड ऐसे अपराधों की, जिनके लिए उन्हें विहित किया गया है, प्रकृति और गंभीरता के अनुपात में होना चाहिए'।[110] तथापि इनमें अभिनिर्धारित किया कि 'धारा 364क को अपराध की प्रकृति के ऐसे अन्यायपूर्ण अननुपातिक होने के रूप में नहीं छोड़ा जा सकता कि जिसे असंवैधानिक घोषित किए जाने की मांग की जा सकती हो'[111] और यह कहा कि मृत्युदंडादेश के विरले मामलों से विरलतम में हीं दिए जाएंगे। न्यायालय ने इस प्रश्न को संबोधित नहीं किया कि क्या मृत्युदंड गैर मानव वध अपराध के लिए या इस विषय पर लागू अंतराष्ट्रीय विधि मानकों के अनुसार समुचित दंड था।

ड. भारत में मृत्युदंड पर विधियां

2.5.1 भारतीय दंड संहिता के अधीन मृत्युदंडादेश कई अपराधों के लिए दिया जा सकता है, जिनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं :

---

[106] त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 678, पैरा 23 पर।

[107] (2014) 3 एससीसी 1।

[108] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 241 पर।

[109] विक्रम सिंह@ विकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 21 अगस्त, 2015 को भारत के उच्चतम न्यायालय ने 2013 की दांडिक अपील सं0 824 के निर्णय में।

[110] विक्रम सिंह@ विकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 21 अगस्त, 2015 को भारत के उच्चतम न्यायालय ने 2013 की दांडिक अपील सं0 824 के निर्णय में, पैरा 49 पर।

[111] विक्रम सिंह@ विकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, 21 अगस्त, 2015 को भारत के उच्चतम न्यायालय ने 2013 की दांडिक अपील सं0 824 के निर्णय में, पैरा 50 पर।

सारणी : 2.1 भारतीय दंड संहिता में मृत्यु से दंडनीय अपराध

क्र0 सं0	धारा सं0	वर्णन
1.	धारा 121	भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करना,
2.	धारा 132	वास्तव में किए गए विद्रोह का दुष्प्रेरण
3.	धारा 194	शपथ भंग, जिसका परिणाम किसी निर्दोष व्यक्ति की दोषसिद्धि और मृत्यु में हो
4.	धारा 195क	किसी व्यक्ति को मिथ्या साक्ष्य देने के लिए धमकाना या उत्प्रेरित करना, जिसका परिणाम किसी निर्दोष व्यक्ति की दोषसिद्धि और मृत्यु में हो
5.	धारा 302	हत्या
6.	धारा 305	किसी अवयस्क या उन्मत्त व्यक्ति द्वारा आत्महत्या के लिए दुष्प्रेरण
7.	धारा 307(2)	किसी तामील करने वाले आजीवन सिद्धदोषी द्वारा प्रयातित हत्या
8.	धारा 364क	फिरौती के लिए अपहरण
9.	धारा 376क	बलात्संग और क्षति, जो स्त्री की मृत्यु कारित करती है या उसे लगातार निष्क्रियता की स्थिति में छोड़ देती है, कारित करने के लिए दंड
10.	धारा 376ड.	बलात्संग के संदर्भ में पुनरावृतति करने वाले अपराधी
11.	धारा 396	हत्या सहित डकैती

2.5.2 मृत्युदंड उस दशा में भी अधिरोपित किया जा सकता है जिसमें यदि कोई इन अपराधों में से किसी को करने के आपराधिक षडयंत्र का दोषी पाया जाता है।[112]

3.5.3 भारतीय दंड संहिता के अतिरिक्त कई विधियां भारत में संभव दंड के रूप में मृत्युदंड को विहित करती हैं इनमें निम्नलिखित सम्मिलित हैं :

सारणी : 2.2 अन्य विधियों में मृत्यु से दंडनीय अपराध

क्र0 सं0	धारा सं0	अधिनियम
1.	धारा 34, धारा 37 और धारा 38(1)	वायु सेना अधिनियम, 1950
2.	धारा 3(1)(i)	आंध्र प्रदेश कन्ट्रोल आफ आरगेनाइज्ड क्राइम एक्ट
3.	धारा 27(3)	आयुध अधिनियम, 1959 (निरसित)
4.	धारा 34, धारा 37 और धारा 38(1)	सेना अधिनियम, 1950
5.	धारा 21, धारा 24, धारा 25(1)(क) और धारा 55	आसाम राइफल्स अधिनियम, 2006
6.	धारा 65क(2)	मुम्बई प्रतिषेध (गुजरात संशोधन) अधिनियम, 2006

[112] धारा 120ख, भारतीय दंड संहिता, 1860

7.	धारा 14, धारा 17, धारा 18(1)(क) और धारा 46	सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968
8.	धारा 17 और धारा 49	तटरक्षक अधिनियम, 1978
9.	धारा 4(1)	सती (निवारण) अधिनियम, 1987
10.	धारा 5	भारत रक्षा अधिनियम, 1971
11.	धारा 3	जिनेवा कन्वेंशन अधिनियम, 1960
12.	धारा 3(ख)	विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908
13.	धारा 16, धारा 19, धारा 20(1)(क) और धारा 49	भारत- तिब्बत सीमा पुलिस बल अधिनियम, 1992
14.	धारा 3(1)(i)	कर्नाटक कन्ट्रोल आफ आरगेनाइज्ड क्राइम एक्ट, 2000
15.	धारा 3(1)(i)	महाराष्ट्र कन्ट्रोल आफ आरगेनाइज्ड क्राइम एक्ट
16.	धारा 31क(1)	स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985
17.	धारा 34, धारा 35, धारा 36, धारा 37, धारा 38, धारा 39, धारा 43, धारा 44, धारा 49(2)(क), धारा 56(2) और धारा 59	नौसेना अधिनियम, 1957
18.	धारा 15(4)	पेट्रोलियम और खनिज पाइपलाइन (भूमि में उपयोग के अधिकार का अर्जन) अधिनियम, 1962
19.	धारा 16, धारा 19, धारा 20(1)(क) और धारा 49	सशस्त्र सीमा बल अधिनियम, 2007
20.	धारा 3(2)(i)	अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989
21.	धारा 3(1)(i)	सामुद्रिक नौपरिवहन और महाद्वीपीय मग्नतट भूमि पर स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध विधि-विरुद्ध कार्यों का दमन अधिनियम, 2002
22.	धारा 10(ख)(i) और धारा 16(1)(क)	विधिविरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967

(i) मृत्युदंड के क्षेत्र के हाल में किए गए विस्तार

2.5.4 इन संशोधनों में से कई तुलनात्मक रूप से हाल में पारित किए गए हैं। उदाहरण के लिए 2013 में पारित किए गए आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम ने दंड प्रक्रिया संहिता में कई नए उपबंधों को पुर:स्थापित किया, जिनके अंतर्गत धारा 376क है, जिसने ऐसे मामलों में बलात्संग के कारण पीड़ित की मृत्यु हो गई थी या जिसने उसे लगातार निष्क्रिय स्थिति में छोड़ दिया था, मृत्युदंड अधिरोपित किए जाने की अनुज्ञा दी; और धारा 376ड., जिसने कतिपय पुनरावृतति करने वाले अपराधियों पर मृत्युदंड अधिरोपित करनेकी अनुज्ञा दी। ये संशोधन वर्मा समिति की सिफारिशों[113] को ध्यान में रखते हुए पारित किए गए थे। इस पर जोर दिया

[113] देखिए, वर्मा समिति रिपोर्ट, 2013, जो http://www.prsindia.org/uploads/media/Justice%verma%20committee/js%20verma%20committee%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

जा सकता है कि जबकि वर्मा समिति लैंगिक हमलों और बलात्संग के कतिपय रूपों के लिए बढ़े हुए दंड के पक्ष में थी, इसने टिप्पणी की कि *''समाज के बृहत हितों में और मृत्युदंड समाप्त करने के पक्ष में वर्तमान विचारधारा को ध्यान में रखते हुए और किसी भी दंडादेश को मनमानेपन से दिए जाने के तर्क से बचने के लिए भी, हम मृत्युदंड की सिफारिश करने के पक्ष में नहीं हैं।''*[114] आपराधिक विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 ने मृत्युदंड के क्षेत्र का तथापि विस्तार नहीं किया।

2.5.5 इस समय संसद् में अपहरण विरोधी (संशोधन) विधेयक, 2014 लंबित है, और वह भी मृत्युदंड के लिए विहित करता है।[115]

(ii) मृत्युदंड और गैर मानव वध अपराध

2.5.6 कई अपराध, जिनके लिए मृत्युदंड विहित किया गया है, गैर-मानव वध अपराध अंतर्वलित करते हैं और अंतरराष्ट्रीय विधि द्वारा अपेक्षित रूप में 'अत्यधिक गंभीर अपराधों' की अवसीमा को पूरा नहीं करते हैं।[116] इनके अंतर्गत निम्नलिखित हैं :

सारणी 2.3 : गैर-मानव वध, जो मृत्यु से दंडनीय अपराध है

क्र0 सं0	धारा सं0	अधिनियम
1.	धारा 34, धारा 37 और धारा 38	वायु सेना अधिनियम, 1950
2.	धारा 34, धारा 37 और धारा 38	सेना अधिनियम, 1950
3.	धारा 21, धारा 24 और धारा 25	आसाम राइफल्स अधिनियम, 2006
4.	धारा 14, धारा 17 और धारा 18	सीमा सुरक्षा बल अधिनियम, 1968
5.	धारा 17, धारा 49	तटरक्षक अधिनियम, 1978
6.	धारा 3	विस्फोटक पदार्थ अधिनियम, 1908
7.	धारा 120ख, धारा 121 (युद्ध करना), धारा 132, धारा 194, धारा 195क, धारा 364क (दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 1993 द्वारा जोड़ी गई), धारा 376ड. (दंड विधि (संशोधन) अधिनियम, 2013 द्वारा जोड़ी गई)	भारतीय दंड संहिता, 1860
8.	धारा 16, धारा 19 और धारा 20	भारत- तिब्बत सीमा पुलिस बल अधिनियम, 1992
9.	धारा 31	स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985
10.	धारा 34, धारा 35, धारा 26, धारा	नौसेना अधिनियम, 1957

[114] देखिए, वर्मा समिति रिपोर्ट, 2013, पैरा 246 पर, जो http://www.prsindia.org/uploads/media/Justice%verma%20committee/js%20verma%20committee%20report.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[115] देखिए पीआरएस इंडिया, अपहरण विधेयक, 2014, http://www.prsindia.org/billtrack/the-anti-hijacking-amendment-bill-2014-3500/ पर उपलब्ध है (15.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[116] अनुच्छेद6(2), आईसीसीपीआर, ''ऐसे देशों ने, जिन्होंने मृत्युदंड को समाप्त नहीं किया है, मृत्युदंडादेश को अपराध किए जाने के समय पर प्रवृत्त विधि के अनुसार और वर्तमान प्रसंविदा के उपबंधों के और जनसंहार के अपराध के निवारण और दंड संबंधी प्रसंविदा के विरोध में नहीं, अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जा सकता है। इस दंड को किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय के अनुसरण में दिया जा सकता है।''

	37, धारा 38, धारा 39, धारा 43, धारा 44, धारा 49, धारा 56, धारा 59	
11.	धारा 15	पेट्रोलियम और खनिज पाइपलाइन (भूमि में उपयोग के अधिकार का अर्जन) अधिनियम, 1962
12.	धारा 16, धारा 19 और धारा 20	सशस्त्र सीमा बल अधिनियम, 2007
13.	धारा 3	अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

(iii) आज्ञापक मृत्युदंड की लगातार विद्यमानता

2.5.7 इस तथ्य के होते हुए भी कि उच्चतम न्यायालय ने आज्ञापक मृत्युदंड को असंवैधानिक और मनमाना पाया, संसद् ने उस समय से ऐसी विधियां अधिनियमित की हैं, जो आज्ञापक मृत्युदंड को बराबर विहित करती रही हैं। सामुद्रिक नौपरिवहन और महाद्वीपीय मग्नतट भूमि पर स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध विधि-विरुद्ध कार्यों का दमन अधिनियम, 2002 की धारा 3(छ) (i) में, अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(i) में और आयुध अधिनियम की धारा 27(3) में लगातार आज्ञापक मृत्युदंडादेश को विहित किया गया है। आज्ञापक मृत्युदंडादेश को स्वापक औषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 में 1989 के संशोधन द्वारा भी पुर:स्थापित किया गया। मुम्बई उच्च न्यायालय ने इसको 2010 में असंवैधानिक घोषित कर दिया[117] और उस अधिनियम को 2014 में केवल इसको निकालने के लिए अंतिम रूप से संशोधित किया गया।

(iv) मृत्युदंड और आतंक विरोधी विधियां

2.5.8 ऐसी बहुत सी विधियां, जिनके अधीन मृत्युदंड अधिरोपित किया जाता रहा है, आतंकवादी अपराधों के संबंधित है। उदाहरण के लिए मृत्युदंड आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप अधिनियम, 1987 ('टाडा'), आतंकवाद निवारण अधिनियम, 2002 ('पोटा') और विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1967 के अधीन लगातार अधिरोपित किए जाते रहे हैं और उन्हें मान्य ठहराया जाता रहा है। एक बात यह भी है कि इन मृत्यु दंडादेशों को तब भी कार्यान्वित किया गया है जबकि ऐसे कुछ मामलों में अंतर्निहित विधि (टाडा) को या तो निरसित कर दिया गया है या वह व्यपगत (पोटा) हो गई है। विशेष रूप से आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप अधिनियम, 1987 को ऋजु विचारण संबंधी गारंटियों का आदर न करने की आलोचना के कारण और उसके दुरुपयोग के व्यापक अभिकथनों के बीच निरसित कर दिया गया था। आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप अधिनियम और आतंकवाद निवारण अधिनियम, विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम ऋजु विचारण की सभी प्रकार की गारंटियों के लिए उपबंध नहीं करते थे : उन्होंने अपराधों को अस्पष्ट रूप से परिभाषित किया ; इस प्रकार वैधता के सिद्धांत से समझौता कर लिया ; कतिपय उदाहरणों में निर्दोषिता की उपधारणा को उलट दिया ; आरोप पूर्व निरोध की लंबी अवधियों को अनुज्ञात कर दिया ; विनिर्दिष्ट पुलिस अधिकारियों के समक्ष की गई कतिपय संस्वीकृतियों को साक्ष्य के रूप में ग्राह्य बना दिया ; और अपील करने के अधिकार को केवल उच्चतम न्यायालय को अपील करने की अनुज्ञा देकर सीमित कर दिया।

(v) मृत्युदंड को समाप्त करने का प्रस्ताव करने वाले विधेयक

[117] इंडियन हार्म रिडक्शन नेटवर्क बनाम भारत संघ, दांडिक अपील सं0 1784/2010, मुम्बई उच्च न्यायालय।

2.5.9 स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व श्री गया प्रसाद ने 1931 में भारतीय दंड संहिता संबंधी अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त करने के लिए एक विधेयक पुर:स्थापित करने का प्रयास किया गया था, जिसे विफल दिया था।[118] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से एम ए काजमी का 1952 और 1954 में भारतीय दंड संहिता की धारा 302 का संशोधन करने के लिए विधेयक, मुकुंद लाल अग्रवाल का 1956 में विधेयक, पृथ्वीराज कपूर का 1958 में राज्य सभा में संकल्प और सावित्री देवी निगम का 1961 का संकल्प, सभी मृत्युदंड समाप्त करना चाहते थे।[119] 1962 में मृत्युदंड समाप्त करने के लिए श्री रघुनाथ सिंह के संकल्प पर लोक सभा में विचार-विमर्श किया गया था और इसका अनुसरण करते हुए इस मामले को विधि आयोग को निर्दिष्ट किया गया था, जिसके परिणामस्वरूप आयोग की 35वीं रिपोर्ट बनी।[120]

2.5.10 वर्तमान में संसद् के राज्य सभा सदस्यों द्वारा प्रस्तावित दो विधेयक इस विषय पर सुसंगत हैं। कानिमोझी ने मृत्युदंड समाप्त करने की मांग करते हुए एक गैर सरकारी सदस्य विधेयक प्रस्तावित किया है[121] और डी. राजा ने सरकार से मृत्युदंड समाप्त किया जाना लंबित होने तक मृत्युदंडादेश पर अधिस्थगन घोषित करने के लिए कहते हुए एक गैर सरकारी सदस्य विधेयक प्रस्तावित किया है। [122]

च. हाल में भारत में दिए गए मृत्युदंड

2.6.1 एमनेस्टी इंटरनेशनल द्वारा किए गए एक अध्ययन में (भारत में 1950-2006 तक के सभी मृत्युदंडादेश संबंधी मामलों का अध्ययन) यह देखा गया है कि ऐसे व्यक्तियों की संख्या पर, जिन्हे भारत में फांसी दी गई है, उपलब्ध शासकीय जानकारी की स्पष्टत: में कमी है और उसमें यह संदेह किया गया है कि इस अवधि के दौरान फांसी दिए गए मामलों की संख्या संभवत: हजारों में थी।[123] तथापि, पिछले समय से फांसी दिए जाने वाले व्यक्तियों की संख्या में कमी हुई है।

---

[118] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 12 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) पर उपलब्ध है।

[119] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 15-18 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) पर उपलब्ध है।

[120] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, पैरा 1 पर, http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) पर उपलब्ध है।

[121] विशेष संवाददाता, कानिमोझी का मृत्युदंड समाप्त करने के लिए विधेयक का प्रस्ताव, दि हिन्दू, 31 जुलाई, 2015।

[122] आईएएनएस, मृत्युदंड : सीपीई नेता डी राजा, गैर सरकारी सदस्य ने संकल्प प्रस्तावित किया, इकोनोमिक टाइम्स, 31 जुलाई, 2015

[123] एमनेस्टी इंटरनेशनल, लीथल लाटरी : डेथ पेनाल्टी इन इंडिया, एएसए 20/07/2008, पृष्ठ 24 पर, http://www.amnesty.org/en/documents/ASA20/007/2008/en (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) पर उपलब्ध है।

2.6.2 धनन्जय चटर्जी को पिछले फांसी दिए गए मामले के पश्चात् से लगभग 7 वर्षों की अवधि के पश्चात् 2004 में फांसी दी गई थी। पूर्व अभिलिखित फांसी का मामला 1997 में हुआ था।[124] 2004 के पश्चात् भारत में 8 वर्षों से फांसी दिए जाने का अशासकीय रूप से अधिस्थगन कर दिया गया था, जब तक कि अजमल कसाब को नवम्बर, 2012 में फांसी नहीं दी गई। फरवरी, 2013 में अफजल गुरु को फांसी दिए जाने और जुलाई, 2015 में याकूब मेनन को फांसी दिए जाने के पश्चात् से दो मामले हुए हैं, जिनमें फांसी दी गई है।

2.6.3 भारत में मृत्युदंड के इतिहास और इस क्षेत्र के हाल के विस्तार की परीक्षा किए जाने पर, यह अनुदेशात्मक है कि इस विषय पर विश्व व्यापी रुझानों और अंतरराष्ट्रीय विधि संबंधी उपबंधों पर विचार किया जाए।

[124] एमनेस्टी इंटरनेशनल, लीथल लाटरी : डेथ पेनाल्टी इन इंडिया, एएसए 20/07/2008, पृष्ठ 24 पर, http://www.amnesty.org/en/documents/ASA20/007/2008/en (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) पर उपलब्ध है।

अध्याय - 3

अंतरराष्ट्रीय रुझान

3.1 मृत्युदंडादेश के संबंध में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य- अंतरराष्ट्रीय विधि और राज्य व्यवहार दोनों के अनुसार-पिछले दशकों में विकसित हुआ है। 1967 की तुलना में, जब आयोग की 35 वीं रिपोर्ट जारी की गई थी और 1980 में, जब *बचन सिंह* [125] का निर्णय दिया गया था, आज विश्व के अधिकांश देशों में विधि और व्यवहार में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया गया है, यहां तक कि वे भी, जिन्होंने इसे बनाए रखा है, उसकी तुलना में बहुत कम फांसी दे रहे हैं, जो स्थिति इस बारे में कुछ दशकों पहले थी।

3.2 यह अध्याय लागू अंतरराष्ट्रीय विधि, राजनैतिक प्रतिबद्धताओं और राज्य व्यवहार के अध्ययन माध्यम से पिछले दशकों में अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के रुपांतरण का और अंतरराष्ट्रीय और साथ ही देशी विधियों, दोनों, में मृत्युदंड समाप्त करने की ओर स्पष्ट रुझान का वर्णन करता है।

3.3 इस अध्याय का उद्देश्य भारतीय राज्य को लागू अंतरराष्ट्रीय विधि संननियमों को विशिष्टता से दर्शाना नहीं है। यहां वर्णित कई संधियों और लिखतों पर या तो भारतीय सरकार द्वारा हस्ताक्षर नहीं किए गए हैं या उनका अनुसमर्थन नहीं किया गया है या वे दूसरे कारणों से भारत में लागू नहीं हैं। इसके अतिरिक्त यह अध्याय मृत्युदंड के विधिक विनियमन और समय-समय पर उसमें हुए परिवर्तनों से संबंधित अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य का एक विहंगम दृश्य प्रस्तुत करता है।

3.4 अंतरराष्ट्रीय रूप से देशों को उनकी मृत्युदंड देने की प्रास्थिति पर निम्नलिखित प्रवर्गों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है :[126]

- सभी अपराधों के लिए समाप्त करने वाले[127]
- मामूली अपराधों के लिए समाप्त करने वाले
- वास्तव में समाप्त करने वाले[128]
- बनाए रखे रहने वाले

---

[125] (1980) 2 एससीसी 684।

[126] यह प्रणाली संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा और गैर सरकारी संगठनों जैसे एमनेस्टी इंटरनेशनल द्वारा अपनाई गई है। उदाहरण के लिए देखिए, 'मृत्युदंड और उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपायों का कार्यान्वयन' सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट ई/2015/49 (अग्रिम असंपादित पाठ), पृष्ठ 4, देखिए उपाबंध 2, एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसी, एसीटी 50/001/2015।

[127] इसका अभिप्राय यह है कि 'मृत्युदंड को शांतिकाल में किए गए सभी मामूली अपराधों के लिए जैसे वे अपराध, जो आपराधिक संहिता में अंतर्विष्ट हैं और जिन्हें सामान्य विधि में मान्यता प्राप्त है (उदाहरण के लिए हत्या, बलात्संग और हिंसा के साथ डकैती), समाप्त कर दिया गया है। मृत्युदंड को केवल अपवादात्मक परिस्थितियों के लिए, जैसे युद्ध के समय में सेना संबंधी अपराध या राज्य के विरुद्ध अपराध, जैसे राजद्रोह, आतंकवाद या सशस्त्र विप्लव' - 'मृत्युदंड और उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपायों का कार्यान्वयन' सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट ई/2015/49 (अग्रिम असंपादित पाठ), पृष्ठ 4।

[128] उन राज्यों के प्रति-निर्देश करता है, जहां 'मृत्युदंड विधिपूर्ण है और जहां मृत्युदंड अभी भी सुनाए जा सकते हैं किन्तु जहां 10 वर्षों से फांसियां नहीं दी गई हैं', या ऐसे राज्य, 'जिन्होंने पिछले 10 वर्षों के भीतर फांसियां दी हैं किन्तु जिन्होंने शासकीय अधिस्थगन स्थापित करके एक अंतरराष्ट्रीय प्रतिबद्धता की है' 'मृत्युदंड और उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपायों का कार्यान्वयन' सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट ई/2015/49 (अग्रिम असंपादित पाठ), पृष्ठ 4, एमनेस्टी इंटरनेशनल कुछ भिन्न परिभाषा अपनाता है : ऐसे देश जिन्होंने सामान्य अपराधों, जैसे हत्या के लिए मृत्युदंड बनाए रखा है किन्तु जिन्हें व्यवहार में समाप्त करने वाला समझा जा सकता है क्योंकि उन्होंने गत 10 वर्षों के दौरान किसी को फांसी नहीं दी है और जिनके बारे में विश्वास किया जाता है कि उनके पास फांसी न देने के लिए नीति है या स्थापित पद्धति है। एनेग्जर 2, एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसियां, एसीटी 50/001/2015।

3.5 2014 के अंत में 98 देश सभी अपराधों के लिए समाप्त करने वाले हो गए थे, सात देश केवल मामूली अपराधों के लिए समाप्त करने वाले बने थे और 35 व्यवहार में समाप्त करने वाले थे, इस प्रकार देश में 140 देश विधि में या व्यवहार में समाप्त करने वाले बन गए थे। 140 देशों की इस सूची में 3 ऐसे हैं, जिन्होंने औपचारिक रूप से 2015 में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया अर्थात् सूरीनाम, मेडागास्कर और फिजी।[129] 58 देशों को इसे बनाए रखने वाला माना गया है, जिनकी कानूनी पुस्तक में अभी तक मृत्युदंड है और जिन्होंने इसका पिछले गत वर्षों में उपयोग किया है।[130]

3.6 जबकि केवल कुछ देशों ने इसे बनाए रखा है और मृत्युदंड का उपयोग किया है, किन्तु इस सूची के अंतर्गत कुछ विश्व के बहुत अधिक आबादी वाले राष्ट्र हैं, जिनके अंतर्गत भारत, चीन, इंडोनेशिया और संयुक्त राज्य अमेरिका है, जो विश्व की अधिकांश जनता को इस दंड का संभावित विषय बना रहे हैं।

---

[129] देखिए, समाप्त-करने के मार्ग पर – डरावने अपवादों के साथ, दि इकोनोमिस्ट, 4 जुलाई, 2015, http://www.economist.com/new/international/21656666-few-countries-are-applying-death-penalty-more-freely-global-trend-towards (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[130] एनेक्सचर II, एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसियां, एसीटी 50/001/2015।

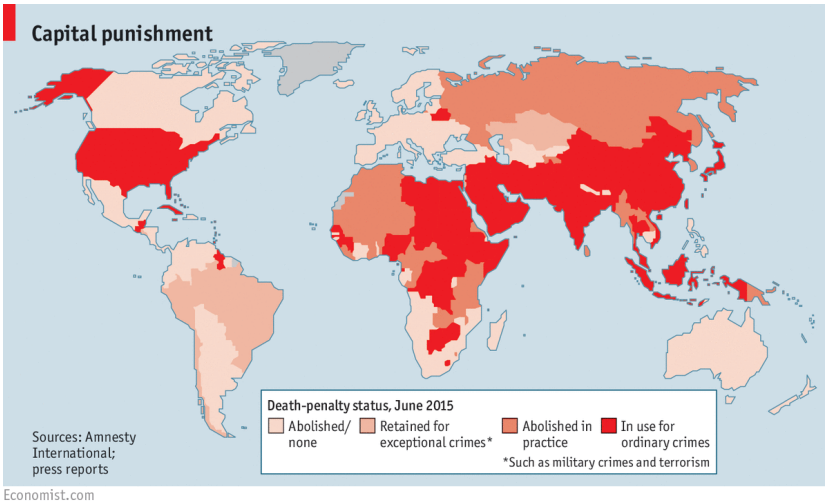

1. मृत्युदंड
2. स्रोत एमनेस्टी इंटरनेशनल: प्रेस रिपोर्टें
3. मृत्युदंड प्रास्थिति, जून 2015
4. समाप्त कर दिया गया/ कोई नहीं
5. अपवादात्मक अपराधों के लिए बनाए रखा गया
6. व्यवहार में समाप्त कर दिया गया
7. मामूली अपराधों के लिए प्रयोग में
7. जैसे सेना अपराध और आतंकवाद

स्रोत: इकोनोमिस्ट से : समाप्ति के मार्ग पर- 'डरावने अपराधों के साथ' दि इकोनोमिस्ट, 4 जुलाई, 2015, http://www.economist.com/news/international/21656666-fewcountries-are-applying-death-penalty-more-freely-global-trend-towards पर उपलब्ध है।

3.7 यह नक्शा 4 प्रकार के क्षेत्रों को दर्शित करता है। लाल रंग में जो क्षेत्र हैं वे बनाए रखने वाले हैं और वे मामूली अपराधों के लिए मृत्युदंड का प्रयोग करते हैं ; नारंगी-गुलाबी रंग में क्षेत्रों ने व्यवहार में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है और वे वास्तव में समाप्त करने वाले बन गए हैं ; गहरे गुलाबी रंग में क्षेत्रों ने केवल अपवादात्मक अपराधों के लिए मृत्युदंड को बनाए रखा है और मामूली अपराधों के लिए समाप्त करने वाले बन गए हैं और हल्के/ गुलाबी सफेद रंग में क्षेत्रों ने मृत्युदंड नहीं बनाए रखा है और इसे सभी अपराधों के लिए समाप्त कर दिया है।

क. अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार विधि में विकास विरचना

(i) अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार संधियों में मृत्युदंड

3.8.1 मृत्युदंड को अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार संधियों में जीवन के अधिकार के एक पहलू के रूप में विनियमित किया गया है, जैसा कि अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा ('आईसीसीपीआर') में अंतर्विष्ट है। समय के साथ मृत्युदंड के अधिरोपण और कार्यान्वयन के कुछ पहलुओं में क्रूर, अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार के विरुद्ध प्रतिषेध तथा दंड का अतिक्रमण पाया गया है। अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल के प्रवर्तन में आने के साथ अंतरराष्ट्रीय समुदाय ने प्रथम वैश्विक अंतरराष्ट्रीय विधिक लिखत को देखा जिसका उद्देश्य मृत्युदंड समाप्त करना था।

क. अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा

3.8.2 अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा ('आईसीसीपीआर'), अंतरराष्ट्रीय मानव अधिकार विधि में मृत्युदंड के अधिरोपण पर विचार-विमर्श करने वाले मुख्य दस्तावेजों में से एक है। यह संविदा मृत्युदंड के प्रयोग को समाप्त नहीं करती है किन्तु अनुच्छेद 6 जीवन के अधिकार संबंधी गारंटियों को अंतर्विष्ट करता है और ऐसे महत्वपूर्ण रक्षोपायों को अंतर्विष्ट करता है, जिन्हें ऐसे हस्ताक्षरकर्ताओं द्वारा अपनाया जाना है, जिन्होंने मृत्युदंड को बनाए रखा है।

3.8.3 अनुच्छेद 6(2) कहता है :

> ऐसे देशों में, जिन्होंने मृत्युदंड को समाप्त नहीं किया है, उसे अपराध के किए जाने के समय पर प्रवृत्त विधि के अनुसार, किन्तु वर्तमान प्रसंविदा के उपबंधों तथा जनसंहार के अपराध के निवारण और दंड संबंधी प्रसंविदा के उपबंधों के विरुद्ध नहीं, केवल अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जा सकता है। यह दंड किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिए किसी अंतिम निर्णय के अनुसरण में ही दिया जा सकता है।

3.8.4 अनुच्छेद 6(4) राज्यों से यह सुनिश्चित करने की अपेक्षा करता है कि ''मृत्यु के लिए दंडादिष्ट किसी व्यक्ति को क्षमा चाहने या दंडादेश का लघुकरण चाहने का अधिकार होगा। सभी मामलों में सर्वक्षमा, क्षमा प्रदान की जा सकती है या उसका लघुकरण जा सकता है'', और अनुच्छेद 6(5) आज्ञा देता है कि ''मृत्युदंडादेश 18 वर्ष की आयु से कम वाले व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराधों के लिए अधिरोपित नहीं किया जाएगा और गर्भवती महिलाओं पर कार्यान्वित नहीं किया जाएगा।''

3.8.5 राष्ट्र संघ मानव अधिकार समिति (राष्ट्र संघ का निकाय, जिसके अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के निर्वचनों को प्राधिकृत समझा जाता है) ने अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के अनुच्छेद 6 पर 1982 में अपने जनरल कमेंट में ब्यौरेवार चर्चा की थी। समिति ने स्पष्ट किया था कि जबकि अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा स्पष्ट रूप से मृत्युदंड समाप्त करने की अपेक्षा नहीं करती है किन्तु उसे समाप्त करना वांछनीय था और समिति समाप्त करने की दिशा में किसी कदम को ''जीवन के अधिकार के उपभोग में उन्नति''[131] के रूप में समझेगी। समित ने यह भी कहा कि मृत्युदंड ''अपवादात्मक उपाय'' होना चाहिए। इसने ऐसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया संबंधी रक्षोपायों पर पुन: जोर दिया, जिनके अंतर्गत यह है कि मृत्युदंड को अपराध किए जाने के समय पर प्रवृत्त विधि के अनुसार अधिरोपित किया जा सकता है और यह कि किसी स्वतंत्र अधिकरण द्वारा उचित सुनवाई के अधिकार, निर्दोषिता की अवधारणा, प्रतिरक्षा के लिए न्यूनतम गारंटियों और उच्चतर अधिकरण द्वारा पुनर्विचार के अधिकार का कठोरत: अवश्य पालन किया जाना चाहिए।[132]

3.8.6 समिति अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के राज्य - पक्षकारों की आवधिक रिपोर्टों का पुनर्विलोकन करती है और उसमें बहुधा मृत्युदंड बनाए रखने वाले राज्यों की रिपोर्टों पर अपने संप्रेक्षणों में मृत्युदंड की समाप्ति के प्रति

---

[131] मानव अधिकार समिति, जनरल कमेंट नं0 6, (1982) पैरा 6, मानव अधिकार संबंधी संधि निकाय द्वारा अपनाए गए साधारण टिप्पणों तथा साधारण सिफारिशों का संकलन, यू.एन. डीओसी.एचआरआई/जीइएन/1/आरइवी. 6 पर, 1(1994) पर-''यह अनुच्छेद ऐसे शब्दों में समाप्ति के प्रति साधारणतया निर्देश करताहै जो कठोर रूप से सुझाव देते हैं (पैरा 2(2)(6) कि समाप्त किया जाना वांछनीय है। समिति निष्कर्ष निकालती है कि समाप्त करने के सभी उपाय अनुच्छेद 40 के अर्थांतर्गत जीवन के अधिकार के उपभोग में उन्नति के रूप में समझे जाने चाहिए और उस रूप में समिति को रिपोर्ट किए जाने चाहिए''।

[132] मानव अधिकार समिति, साधारण टिप्पण सं. 6 (1982), पैरा 7, मानव अधिकार संधि निकाय द्वारा अंगीकार किए गए साधारण टिप्पण और साधारण सिफारिशें, यू.एन. डीओसी.एचआरआई/जीइएन/1/आरइवी. 6 पर 1 (1994)।

निर्देश किया है ।[133] अन्य मामलों में समिति ने अनुच्छेद 6 में सूचीबद्ध रक्षोपायों को अपनाने के महत्व पर भी पुन: जोर दिया है तथा समाप्त करने के लिए पथ प्रदर्शक का उपबंध किया है ।[134]

3.8.7 इस समय 168 राज्य, जिनमें भारत सम्मिलित है, अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के पक्षकार हैं। समिति ने 1996 में भारत की रिपोर्ट का पुनर्विलोकन किया था और सिफारिश की थी कि भारत *''अंततोगत्वा समाप्त करने की दृष्टि से अव्यस्कों पर मृत्युदंड के अधिरोपण को विधि द्वारा समाप्त करे और अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए मृत्युदंड वाले अपराधों की संख्या सीमित करे।''*[135]

ख. मृत्युदंड समाप्त करने का उद्देश्य रखते हुए अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा का दूसरा वैकलपिक प्रोटोकाल

3.8.8 मृत्युदंड समाप्त करने का उद्देश्य रखने वाला अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा का दूसरा वैकलपिक प्रोटोकाल भी केवल ऐसी संधि है जो मृत्युदंड समाप्त करने से सीधे संबंधित है जो विश्व के सभी देशों से हस्ताक्षरों के लिए खुली हुई है। यह 1991 प्रवर्तन में आई थी और इसके 81 राष्ट्र पक्षकार है और 3 हस्ताक्षरकर्ता हैं। भारत ने इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं।

3.8.9 दूसरे वैकलपिक प्रोटोकाल का अनुच्छेद 1 कथन करता है कि *''वर्तमान प्रोटोकाल के राज्यपक्षकार की अधिकारिता के भीतर किसी व्यक्ति को फांसी नहीं दी जाएगी''* और यह कि ''प्रत्येक राज्य पक्षकार अपनी अधिकारिता के भीतर मृत्युदंड को समाप्त करने के सभी उपाय करेगा'' दूसरे वैकलपिक प्रोटोकाल के लिए किसी आरक्षण की अनुज्ञा नहीं है, ''सिवाय उस आरक्षण के जो अनुसमर्थन या स्वीकृति के समय पर किया गया हो, जो युद्धकाल के दौरान किए गए सैनिक प्रकृति के किसी अत्यधिक गंभीर अपराध के लिए किसी दोषसिद्धि के अनुसरण में युद्ध के समय मृत्युदंड के लागू करने के लिए उपबंध करता हो।''[136] कुछ राज्य पक्षकारों ने ऐसे आरक्षण किए हैं।

ग. बालक के अधिकारों पर कन्वेंशन

---

[133] उदाहरण के लिए 2014 में इसने सिफारिश की कि सियरालियोन को ''मृत्युदंडादेश को समाप्त करने के लिए और प्रसंविदा के दूसरे वैकलपिक प्रोटोकाल का अनुसमर्थन करने के लिए अपने प्रयासों में शीघ्रता लानी चाहिए'', पैरा 18 मानव अधिकार समिति, सियरालियोन की प्रारंभिक रिपोर्ट पर अंतिम विचार, 25 मार्च, 2014 सीसीपीआर/एसएलई/सीओ/1 2009 में इसने देखा कि जबकि रूस ने 1996 से फांसी का वास्तव में अधिस्थगन कर दिया था, इसको ''शीघ्रतम संभव समय पर विधित: मृत्युदंड को समाप्त करने के लिए आवश्यक अध्युपाय करने चाहिए और प्रसंविदा के दूसरे वैकलपिक प्रोटोकाल को अंगीकार करने पर विचार करना चाहिए'', पैरा 12 में, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति, मानव अधिकार समिति के अंतिम विचार : रसियन फेडरेशन, 24 नवंबर, 2009, सीसीपीआर/सी/आरयूएस/सीओ/6।

[134] उदाहरण के लिए 2008 में जापान के अपने पुनर्विलोकन पर, समिति ने सिफारिश की, 'जनमत सर्वेक्षणों का ध्यान रखे बिना, राज्य पक्षकार को मृत्युदंड समाप्त करने के पक्ष में विचार करना चाहिए और जनता को इसे समाप्त करने की वांछनीयता के बारे में, जहां आवश्यक हो, सूचित करना चाहिए। पैरा 16, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति, मानव अधिकार समिति के अंतिम विचार : जापान, 18 दिसंबर, 2008, सीसीपीआर/सी/जेपीएन/सीओ/5 । समान रूप से 2006 में समिति ने संयुक्त राज्य से ''मृत्युदंड वाले अपराधों की संख्या सीमित करने की दृष्टि से फेडरल और राज्य विधानों का पुनर्विलोकन करने .....राज्य पक्षकार को मृत्युदंड को समाप्त करने की वांछनीयता को ध्यान में रखते हुए मृत्युदंड पर अधिस्थगन करना चाहिए'' से कहा। पैरा 29, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति, मानव अधिकार समित के अंतिम विचार : संयुक्त राज्य अमरीका, 15 सितंबर, 2006, सीसीपीआर/सी/यूएसए/सीओ/3।

[135] संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार समिति, मानव अधिकार समिति के अंतिम विचार : भारत, 4 अगस्त, 1997, सीसीपीआर/सी/179/एडीडओ/81, पैरा 20 पर।

[136] अनुच्छेद 2(1), अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा का दूसरा वैकलपिक प्रोटोकाल, जिसका उद्देश्य मृत्युदंड को समाप्त करना है ।

3.8.10 अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के समान बालक के अधिकारों ('सीआरसी') से संबंधित कन्वेंशन का अनुच्छेद 37(क) 18 वर्ष की आयु से कम व्यक्तियों के विरुद्ध मृत्युदंडादेश के प्रयोग का प्रतिषेध करता है। जुलाई, 2015 को 195 देशों ने बालक के अधिकारों से संबंधित कन्वेंशन का अनुसमर्थन किया है। अनुच्छेद 37(क) कथन करता है :

> राज्य पक्षकार यह सुनिश्चित करेंगे कि : (क) किसी बालक को यंत्रणा नहीं दी जाएगी या उसके साथ अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार नहीं किया जाएगा। 18 वर्ष की आयु से कम के व्यक्तियों द्वारा किए गए अपराधों के लिए न तो मृत्युदंड और न ही आजीवन कारावास, निर्मुक्ति की संभावना के बिना, अधिरोपित नहीं किया जाएगा।

3.8.11 बालक के अधिकारों से संबंधित समिति ने स्पष्ट किया है कि जब कि कुछ व्यक्तियों ने यह उपधारणा की है कि यह नियम 18 वर्ष के कम के व्यक्तियों को फांसी लगाने का प्रतिषेध करता है, ''मृत्युदंड किसी अपराध के लिए अधिरोपित नहीं किया जा सकता है जो 18 के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा किया गया हो, चाहे विचारण या दंडादेश या मंजूरी के निष्पादन के समय उसकी आयु कुछ भी हो।'' [137]

घ. यातना और क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन

3.8.12 धीरे-धीरे मृत्युदंड का विश्लेषण यातना और क्रूरता, अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध संननियमों का अतिक्रमण करने के रूप में किया गया है।[138] इस संदर्भ में, यातना और क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के विरुद्ध कन्वेंशन ('यातना कन्वेंशन') और यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति मृत्युदंड पर परिसीमाओं और साथ ही आवश्यक रक्षोपायों के लिए न्याय शास्त्र का स्रोत रही हैं।

3.8.13 यातना कन्वेंशन मृत्युदंड के अधिरोपण को यातना या क्रूरता, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड के रूप में नहीं मानता है। तथापि, फांसी देने की कुछ पद्धतियों[139] और मृत्यु पंक्ति के आभास[140] को राष्ट्र संघ निकायों द्वारा क्रूरता, अमानवीय या

---

[137] बालक के अधिकारों संबंधी समिति, साधारण टिप्पण 10: किशोर न्याय में बालक के अधिकार, 25 अप्रैल, 2007, सीआरसी/सी/जीसी/10, पृष्ठ 75 पर, http://www.2.ohchr.org/english/bodies/crc/docs/CRC.C.GC.10pdf पर उपलब्ध है (25.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[138] देखिए, उदाहरण के लिए, मानव अधिकार उच्चायुक्त का कार्यालय, मृत्युदंड को बढ़ती हुई यंत्रणा के रूप में देखा गया है। http://www.ohchr/EN/NewsEvents/Pages/DisplayNews.aspx?NewsID=12685LanglD=E#sthash.Gu6NTA2d.dpuf पर उपलब्ध है (25.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[139] यातना के विरुद्ध समिति को 'ऐरिजोना, ओकला होमा और ओहायो में फूहड़ ढंग से फांसी दिए जाने के हाल के मामलों ने विशेष रूप से कष्ट पहुंचाया' और उसने संयुक्त राज्य से 'दर्द और लंबी बढ़ाई हुई पीड़ा का निवारण करने के लिए अपनी फांसी संबंधी पद्धतियों का पुनर्विलोकन करने के लिए कहा' पैरा 25 में, संयुक्त राज्य अमरीका की तीसरी से चौथी मिश्रित आवधिक रिपोर्टों पर अंतिम विचार, 19 दिसंबर, 2014, सीएटी/सी/यूएसए/सीओ/3-5।

[140] कीनिया की रिपोर्ट पर अपने अंतिम विचारों में समिति ने यातना के विरुद्ध कहा कि वह 'उन व्यक्तियों की, जो मृत्यु पंक्ति में होते हैं, जो दुर्व्यवहार के बराबर हो सकता है, अनिश्चितता' के बारे में चिंतित रही है और उसने कीनिया से 'मृत्युदंड की पद्धति अंतिम रूप से समाप्त करने की दृष्टि से मृत्युदंड का शासकीय और सार्वजनिक रूप से ज्ञात अधिस्थगन स्थापित करने के लिए आवश्यक कार्रवाई करने के लिए' आग्रह किया, पैरा 29, यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति, समिति के यातना के विरुद्ध अंतिम विचार : कीनिया, 19 जनवरी, 2009, सीएटी/सी/केईएन/सीओ/1।

चीन की आवधिक रिपोर्ट का पुनर्विलोकन करते हुए यातना के विरुद्ध समिति ने 'मृत्यु पंक्ति में सिद्धदोष कैदियों के निरोध की दशाओं, विशेष रूप से दिन के 24 घंटे जंजीरों के उपयोग पर, जो क्रूर, अमानवीय या अपमानकारी व्यवहार के बराबर है, चिंता व्यक्त की, पैरा 34, यातना के विरुद्ध संयुक्त राष्ट्र समिति, यातना के विरुद्ध समिति के अंतिम विचार: चीन, 12 दिसंबर, 2008, सीएटी/सी/सीएचएन/सीओ/4।

अपमानजनक व्यवहार के रूप में देखा गया है। यद्यपि भारत ने यातना कन्वेंशन पर हस्ताक्षर किए हैं किन्तु उसने अभी तक उसका अनुसमर्थन नहीं किया है।

ड. अंतरराष्ट्रीय आपराधिक विधि

3.8.14 मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में अंतरराष्ट्रीय रुझान अंतरराष्ट्रीय आपराधिक विधि के विकास में भी स्पष्ट है। मृत्युदंड न्यूरमबर्ग[141] और टोकियों[142] अधिकरणों में, जो दोनों द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात् स्थापित की गई थीं, अनुज्ञेय दंड था। तथापि, उसके पश्चात् से अंतरराष्ट्रीय दंड न्यायालय – जिनके अंतर्गत पूर्व युगोस्लोवाकिया[143] के लिए अंतरराष्ट्रीय आपराधिक अधिकरण का स्टेच्यूट, अधिकरण अंतरराष्ट्रीय आपराधिक अधिकरण रुआंडा[144] का स्टैचूट , विशेष न्यायालय सियेरालियोन[145] का स्टैचूट और कम्बोडिया[146] के न्यायालयों में असाधारण चेम्बरों की स्थापना से संबंधित विधि, हैं- अनुज्ञेय दंड रूप में मृत्युदंड का अपवर्जन करते हैं। यही अंतरराष्ट्रीय दंड न्यायालय रोम[147] के स्टैचूट के लिए सही है, जहां न्यायाधीश केवल कारावास की अवधियों को अधिरोपित कर सकते हैं। इसका अवश्य ध्यान रखा जाना चाहिए कि ये अधिकरण मृत्युदंड का प्रयोग नहीं करते हैं, वाबजूद इसके कि वे अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन अत्यधिक गंभीर अपराधों के बारे में, जिनमें जनसंहार, युद्ध संबंधी अपराध और मानवता के विरुद्ध अपराध सम्मिलित हैं, नियमित रूप से कार्रवाई करते हैं। यह उससे सुसंगत है कि भारत, रोम स्टैचूट का हस्ताक्षरकर्ता नहीं है।

---

[141] संयुक्त राज्य होलोकास्ट स्मारक संग्रहालय, इंटरनेशनल मिलिटरी ट्रिबुनल, नूरेम्बर्ग, http://www.ushmm.org/wic/en/article.php?Moduleld=10007069 पर उपलब्ध है (15.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[142] वर्जीनिया विश्वविद्यालय, टोकियो वार क्राइम्स ट्रायल : ए डिजिटल एगजिबिशन, http://lib.law.virginia.edu/imtfe/tribunal पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[143] पूर्व युगोस्लोवाकिया के लिए अंतरराष्ट्रीय दंड अधिकरण, का स्टेच्यूट http//www.icty.org/x/file/Legal%20Libiary/Statute/statute_sept09_en.pdf पर उपलब्ध है (15.05.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[144] अंतरराष्ट्रीय दंड अधिकरण, रुआंडा का स्टेच्यूट http//legal.un.org/avl/pdf/ha/iotr_EF.pdf पर उपलब्ध है (15.05.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[145] विशेष न्यायालय, सियेरालियोन का स्टेच्यूट, http://rscsl.org/Documents/scsl-statute.pdf पर उपलब्ध है (15.05.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[146] कंबोडिया के न्यायालयों में असाधारण कक्षों की स्थापना से संबंधित विधि http://www.eccc.gov.kh/sites/default/files/legal-documents/KR_Law_as_amended_27_Oct_2004_Eng.pdf पर उपलब्ध है (15.05.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[147] अंतरराष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय का रोम स्टैच्यूट http://www.icccpi.int/nr/rdonlyres/ea9aeff7_5752_4f84_be94_0a655eb30e16/0/rome_statute_english.pdf पर उपलब्ध है (15.05.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

च. भारतीय विधि में अंतरराष्ट्रीय संधि बाध्यताएं

3.8.15 ऊपर वर्णित संधियों में से भारत ने अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा और बालक के अधिकारों से संबंधित कन्वेंशन का अनुसमर्थन किया है और वह यातना कन्वेंशन का हस्ताक्षरकर्ता है किन्तु उसने उसका अनुसमर्थन नहीं किया है। अंतरराष्ट्रीय विधि के अधीन संधि बाध्यताएं राज्यों पर, यदि एक बार वे संधि का अनुसमर्थन कर देते हैं तो उन पर आबद्धकर होती हैं।[148] यहां तक कि जहां किसी संधि पर हस्ताक्षर किए गए हैं किन्तु उसका अनुसमर्थन नहीं किया गया है, वहां राज्य 'ऐसे कार्यों से, जो उस संधि का उद्देश्य और प्रयोजन विफल करेंगे, उससे विरत रहने के लिए आबद्ध है'।[149]

3.8.16 भारत में देशी विधान से अंतरराष्ट्रीय संधियों को भारतीय विधि में प्रवर्तनीय बनाने की अपेक्षा की जाती है।[150] मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1994 धारा 2(घ) और 2(च) के द्वारा भारतीय विधि में अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा को निगमित करता है। धारा 2(घ) कथन करती है कि, 'मानव अधिकार' से प्राण, स्वतंत्रता, समानता और व्यक्ति की गरिमा से संबंधित ऐसे अधिकार अभिप्रेत हैं जो संविधान द्वारा प्रत्याभूत किए गए है या अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं में सन्निविष्ट और भारत में न्यायालयों द्वारा प्रवर्तनीय है ; धारा 2(च) कथन करती है कि, 'अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा' से संयुक्त राष्ट्र की महासभा द्वारा 16 दिसम्बर, 1966 को अंगीकार की गई सिविल और राजनीतिक अधिकारों पर अंतराष्ट्रीय प्रसंविदा और आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदा अभिप्रेत है'।

3.8.17 आगे भारतीय संविधान के अनुच्छेद 51(ग) के अनुसार राज्य 'संगठित लोगों में एक दूसरे से व्यवहारों में अंतरराष्ट्रीय विधि और संधि बाध्यताओं के प्रति आदर बढ़ाने का प्रयास करेगा।' जब कि यह भारत की सभी संधि बाध्यताओं को स्वत: भारत पर आबद्धकर नहीं बनाता है, न्यायालयों ने जहां अंतरराष्ट्रीय विधि के नियमों का आदर किया है वहीं भारत में कोई विरोधी विधान नहीं है।[151]

(ii) अंतरराष्ट्रीय विधि में मृत्युदंड से संबंधित रक्षोपाय

3.8.18 संयुक्त राष्ट्र संघ के निकायों के संकल्पों ने और साथ ही संयुक्त राष्ट्र संघ की विशेष प्रक्रियाओं द्वारा किए गए टिप्पणों और रिपोर्टों ने मृत्युदंड के संबंध में और जहां उसका प्रयोग किया जाता है वहां आवश्यक रक्षोपायों के संबंध में अंतरराष्ट्रीय विधि मानकों के प्रति योगदान दिया है। इन लिखतों में से अधिकांश में रुझान मृत्युदंडादेश के क्षेत्र को वैश्विक रूप से परिसीमित करने और वहां जहां संभव है, उसको समाप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने की तरफ।

---

[148] देखिए आर्टिकिल 26, संधि की विधि पर विएना प्रसंविदा 'प्रत्येक संधि, जो प्रवृत्त है उसके पक्षकारों पर आबद्धकर है और उनके द्वारा उसका सद्भावपूर्वक पालन किया जाना चाहिए'।

[149] आर्टिकिल 18, विएना कन्वेंशन आन दि ला आफ ट्रीटीज (वीसीएलटी)।

[150] जोली जार्ज वर्गीज और अन्य बनाम दि बैंक आफ कोचीन, 1980 एआईआर 470।

[151] राष्ट्रीय विधिक सेवा प्राधिकरण बनाम भारत संघ (2014) 5एससीसी 438, उदाहरण के लिए भारत के उच्चतम न्यायालय ने कहा 'कोई अंतरराष्ट्रीय कंवेंशन जो मूल अधिकारों से असंगत नहीं हैं और उसकी मूल भावना के अनुरूप है, उसे उन उपबंधों अर्थात् संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 19 और 21 के अर्थ और उनकी अंतर्वस्तु का विस्तार करने के लिए और संवैधानिक गारंटियों के उद्देश्य का संवर्धन करने के लिए', पढ़ा जाना चाहिए।

क. आर्थिक और सामाजिक परिषद् रक्षोपाय

3.8.19 संयुक्त राष्ट्र संघ आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ईसीओएसओसी) ने इस संबंध में कि उन देशों में, जहां उसको बनाए रखा गया है, मृत्युदंड को कैसे अधिरोपित किया जाना चाहिए, रक्षोपाय विहित करते हुए कई संकल्प जारी किए हैं । ये रक्षोपाय अंतरराष्ट्रीय विधि में मृत्युदंड के क्षेत्र और उसके लागू होने की महत्वपूर्ण परिसीमाओं को समाविष्ट करते हैं।

3.8.20 पहला अंतरराष्ट्रीय आर्थिक और सामाजिक परिषद् का संकल्प, जिसका नाम उनके अधिकारों के, ''जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, संरक्षण की गारंटी करने वाले रक्षोपाय'' 1984 में अंगीकार किया गया था[152] और उसमें निम्नलिखित 9 रक्षोपाय हैं :

1. ऐसे देशों में, जिन्होंने मृत्युदंड को समाप्त नहीं किया है, मृत्युदंड अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए ही अधिरोपित किया जा सकता है, यह समझा जाता है कि उनका क्षेत्र प्राणहर शस्त्र से किए गए साशय अपराधों के परे या अन्य अत्यधिक गंभीर परिणामों से परे नहीं होना चाहिए।

2. मृत्युदंड केवल ऐसे अपराध के लिए अधिरोपित किया जा सकता है जिसके लिए मृत्युदंड उसके किए जाने के समय विधि द्वारा विहित किया गया है, यह समझा जाता है कि यदि अपराध के किए जाने के पश्चातवर्ती, विधि द्वारा किसी हल्के दंड के अधिरोपण के लिए उपबंध किया जाता है, तो अपराधी को उससे लाभ प्राप्त होगा।

3. अपराध किए जाने के समय 18 वर्ष की आयु से कम के व्यक्ति को मृत्यु से दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा और न मृत्युदंडादेश गर्भवती महिलाओं पर या नई माताओं पर या ऐसे व्यक्तियों पर, जो पागल हो गए हैं, कार्यान्वित किया जाएगा।

4. मृत्युदंड तभी अधिरोपित किया जा सकता है जब कि आरोपित व्यक्ति का दोष स्पष्ट और भरोसा दिलाने वाले साक्ष्य पर आधारित हो और जिसमें तथ्यों के किसी वैकलपिक स्पष्टीकरण के लिए कोई संदेह न हो।

5. मृत्युदंड विधिक प्रक्रिया के पश्चात् किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय के अनुसरण में, जो उचित विचारण सुनिश्चित करने के सभी संभव रक्षोपाय करता हो, कम से कम उनके बराबर, जो अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा के अनुच्छेद 14 में अंतर्विष्ट हैं, जिनके अंतर्गत किसी ऐसे व्यक्ति का कार्यवाही के सभी प्रक्रमों पर पर्याप्त विधिक सहायता के लिए अधिकार भी है, जिस पर ऐसे अपराध के लिए, जिसके लिए मृत्युदंड अधिरोपित किया जा सकता है, संदेह किया गया हो या उससे उसे आरोपित किया गया हो।

6. किसी भी ऐसे व्यक्ति के पास, जिसे मृत्यु का दंडादेश दिया गया है, उच्चतर अधिकारिता वाले न्यायालय को अपील करने का अधिकार होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए कि ऐसी अपीलें आज्ञापक होंगी।

7. मृत्यु से दंडादिष्ट किसी व्यक्ति को क्षमा या दंडादेश का लघुकरण चाहने का अधिकार होगा ; क्षमा या दंडादेश का लघुकरण मृत्युदंडादेश के सभी मामलों में किया जा सकता है।

8. मृत्युदंड किसी अपील के लंबित होते हुए या अन्य प्रक्रिया अथवा क्षमा या दंडादेश के लघुकरण से संबंधित अन्य कार्यवाही के लंबित होते हुए, कार्यान्वित नहीं किया जाएगा।

---

[152] उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपाय । आर्थिक और सामाजिक परिषद् संकल्प द्वारा अनुमोदित 1984/50, 25 मई, 1984,http://www.ohchr.org/EN/ProfessionalInterest/Pages/DeathPenalty.aspx पर उपलब्ध है (6.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

9. जहां मृत्युदंड दिया जाता है वहां इसे प्रकार कार्यान्वित किया जाएगा कि जिससे न्यूनतम संभव पीड़ा हो।

3.8.21 दो पश्चातवर्ती संकल्पों ने अतिरिक्त रक्षोपायों को प्रारंभ किया।

3.8.22 1989 के संयुक्त राष्ट्र संघ आर्थिक और सामाजिक परिषद् के संकल्प ने और रक्षोपायों को जोड़ा, जिनके अंतर्गत मृत्युदंड के अधिरोपण में पारदर्शिता को प्रोत्साहित करना सम्मिलित है (जिसके अंतर्गत इस विषय पर जानकारी और आंकड़े प्रकाशित करना है); उस अधिकतम आयु को स्थापित करना, जिसके पश्चात् किसी व्यक्ति को फांसी नहीं दी जा सकती है और ''ऐसे व्यक्तियों के लिए, जो मानसिक शिथिलता या अत्यधिक सीमित मानसिक क्षमता से पीड़ित हैं, चाहे दंडादेश के प्रक्रम पर या निष्पादन के'' मृत्युदंड को समाप्त करना।[153]

3.8.23 1996 में आर्थिक और सामाजिक परिषद् के एक तीसरे संकल्प[154] ने राज्यों को यह सुनिश्चित करने के लिए प्रोत्साहित किया कि मृत्युदंड का सामना करने वाले प्रत्येक प्रतिवादी को ऋजु विचारण सुनिश्चित करने के लिए सभी गारंटियां दी जाएं। इसने विनिर्दिष्ट रूप से राज्यों से यह सुनिश्चित करने के लिए कहा कि ऐसे प्रतिवादियों को, जो न्यायालय में प्रयोग की गई भाषा पर्याप्त रूप से नहीं समझते हैं, पूर्णरूप से उनके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से और सुसंगत साक्ष्य से और यह कि उनके पास अपने दंडादेश से और क्षमा चाहने के लिए अपील करने का पर्याप्त समय है, अवगत कराया जाए। इसने राज्यों से यह भी सुनिश्चित करने के लिए कहा कि फांसी देने की प्रक्रिया के विनिश्चय में सम्मिलित अधिकारियों को अपील और क्षमा प्रदान करने के लिए याचिका की स्थिति से पूर्णतया अवगत कराया जाए।

ख. गैर न्यायिक, संक्षिप्त या मनमाने निष्पादनों पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्टें

3.8.24 जहां किसी मृत्युदंड का अधिरोपण और निष्पादन अंतरराष्ट्रीय विधि के संनियमों का पालन नहीं करता है वहां उसे राज्य द्वारा किया गया गैर न्यायिक निष्पादन माना जा सकता है और विशेष रिपोर्टर ने गैर न्यायिक, संक्षिप्त या मनमाने निष्पादनों पर ('गैर न्यायिक निष्पादन पर विशेष रिपोर्टर') समय –समय पर मृत्युदंड के विभिन्न पहलुओं संबंधी विचार-विमर्श पर टिप्पणी की हैं।

3.8.25 उदाहरण के लिए 2006 में गैर न्यायिक निष्पादनों पर विशेष रिपोर्टर ने मृत्युदंड के प्रयोग में पारदर्शिता के संबंध में एक रिपोर्ट निकाली।[155] 2007 में गैर न्यायिक निष्पादनों पर विशेष रिपोर्टर ने विद्यमान संधि संबंधी बाध्यताओं, न्यायशास्त्र और संयुक्त राष्ट्र संघ के संधि संबंधी निकायों द्वारा कथनों के सर्वेक्षण में कहा, 'मृत्युदंड केवल इस प्रकार अधिरोपित किया जा सकता है कि वह इस

---

[153] उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपायों का कार्यान्वयन। आर्थिक और सामाजिक परिषद् संकल्प 1989/64, http://www.unodc.org/documents/commissions/CCPCJ/Crime_Resolutions/1980-1989/1989/ECOSOC/Resolution_1989-64.pdf पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[154] उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपाय। आर्थिक और सामाजिक परिषद् संकल्प द्वारा अनुमोदित 1996/15, पैरा 6, http://www.un.org/documents/ecococ/res/1996/eres1996-15htmf पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[155] न्यायिक से भिन्न, संक्षिप्त या मनमानी फांसी, पारदर्शिता और मृत्युदंड के अधिरोपण पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्ट, E/CN.4/2006/53/Add.3 24 मार्च, 2006, http://daccess-dds-ny.un.org/doc/UNDOC/GEN/G06/120/57/PDF?G0612057.pdf? Open Element पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

प्रतिबंध का अनुपालन करे कि वह अत्यधिक गंभीर अपराधों तक सीमित होना चाहिए, ऐसे मामलों में जहां यह दर्शित किया जा सके कि आशय मारने का था और जिसके परिणामस्वरूप जिन्दगी की समाप्ति हुई है।'[156]

ग. यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजक व्यवहार अथवा दंड पर विशेष रिपोर्टर

3.8.26 यातना पर विशेष रिपोर्टर ने विनिर्दिष्ट रूप से यह विचार-विमर्श किया है कि क्या मृत्युदंड को क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक दंड समझा जा सकता है। इस विषय पर अपनी रिपोर्ट में विशेष रिपोर्टर ने अंतरराष्ट्रीय निकायों द्वारा न्याय शास्त्र में किए गए विकास पर ध्यान दिया है, जिन्होंने पाया था कि शारीरिक दंड बहुधा क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के बराबर था, क्योंकि उसका मानव गरिमा पर प्रभाव होता था। जबकि विशेष रिपोर्टर उतनी दूर तक नहीं गया, जहां यह कहा जा सके कि मृत्युदंड – संभवत: वह शारीरिक दंड का चरम रूप है- हमेशा क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार के बराबर नहीं होता है, उसने यह भी देखा कि मृत्युदंड की अनुज्ञेयता को 'धीरे-धीरे शारीरिक और मृत्युदंड के बीच विभाजन से उत्पन्न होने वाली स्पष्ट असंगतताओं द्वारा और मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में सार्वभौमिक रुझानों द्वारा चुनौती दी जा रही है।'[157]

3.8.27 विशेष रिपोर्टर ने कतिपय राज्यों से मृत्यु दंडादेशों पर अधिस्थगन अधिरोपित करने के लिए भी आग्रह किया है।[158]

(iii) मृत्युदंड के संबंध में वैश्विक रूप से राजनैतिक बाध्यताएं

3.8.28 मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में रुझान संयुक्त राष्ट्र संघ में, निकायों जैसे महासभा और संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद् के संकल्पों द्वारा,की गई राजनैतिक प्रतिबद्धताओं की श्रृंखलाओं में प्रकट है।

क. महा सभा संकल्प

3.8.29 संयुक्त राष्ट्र महासभा (यूएनजीए) के कई संकल्पों ने मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन के लिए मांग की है। 2007 में संयुक्त राष्ट्र महासभा ने राज्यों से 'धीरे-धीरे प्रगति करते हुए मृत्युदंड का प्रयोग निर्बंधित करने, ऐसे अपराधों की संख्या में कमी करने, जिनके लिए उसे अधिरोपित किया जा सकता है' और 'मृत्युदंड समाप्त करने की दृष्टि से फांसी देने पर अधिस्थगन स्थापित करने के लिए' कहा है।[159] 2008 में महासभा ने इस संकल्प[160] की जिसे 2010[161], 2012[162] और 2014[163] में पश्चातवर्ती

---

[156] न्यायिक से भिन्न, संक्षिप्त या मनमानी फांसी, पारदर्शिता और मृत्युदंड के अधिरोपण पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्ट, ए/एचआरसी/4/20, 29 जनवरी, 2007, पैरा 53 पर, http://daccess-dds-ny.un.org/doc/UNDOC/GEN/G07/105/00/PDF?G0710500.pdf? Open Element पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[157] पैरा 47 यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्ट,ए/एचआरसी/10/44, 14 जनवरी, 2009, पैरा 47 पर, http://daccess-dds-ny.un.org/doc/UNDOC/GEN/G09/105/103/12/PDF/G0910312.pdf? Open Element पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[158] देखिए, संयुक्त राष्ट्र संघ मानव अधिकार उच्चायुक्त, संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञों ने पाकिस्तान से किशोरों को फांसी न देने के लिए आग्रह किया है, 20 मार्च, 2015, http://www.ohchr.org/EN?NewsEvents/Pages?displayNews.aspx?NewsID=15729&LanglID=E और संयुक्त राष्ट्र/मृत्युदंड : संयुक्त राष्ट्र संघ के विशेषज्ञ फेडरल अधिस्थगन के लिए, जब बोस्टन के बम फेंकने वाले को मृत्युदंड दिया जा रहा है, मांग करते हैं, 26 जून, 2015 http://www.ohchr.org/EN?NewsEvents/Pages?displayNews.aspx?NewsID=16160&LangID=E पर उपलब्ध है (3.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[159] महासभा द्वारा अंगीकार किया गया संकल्प 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन' ए/आइएस/62/149, 26 फरवरी, 2008।

संकल्पों द्वारा पुन: सुदृढ़ किया गया था', पुन: पुष्टि की । इनमें से बहुत से संकल्पों में यह देखा गया कि 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन मानव गरिमा और मानव अधिकारों की वृद्धि और प्रगतिशील विकास के लिए आदर करने के लिए योगदान देता है''।

3.8.30 इन संकल्पों को धीरे-धीरे अधिक समर्थन प्राप्त हो रहा है : 117 देशों ने 2014 में अभी हाल के संकल्प के पक्ष में, जो कि 2007 में 104 की तुलना में अधिक था, मतदान किया।

ख. संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद्

3.8.31 संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार परिषद् ने हाल ही में मृत्युदंड पर, मृत्युदंड से दंडादिष्ट या फांसी दिए गए, माता-पिता के बच्चों के मानव अधिकारों का प्रारंभिक बिंदु के रूप में प्रयोग करते हुए एक नई जांच आरंभ की है। 2013 के संकल्प में, मानव अधिकार परिषद् ने 'माता-पिता के मृत्युदंड और उसके निष्पादन का उनके बच्चों पर नकारात्मक प्रभाव' अभिस्वीकार किया था और 'राज्यों से उन बच्चों को ऐसा संरक्षण और सहायता देने के लिए, जिनकी वे अपेक्षा करें,' आग्रह किया था और इस विनिर्दिष्ट विषय पर एक अध्ययन कराने के लिए आदेश दिया था।[164] इसने राज्यों से 'उन बालकों को या, जहां समुचित हो, बालक के सर्वोत्तम हितों को सम्यक् रूप से ध्यान में रखते हुए परिवार के दूसरे सदस्य को, उनके माता-पिता तक पहुंचने के लिए और उनके माता-पिता की स्थिति के बारे में सभी सुसंगत जानकारी तक पहुंचने की व्यवस्था करने के लिए' कहा।[165] मानव अधिकार परिषद् के 2014 के संकल्प में यह देखा गया कि 'विभिन्न विधिक प्रणालियों, परम्पराओं, संस्कृतियों और धार्मिक पृष्ठभूमि वाले राज्यों में मृत्युदंड को समाप्त कर दिया गया है या वे उसके प्रयोग पर अधिस्थगन लागू कर रहे हैं' और इस तथ्य पर खेद प्रकट किया कि 'मृत्युदंड का प्रयोग उनके, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं और अन्य प्रभावित व्यक्तियों के मानव अधिकारों के अतिक्रमणों का मार्ग प्रशस्त करता है' मानव अधिकार परिषद् ने राज्यों से अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल का अनुसमर्थन करने के लिए आग्रह किया है।[166]

(iv) मृत्युदंड और प्रत्यर्पण की विधि

3.8.32 प्रत्यर्पण की विधि मृत्युदंड की समाप्ति करने वाले देशों के लिए एक दूसरा औजार रही हैं।[167] कई मृत्युदंड समाप्त करने वाले देश या तो उसे बनाए रखने वाले- प्रत्यर्पण करने वाले देशों से मृत्युदंड अधिरोपित न करने के आश्वासन की अपेक्षा करते हैं या

---

160 महासभा द्वारा अंगीकार किया गया संकल्प 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन' ए/आइएस/63/168, 13 फरवरी, 2009।

161 महासभा द्वारा अंगीकार किया गया संकल्प 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन' ए/आइएस/65/206, 28 मार्च, 2011।

162 महासभा द्वारा अंगीकार किया गया संकल्प 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन' ए/आइएस/67/176, 20 मार्च, 2013।

163 महासभा द्वारा अंगीकार किया गया संकल्प 'मृत्युदंड के प्रयोग पर अधिस्थगन' ए/आइएस/69/166, 4 फरवरी, 2015।

164 मानव अधिकार परिषद् मृत्युदंड या फांसी दिए गए माता-पिता के बालकों के मानव अधिकारों से संबंधित पैनल, 15 मार्च, 2013, ए/एचआरसी/22/एल.18

165 मानव अधिकार परिषद् मृत्युदंड या फांसी दिए गए माता-पिता के बालकों के मानव अधिकारों से संबंधित पैनल, 15 मार्च, 2013, ए/एचआरसी/22/एल.18

166 मानव अधिकार परिषद्, मृत्युदंड पर प्रश्न, 25 जून, 2014ए/एचआरसी/26/एल.8/आरइवी.1

167 उदाहरण के लिए मृत्युदंड समाप्त कर देने वाले देश, ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रत्यर्पण के लिए अनुरोध से इंकार करके, जो मृत्युदंड अपराधों के लिए अपेक्षित हैं, उन पर दबाव डालते हैं, जिन्होंने मृत्युदंड को बनाए रखा है। देखिए रोजर हुड, केरोलिन होयल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 35 पर, (5वां संस्करण 2015)।

उन्होंने ऐसे खंड को द्विपक्षीय प्रत्यर्पण संधि में सम्मिलित कर दिया है।[168] मृत्युदंड समाप्त करने वाले देश बहुधा इसे सुनिश्चित करने के लिए आबद्ध हैं। उदाहरण के लिए यूरोपियन यूनियन का मौलिक अधिकार चार्टर का आर्टिकिल 19(2) :

> किसी को भी ऐसे देश में भेजा, निष्काषित या प्रत्यर्पित नहीं किया जा सकता है, जहां इस बात का गंभीर खतरा है कि वहां उसको मृत्युदंड दिया जाएगा, यातना दी जाएगी या उसके साथ अन्य अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार किया जाएगा या दंड दिया जाएगा।

3.8.33 कई न्यायालयों ने इस विषय पर प्रारंभिक निर्णय किए हैं। उदाहरण के लिए सोरिंग वर्सेस यूके[169] के मामले में यूरोपियन मानव अधिकार न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी व्यक्ति का यूके से वर्जीनिया के लिए, जो संयुक्त राज्य अमरीका में राज्य है, जिसने मृत्युदंड अधिरोपित किया था, प्रत्यर्पण यूरोपियन मानव अधिकार कनवेंशन का अतिक्रमण करेगा क्योंकि :

> ऐसी चरम दशाओं में, मृत्यु पंक्ति में व्यतीत की गई बहुत लंबी अवधि, हमेशा मृत्युदंड के निष्पादन की प्रतीक्षा करने वालों के लिए सदैव बनी रहने वाली और बढ़ने वाली चिंता के साथ और आवेदक की व्यक्तिगत परिस्थितियों के लिए, विशेष रूप से अपराध के समय उसकी आयु और उसकी मानसिक स्थिति को देखते हुए, आवेदक का (संयुक्त राज्य) के लिए प्रत्यर्पण आर्टिकिल 3 (यातना का प्रतिषेध) द्वारा स्थापित अवसीमा के परे जाकर व्यवहार के वास्तविक खतरे के लिए उसे अनावृत्त करेगा।

3.8.34 यूएस वर्सेस बर्नस,[170] के मामले में कनाडा के उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड बनाए रखने वाले किसी देश को प्रत्यर्पण के मामले में ये आश्वासन 'कि मृत्युदंड अधिरोपित नहीं किया जाएगा, या यदि अधिरोपित किया गया तो , निष्पादित नहीं किया जाएगा' सभी मामलों में किन्तु 'अपवादात्मक' मामलों के सिवाय, आवश्यक थे। समान रूप से 'मोहम्मद एंड एनादर वर्सेस प्रेसिडेंट आफ दि रिपब्लिक आफ साउथ अफ्रीका'[171] के मामले में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि ''मोहम्मद का 'विवासन' या 'प्रत्यर्पण' पहले यह आश्वासन प्राप्त किए बिना कि उसे मृत्युदंडादेश नहीं दिया जाएगा या यदि इस प्रकार दंडादिष्ट किया गया तो उसे फांसी नहीं दी जाएगी, असंवैधानिक होगा'' यह भी जोड़ा कि ऐसा प्रत्यर्पण उसके 'जीवन के अधिकार, उसकी मानव गरिमा का आदर और संरक्षण किए जाने के अधिकार और उसके साथ क्रूरता, अमानवीयता किए जाने या अपमानजनक दंड दिए जाने के अधिकार का' अतिक्रमण होगा।

3.8.35 इसी प्रकार का न्याय शास्त्र अंतरराष्ट्रीय विधि में भी पाया जा सकता है। जज वर्सेस कनाडा[172] में संयुक्त राष्ट मानव अधिकार समिति ने कनाडा से संयुक्त राज्य को विवासित किए गए किसी व्यक्ति के बारे में कार्रवाई करते हुए, अभिनिर्धारित किया कि ''कनाडा ने, ऐसे राज्य पक्षकार के रूप में, जिसने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है, इस बात का ध्यान रखे बिना कि उसने अभी तक अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल का अनुसमर्थन नहीं किया है, आर्टिकिल

---

168 उदाहरण के लिए चीन ने स्पेन, फ्रांस और आस्ट्रेलिया के साथ यह कहते हुए प्रत्यर्पण संधियों पर हस्ताक्षर किए है कि वह इन देशों से प्रत्यवर्तित किए गए व्यक्तियों पर मृत्युदंड अधिरोपित नहीं करेगा। देखिए रोजर हुड, केरोलिन होयल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 38 पर, (5वां संस्करण 2015)।

169 एप्लीकेशन नं0 14038/68, http://hudoc.echr.coe.int/eng?i=001-57619 पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

170 यूएस वर्सस बर्न्स, (2001) 1 एससीआर 283।

171 2001 (3) एसए 893 (सीसी)।

172 रोजर जज वर्सस कनाडा, कम्युनिकेशन नं0 829/1998 यू.एन. डीओसी. सीसीपरीआर/सी/78/डी/829/1998 (2003)

6, पैरा 1 के अधीन लेखक के जीवन के अधिकार का, उसे संयुक्त राज्य में विवासित करके, जहां वह मृत्युदंड के अधीन है, यह सुनिश्चित किए बिना कि उसे मृत्युदंड नहीं दिया जाएगा, अतिक्रमण किया है।''[173]

3.8.36 भारत का प्रत्यर्पण अधिनियम, 1962 इस सिद्धांत को धारा 34ग में प्रतिबिंबित करता है : 'तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, जहां किसी ऐसे प्रपलायी अपराधी को, जिसने भारत में मृत्यु से दंडनीय प्रत्यर्पण अपराध किया है, केंद्रीय सरकार के अनुरोध पर किसी विदेशी राज्य द्वारा अभ्यर्पित किया जाता है या लौटाया जाता है और उस विदेशी राज्य की विधियों में ऐसे अपराध के लिए मृत्यु शास्ति का उपबंध नहीं है वहां ऐसा प्रपलायी अपराधी उस अपराध के लिए केवल आजीवन कारावास से दंडनीय होगा'।

ख. मृत्युदंड पर अंतरराष्ट्रीय रुझान

3.9.1 आज मृत्युदंड की प्रास्थिति और उसका प्रयोग, मृत्युदंड समाप्त करने की ओर ऐसे रुझान का सुझाव देते हैं, जिसमें गलती नहीं की जा सकती है। जब संयुक्त राष्ट्र को 1945 में बनाया गया था, विश्व में केवल 7 देशों ने मृत्युदंड समाप्त किया था।[174] इसके विरुद्ध 31 दिसम्बर, 2014 को विश्व में 140 देशों ने मृत्युदंड को विधि या व्यवहार में समाप्त कर दिया है।[175]

3.9.2 संयुक्त राष्ट्र महासचिव, वैश्विक रूप से मृत्युदंड की प्रास्थिति पर एक आवधिक रिपोर्ट प्रकाशित करते हैं ; इन रिपोर्टों में से अद्यतन में 2009 और 2013 के बीच स्थिति का वैश्विक रूप से अवलोकन किया गया है।[176] इस अवधि में पूर्णरूप से समाप्त करने वाले राज्यों की संख्या बढ़कर 6 हो गई है और लगभग सभी बनाए रखने वाले देशों ने मृत्युदंड के अधीन रहते हुए निष्पादनों की संख्या में और अपराधों की संख्या में कमी की रिपोर्ट की है। मृत्युदंड बनाए रखने वाले देशों में से केवल 32 ने न्यायिक फांसियों को दिया है। इस रिपोर्ट ने 'अधिकांश देशों में मृत्युदंड समाप्त किए जाने और उसके प्रयोग को निर्बंधित किए जाने की दिशा में स्पष्ट चिह्नित रुझान के बने रहने की पुष्टि की है।[177]

3.9.3 यह रुझान अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल के, जिसका उद्देश्य मृत्युदंड समाप्त करना है, जिस पर 81 राज्यों ने हस्ताक्षर किए है या उसे स्वीकार किया है, हस्ताक्षरकर्ताओं से स्पष्ट है।

(i) मृत्युदंड के संबंध में क्षेत्रीय रुझान

क. अमरीका

---

[173] रोजर जज वर्सस कनाडा, कम्युनिकेशन नं0 829/1998 यू.एन. डीओसी. सीसीपीआर/सी/78/डी/829/1998 (2003), पैरा 10.6 पर ।

[174] पैरा 31, यातना और अन्य क्रूर, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या दंड पर विशेष रिपोर्टर की रिपोर्ट,ए/एचआरसी/10/44, 14 जनवरी, 2009, http://daccess-dds-ny.un.org/doc/UNDOC/GEN/G09/105/103/12/PDF/G0910312.pdf? Open Element पर उपलब्ध है (5.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[175] देखिए एनेक्सचर ॥, एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसी, एसीटी 50/001/2015।

[176] उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपाय। सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट, ई/2015/49, 13 अप्रैल, 2015, पैरा 26 पर, http://www.ohchr.org/Documents/Issues/DeathPenalty/E-2015-49.pdf पर उपलब्ध है (5.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[177] उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपायों का कार्यान्वयन। सेक्रेटरी जनरल की रिपोर्ट, ई/2015/49, 13 अप्रैल, 2015, पैरा 26 पर, http://www.ohchr.org/Documents/Issues/DeathPenalty/E-2015-49.pdf पर उपलब्ध है (5.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

3.9.4 अमरीकन मानव अधिकार संबंधी कन्वेंशन 1969 मृत्युदंड के लागू किए जाने को महत्वपूर्ण रूप से निर्बंधित करता है। कन्वेंशन का आर्टिकिल 4 कथित करता है कि इसको उचित विचारण के पश्चात् गंभीर अपराधों के लिए ही अधिरोपित किया जा सकता है, इसे राजनैतिक अपराधों या संबंधित मामूली अपराधों के लिए नहीं दिया जा सकता है, यह उन राज्यों में, जिन्होंने इसे समाप्त कर दिया है, पुन: स्थापित नहीं किया जा सकता है और यह 18 वर्ष से कम आयु के व्यक्ति पर या 70 वर्ष के अधिक आयु के व्यक्ति पर या गर्भवती महिला पर अधिरोपित नहीं किया जा सकता है।

3.9.5 अमरीका के पास मृत्युदंड समाप्त करने वाला एक विनिर्दिष्ट कन्वेंशन भी है। मृत्युदंड समाप्त करने के लिए अमरीकन मानव अधिकार कन्वेंशन के (जिसे 13 देशों द्वारा अनुसमर्थित किया गया है) प्रोटोकाल के आर्टिकिल 1 के अधीन 'इस प्रोटोकाल के राज्य पक्षकार अपने राज्यक्षेत्र में, अपनी अधिकारिता के अधीन किसी व्यक्ति को मृत्युदंड नहीं देंगे। '

3.9.6 कुछ देशों के इसे विधि में रखने के बावजूद अमरीका के अधिकांश देशों में मृत्युदंड विधि या व्यवहार में समाप्त कर दिया गया है।

3.9.7 उदाहरण के लिए अपने बहुत से दक्षिण अमरीकन पड़ोसियों के समान[178] **ब्राजील** ने 1882 में कई दशाब्दियों पहले मामूली अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त कर दिया था। यह समाप्त करना मामूली अपराधों के लिए मृत्युदंड तक ही लागू होता है और युद्ध के असाधारण समय में अपराधों के लिए मृत्युदंड अभी तक बना हुआ है। ब्राजील का संविधान उपबंध करता है कि मृत्यु द्वारा कोई दंड नहीं दिया जाएगा सिवाय युद्ध के मामले में आर्टिकिल [5XLVII][179] । वही आर्टिकिल यह भी उपबंध करता है कि कोई आजीवन कारावास वहां नहीं होगा,इससे ब्राजील विश्व के ऐसे कुछ देशों में से एक बन गया है जहां मृत्युदंड और आजीवन कारावास दोनों विद्यमान नहीं हैं। बीसवीं शताब्दी में राजनैतिक अस्थिरता और सैनिक शासन की दृष्टि से, ब्राजील ने : मृत्युदंड को दो बार वर्ष 1939-45 में (हिंसा के राजनीति से प्रेरित अपराधों के लिए) और 1969-79 में (राष्ट्रीय सुरक्षा के विरुद्ध राजनीतिक अपराधों के लिए) पुन: प्रारंभ किया था, किन्तु कोई मृत्युदंड इन वर्षों के दौरान किसी व्यक्ति पर अधिरोपित नहीं किया गया।[180]

3.9.8 संयुक्त राज्य अमरीका में मृत्युदंड के प्रति उसके दृष्टिकोण के अनुसार ध्यान दिए जाने योग्य अपवाद है। 2014 में संयुक्त राज्य अपने क्षेत्र में फांसी देने के लिए एकमात्र देश था। संयुक्त राज्य के अंदर भी, फरमान वर्सस जार्जिया [181] के मामले के पश्चात् एक अवधि के लिए , लगभग 4 वर्ष के लिए, 1972 और 1976 के बीच मृत्युदंड पर वास्तव में अधिस्थगन था। जबकि मृत्युदंड को उस समय के पश्चात् से यथापूर्व कर दिया गया है, न्यायालय के विनिश्चयों ने इसके क्षेत्र को संकीर्ण कर दिया है और रक्षोपायों को प्रारंभ किया है। उदाहरण के लिए रोपर वर्सस साइमंस[182] में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसे अपराधों के लिए, जब व्यक्ति 18 वर्ष से कम आयु का था, मृत्युदंड अधिरोपित किया जाना असंवैधानिक था। आगे एटकिन्स वर्सेस वर्जीनिया[183] में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि बौद्धिक निर्योग्यता वाले व्यक्तियों को फांसी देना क्रूरता और असामान्य दंड के बराबर है और इस प्रकार यह असंवैधानिक है। संयुक्त राज्य में राज्यों की बढ़ती हुई संख्या शासकीय या अशासकीय रूप से अधिस्थगन अधिरोपित कर

---

[178] इनमें अर्जेंटीना, चिली, कोलम्बिया, कोस्टा रिका, एक्वाडोर, एल सालवेडर, निकारागुआ, पैराग्वे, वेनेजुएला और उरुग्वे सम्मिलित हैं।

[179] ब्राजीलियन संविधान का, 2010 में संशोधित रूप में, अंग्रेजी पाठ http://www.stf.jus.br/repositorio/cms/portalstfinternaclonal/portalstfsobrecorte_en_us/anexo/constituicao_ingles_3ed2010.pdf पर उपलब्ध है (10.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[180] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 70-71 पर, (5वां संस्करण. 2015)।

[181] फरमैन वर्सस जार्जिया, 408, यू.एस. 238।

[182] रोपर वर्सस साइमंस, 543 यू.एस. 551 (2005)।

[183] एटकिन्स वर्सस वर्जीनिया, 536, यू.एस. 304 (2002)।

रही है। संयुक्त राज्य में 19 राज्य ने इसे समाप्त कर दिया है, इनमें सबसे हाल के राज्य 2012 में कनैक्टिकट, 2013 में मेरिलैंड और 2015 में लेब्रास्का हैं।[184] 2014 में संयुक्त राज्य में 35 व्यक्तियों को फांसी दी गई थी,जो 1995 से सबसे कम संख्या थी ।

ख. यूरोप

3.9.9 सभी यूरोप के देशों ने, बेलारूस के अपवाद के सिवाय, या तो औपचारिक रूप से मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है या उस पर अधिस्थगन बनाए रखा है।[185]

3.9.10 यूरोपियन मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के संरक्षण से संबंधित कन्वेंशन ('यूरोपियन कन्वेंशन') ने मूल रूप से कथित किया, 'किसी को भी अपने जीवन से साशय किसी न्यायालय के ऐसे दंडादेश के निष्पादन में के सिवाय, जो किसी ऐसे अपराध की दोषसिद्धि के लिए हो, जिसके लिए इस दंड का विधि द्वारा उपबंध किया गया है, वंचित नहीं किया जाएगा।'[186] 1983 में मृत्युदंड की समाप्ति से संबंधित यूरोपियन कन्वेंशन का प्रोटोकाल नं0 6 कहता है, 'मृत्युदंड समाप्त किया जाएगा। किसी को भी ऐसे दंड से दंडित नहीं किया जाएगा या फांसी नहीं दी जाएगी' सिवाय 'ऐसे कार्यों के संबंध में, जो युद्ध के समय या युद्ध के आसन्न खतरे के समय किए गए हों।'[187] अंतिम रूप से 2002 में यूरोपियन कन्वेंशन के प्रोटोकाल 13 ने सभी परिस्थितियों में मृत्युदंड समाप्त कर दिया। 44 देशों ने इस प्रोटोकाल को, जिसके अंतर्गत यूरोपियन यूनियन के सभी सदस्य राज्य हैं, स्वीकार कर लिया है।

3.9.11 यूरोपियन मानव अधिकार न्यायालय ('ईसीएचआर') ने ऐसे देशोंके लिए, जिन्होंने दो वैकल्पिक प्रोटोकालों का अभी तक अनुसमर्थन नहीं किया है, मूल्यवान न्याय शास्त्र विकसित किया है। बहुत से अवसरों पर, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि ऐसे देश को प्रत्यर्पण, जहां मृत्युदंड है, जीवन के अधिकार का और यातना के विरुद्ध प्रतिषेध का अतिक्रमण कर सकता है।[188] 2010 में यूरोपियन मानव अधिकार न्यायालय ने अधिक संख्या में यूरोपियन कन्वेंशन के अधिक संख्या में ऐसे हस्ताक्षरकर्ताओं को देखा, जिन्होंने मृत्युदंड समाप्त कर दिया था। उसने कहा 'ये आंकड़े, मृत्युदंड पर अधिस्थगन का पालन करने में लगातार राज्य के व्यवहार सहित, इस बात के कठोर रूप से निदर्शक हैं कि आर्टिकिल 2 को इस प्रकार संशोधित किया गया है कि जिससे सभी परिस्थितियों में मृत्युदंड का प्रतिषेध किया जा सके।' इसने अभिनिर्धारित किया कि ''आर्टिकिल 3 में 'अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार या मृत्युदंड' शब्द को सम्मिलित कर सकते हैं।''[189]

3.9.12 शेष यूरोप के समान फ्रांस ने जनता की विरोधी राय होने के बावजूद मृत्युदंड को समाप्त कर दिया। फ्रांस में मृत्युदंड को, नेशनल असेम्बली में समाप्त किए जाने के पक्ष में विनिश्चय किए जाने के लिए मत के पश्चात् 9 अक्तूबर, 1981 को समाप्त कर

---

[184] मृत्युदंड सूचना केंद्र से प्राप्त आंकड़ों पर आधारित, http://www.deathpenaltyinfo.org/states-and-wihtout-death-penalty पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[185] एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसियां, एसीटी 50/001/2015, पृष्ठ 41 पर।

[186] आर्टिकिल 2(1), मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के संरक्षण से संबंधित कनवेंशन, http://conventions.coe.int/treaty/en/Treaties/Html/005.htm पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[187] आर्टिकिल 1 और 2, मानव अधिकारों और मूल स्वतंत्रताओं के संरक्षण से संबंधित कनवेंशन का प्रोटोकाल नं0 6, http://conventions.coe.int/treaty/en/Treaties/Html/114.htm पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[188] बेडर एंड केनबोर वर्सस स्वीडेन, एप्लीकेशन नं0 13284/04 ; जाबरी वर्सस टर्की, एप्लीकेशन नं0 40035/98।

[189] अल-सादून एंड मुफ्धी वर्सस यूनाइटेड किंगडम, 61498/08/[2010] ईसीएचआर 282, पृष्ठ 120 पर ।

दिया गया था ।[190] इसने इस विषय पर नेशनल असेम्बली में दो शताब्दियों के विचार-विमर्श को, प्रथम प्रस्ताव इतने समय पूर्व कि 1791 में प्रस्तुत किया गया था, समाप्त करना चिह्नित किया।[191] समाप्त किए जाने को 2007 में फ्रांस के संविधान के आर्टिकिल 66-1 में निगमित किया गया था, जो इस प्रकार है कि 'किसी को मृत्यु का दंडादेश नहीं दिया जाएगा' ।[192] इसको समाप्त किए जाने के पश्चात् बहुत वर्षों तक जनता की राय ने मृत्युदंड का समर्थन किया (2006 के मतदान ने दर्शित किया कि 52 प्रतिशत जनसंख्या इसके विरुद्ध थी) ।[193] राबर्ट बैडिन्टर, जो 1981 में फ्रांस में न्याय मंत्री थे, जिन्होंने विधायी संशोधन का मागर्दर्शन किया था, सुझाव दिया कि 'सामान्यतया मृत्युदंड समाप्त करने के पश्चात् जनता के लिए यह समझना बंद करने में कि मृत्युदंड लाभदायक है और यह अनुभव करने में कि यह मानव वध के स्तर पर कोई अंतर नहीं करता है, लगभग 10-15 वर्ष लगते हैं', इस भविष्य कथन को बहुत से देशों में समर्थन मिला है ।[194]

3.9.13 यूनाइटेड किंगडम में मृत्युदंड का इतिहास भी भारतीय संदर्भ में सुसंगत है। मृत्युदंड समाप्त करने की ओर झुकाव रखने वाली लेबर सरकार ने, जिसे युद्ध के पश्चात् ब्रिटेन में निर्वाचित किया गया था, मृत्युदंड के विषय पर कम से कम छह बार, उसे एक तरफ हटाने के पूर्व विचार किया था, जब उसने 1947 में अपना क्रिमिनल जस्टिस बिल पटल पर रखा था, यह विनिश्चय करते हुए कि मृत्युदंड समाप्त करना इसकी मुख्य प्राथमिकता नहीं थी और 1950 तक तथापि ठीक से कार्रवाई न किए गए मामलों की और फांसी दिए गए मामलों की श्रृंखला ने इसे समाप्त किए जाने के पक्ष में मजबूत जन आन्दोलन को जन्म दिया ।[195] यूनाइटेड किंगडम में अंतिम बार फांसी 1964 में दी गई थी ।[196] 1965 में ग्रेट ब्रिटेन में हाउस आफ कामन्स ने विधि द्वारा पांच वर्ष की अवधि के लिए हत्या के लिए मृत्युदंड पर अधिस्थगन अधिरोपित करने और उसे निलंबित करने के लिए मतदान किया ।[197]

3.9.14 हत्या के लिए मृत्युदंड को औपचारिक रूप से 1969 में समाप्त कर दिया गया था जब यूनाइटेड किंगडम की पार्लियामेंट ने विनिश्चय किया कि 1965 एक्ट को उन हाल के जनमतों के बावजूद व्यपगत नहीं होने दिया जाना चाहिए,[198] जो यह दर्शित करते

---

[190] फ्रांस और मृत्युदंड, फ्रांस में समाप्त किया जाना, http://www.diplomatie.gouv.fr/en/french-foreign-policy/human-rights/death-penalty/france-and-death-penalty/ पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)

[191] 9 अक्तूबर, 1981 की विधि : फ्रांस में मृत्युदंड का समाप्त किया जाना, http://www.france.fr/en/institutions-and-values/law-9th-october-1981-abolition-death-penalty-france.html पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[192] फ्रांस और मृत्युदंड, फ्रांस में मृत्युदंड का समाप्त किया जाना, http://www.diplomatie.gouv.fr/en/french-foreign-policy/human-rights/death-penalty/france-and-death-penalty/ पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[193] इवान जे.मेनडरी, कैपिटल पनिशमेंट। ऐ बैलेंस्ड एग्जामिनेंशन, पृष्ठ 640 पर (पहला संस्करण, 2005)

[194] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 464 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[195] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 51-56 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[196] ब्रिटिश सैनिक और आपराधिक इतिहास : 1900 से 1999, यूके में अंतिम फांसियां, http://www.stephen-straford.co.uk/last_ones.htm पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[197] मर्डर (अबोलिसन आफ डेथ पेनाल्टी) ऐक्ट, 1965 की धारा 4 देखिए, मूलरूप में अधिनियमित, http://www.legislation.gov.uk/ukpga/1965/71/pdfs/ukpga_19650071_en.pdf पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार देखा गया)।

[198] मर्डर (अबोलिसन आफ डेथ पेनाल्टी) ऐक्ट, 1965, यथा संशोधित, http://www.legislation.gov.uk/ukpga/1965/71 पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार देखा गया)।

थे कि लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या दंड को बनाए रखने के पक्ष में थी।[199] (उत्तरी आयरलैंड ने 1973 में एक समरूप विधि पारित की थी।[200]) हत्या के लिए मृत्युदंड समाप्त किए जाने के पश्चात्, हाउस आफ कामन्स ने मृत्युदंड को प्रत्यावर्तित करने के लिए प्रत्येक पार्लियामेंट के दौरान (1997 तक एक मतदान रखा, किन्तु प्रस्ताव कभी पारित नहीं किया गया।[201] मृत्युदंड अंतिम रूप से यूके में सभी अपराधों के लिए केवल 1999 में हटाया गया था, आगे यूनाइटेड किंगडम द्वारा यूरोपियन मानव अधिकार संबंधी कनवेंशन और अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल का अनुसमर्थन किए जाने और उसके अधीन बाध्यताओं को पूरा करने के लिए किया।[202]

3.9.15 दंड के यूनाइटेड किंगडम विधि का भाग न रह जानेके बावजूद यू.के. प्रिवि काउंसिल ने कैरेबियन देशों में, जहां मृत्युदंड अभी तक है, मामलों से संबंधित विभिन्न विनिश्चयों पर मृत्युदंड विचार-विमर्श किया है, इनमें से अत्यधिक ध्यान देने योग्य 1993 का प्राट एंड मोर्गन वर्सेस दि अटार्नी जनरल फार जमैका का मामला था।[203] इस मामले में यूके प्रिवि काउंसिल ने यह अभिनिर्धारित किया कि जमायका में ऐसे कैदी को जो 14 वर्षों से मृत्यु पंक्ति में रहा था, फांसी देना असंवैधानिक था। प्रिवि काउंसिल के अनुसार जमायका का संविधान 'अमानवीय या अपमानजनक दंड' का प्रतिषेध करता है' जिसके परिणामस्वरूप दंडादेश दिए जाने और दंड के निष्पादन के बीच अत्यधिक विलंब नहीं हो सकता। विनिर्दिष्ट रूप से इसने अभिनिर्धारित किया कि दंडादेश देने और उसके निष्पादन के बीच 5 वर्ष से अधिक का विलंब प्रथमदृष्टया अमानवीय या अपमानजनक दंड का साक्ष्य था। ऐसे अत्यधिक विलंब के मामलों में उसने कहा कि मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित कर दिया जाना चाहिए।

3.9.16 प्राट एंड मोर्गन वाले मामले का अन्य कैरेबियन देशों के समरूप मामलों पर 'कुछ प्रभाव हुआ'[204] , जहां मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषों के लिए दंडादेश को आजीवन कारावास में संपरिवर्तित कर दिया गया। इसने यूके से भिन्न देशों में प्रिवि काउंसिल की अपीलीय शक्तियों के बारे में एक पृथक् और लंबे चलने वाले विचार विमर्श को प्रारंभ कर दिया।[205]

ग. अफ्रीका

3.9.17 अक्तूबर, 2014 में, 17 अफ्रीकन देशों ने औपचारिक रूप से मृत्युदंड को समाप्त किया था और 25 अन्य देशों ने 10 वर्षों के दौरान कोई फांसी नहीं दी थी।[206] ऐसे देशों में, जो बराबर मृत्युदंड अधिरोपित कर रहे हैं, इजिप्ट, इक्वेटोरियल गीनिया,

---

[199] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 55 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[200] सेक्शन 1, उत्तरी आयरलैंड (आपात उपबंध) अधिनियम, 1973, http://www.legislation.gov.uk/ukpga/1965/53/section/1 पर उपलब्ध है (20.08.2015 को अंतिम बार देखा गया)।

[201] चार्ल्स हेनसन, दि डेथ पेनाल्टी इश्यू, टाइम, 1 सितंबर, 2011, http://insidetime.org/the-death-penalty-issue/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[202] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 56 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[203] (1993) यूकेपीसी 1, प्रिवी काउंसेल, 1993 की अपील सं0 10, http://www.bailii.org/uk/cases/UKPC/1993/1.html पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[204] थिरेसी मिल्स (2005), पत्र : मृत्युदंड के ऊपर औपनिवेशिक शक्ति, बीबीसी, 19 जनवरी, 2005, http://news.bbc.co.uk/2/hi/americas/4185745.stm पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[205] देखिए, उदाहरण के लिए, ओवेन बोकाट एंड माया वोल्फे-रोबिनसन, ब्रिटिश न्यायालय ने ट्रिनिडाड के दो हत्यारों को मृत्युदंड दिया, दि गार्जियन, 4 फरवरी, 2014, http://www.theguardian.com/law/2015/feb/04/british-court-to-rule-on-death-sentences-for-two-trinidad-murderers पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

सुडान और सोमालिया सम्मिलित हैं। कई अफ्रीकन देशों (अर्थात् अंगोला, नामीबिया) ने संविधान के द्वारा मृत्युदंड का समाप्त कर दिया है, जबकि दूसरे देशों ने प्रमुखत: दक्षिण अफ्रीका में न्यायालयों ने नेतृत्व किया है।

3.9.18 बालक के अधिकारों और कल्याण से संबंधित अफ्रीकन चार्टर कहता है, 'बालकों द्वारा किए गए अपराधों के लिए मृत्युदंड नहीं सुनाया जाएगा'। 2008 में 'राज्य पक्षकारों से मृत्युदंड पर अधिस्थगन का पालन करने के लिए मांग करनेवाले संकल्प' में अफ्रीकन मानवीय और जनता के अधिकारों संबंधी आयोग ने आग्रह किया 'ऐसे राज्य पक्षकार, जिन्होंने अभी तक मृत्युदंड को बनाए रखा है, मृत्युदंडों के निष्पादन पर अधिस्थगन का पालन करे'।[207] 2014 में, अफ्रीका में मृत्युदंड की समाप्ति पर कांटिनेंटल कांफ्रेंस की घोषणा में मृत्युदंड समाप्त करने की ओर रुझान को मान्यता दी गई,[208] और देशों से अफ्रीका में मृत्युदंड की समाप्ति पर अफ्रीका के मानवीय और जनता के अधिकारों संबंधी चार्टर के एडीशनल प्रोटोकाल का समर्थन करने के लिए कहा गया।

3.9.19 उदाहरण के लिए कीनिया ने बहु अपराधों के लिए, जिनके अंतर्गत हत्या, सशस्त्र डकैती औरी राजद्रोह है, मृत्युदंड को बनाए रखा है। तथापि कीनिया में अंतिम रूप से ज्ञात फांसी 1987 में दी गई थी और उस देश को वास्तव में समाप्त कर देने वाले देश के रूप में माना जाता है। मुटीसो वर्सेस रिपब्लिक (2010) के मामले में, मोबासा के अपील न्यायालय ने हत्या के लिए आज्ञापक मृत्युदंड को यह अभिनिर्धारित करते हुए समाप्त कर दिया था कि दंड जीवन के अधिकार के अतिक्रमण में था और वह अमानवीय व्यवहार के बराबर था और यह कि किसी व्यक्ति को 3 वर्ष से अधिक के लिए मृत्यु पंक्ति में रखना असंवैधानिक होगा। उसने यह भी सुझाव दिया कि उसके तर्क आज्ञापक मृत्युदंडादेश वाले अन्य अपराधों को भी लागू होंगे।[209] तथापि, जोसेफ नजुगुना मोरा वर्सेस रिपब्लिक (2013) के मामले में अपील न्यायालय ने सशस्त्र डकैती के लिए मृत्युदंड को बनाए रखा। उसने कहा कि इसका विनिश्चय विधान मंडल को करना था कि क्या आज्ञापक मृत्युदंड बनाए रखा जाना चाहिए या नहीं। इन दो विनिश्चयों के बीच संघर्ष का उच्चतम न्यायालय द्वारा हल निकाले जाने की आशा की जाती है।[210]

3.9.20 दक्षिण अफ्रीका में मृत्युदंड को संवैधानिक न्यायालय के विनिश्चय द्वारा, रंगभेद वाली शासन प्रणाली[211] के कुछ समय पश्चात् समाप्त किया गया था।1995 में प्रारंभ के विनिर्णय में स्टेट सर्वेस मक्वान्याने[212] में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड असंवैधानिक था। ऐसा करने में न्यायालय ने कहा :

---

[206] मृत्युदंड के विरुद्ध विश्व दिवस पर मानव और जनता के अधिकारों संबंधी अफ्रीकन आयोग के कार्यकारी समूह के अध्यक्ष द्वारा मृत्युदंड पर कथन, http://www.achpr.org/press/2014/10/d227/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[207] मृत्युदंड पर अधिस्थगन का पालन करने के लिए राज्य सरकारों से मांग करने वाला संकल्प, ACHPR/Res.136 (XXXXXIIII).08, http:/old.achpr.org/English/resolutions/resolution136_en.htm पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ।

[208] पैरा 4, उदाहरण के लिए कहता है 'उन अफ्रीकन राज्यों की, जिन्होंने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है, बढ़ने वाली संख्या की हृदय से प्रशंसा करता है' अफ्रीका में मृत्युदंड के समाप्त किए जाने से संबंधित महाद्विपीय सम्मेलन, http:/www.achpr.org/news/2014/07/d150 पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[209] देखिए, दि डेथ पेनल्टी प्रोजेक्ट, कीनिया, http://www.deathpenaltyproject.org/where-we-operate/africa/kenya/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[210] देखिए, दि डेथ पेनल्टी वर्ल्डवाइड, कीनिया, http://www.deathpenaltyworldwide.org/country-search-post.cfm?country=Kenya पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[211] देखिए, हावर्ड फ्रेंच, दक्षिण अफ्रीका के सर्वोच्च न्यायालय ने मृत्युदंड समाप्त किया, न्यूयार्क टाइम्स, 7 जून, 1995, http://www.nytimes.com/1995/06/07/world/south-africa-s-supreme-court-abolishes-death-penalty.html पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

जीवन और गरिमा के अधिकार सभी मानव अधिकारों में से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं और अध्याय 3 में सभी अन्य व्यक्तिगत अधिकारों का स्रोत हैं। किसी ऐसे समाज के लिए, जो मानव अधिकारों की मान्यता पर आधारित हो, अपने आपको प्रतिबद्ध करते हुए हमसे अपेक्षा की जाती है कि हम सभी अन्य अधिकारों के ऊपर इन दो अधिकारों को महत्व देने और यह राज्य द्वारा प्रत्येक बात में प्रदर्शित किया जाना चाहिए कि वह ऐसा करता है, इसके अंतर्गत वह पद्धति भी है जिसमें वह अपराधियों को दंडित भी करता है। यह हत्यारों को उद्देश्य बनाकर और उन्हें मृत्युदंड देकर और दूसरों के लिए उन्हें उदाहरण के रूप में इस आशा में रख के कि वे उसके द्वारा संभवत: भय अनुभव करेंगे, प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

और यह कि :

हमारे संविधान के अधीन प्रतिशोध को वही वजन नहीं प्रदान किया जा सकता जो जीवन और गरिमा के अधिकार को प्रदान किया जाता है जो कि अध्याय 3 में सभी अधिकारों से अधिक महत्वपूर्ण हैं। यह दर्शित नहीं किया गया है कि मृत्युदंडादेश, हत्या से डराने या उसका निवारण करने के लिए, तात्विक रूप से आजीवन कारावास के आनुकलपिक दंडादेश से अधिक प्रभावी होगा। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए और साथ ही मृत्युदंड को लागू करने में मनमानेपन तथा गलती की संभावना के तत्वो को ध्यान में रखते हुए ऐसा स्पष्ट और भरोसा करने वाला मामला, जो हत्या के लिए दंड के रूप में मृत्युदंडादेश को न्यायोचित ठहराने के लिए अपेक्षित है, सामने नहीं लाया गया है।

3.9.21 इस विनिश्चय के समय मृत्युदंड पर दक्षिण अफ्रीका में जनता की राय, मृत्युदंड को बनाए रखने के लिए बहुत से समर्थन के साथ, बहुत विभाजित था। अपराध एक बड़ी समस्या थी और रंगभेद वाली शासन प्रणाली के दौरान मृत्युदंड का व्यापक प्रयोग किया गया था।[213] अंतिम फांसी उसको समाप्त किए जाने के ठीक 4 वर्ष पूर्व दी गई थी। 1997 में दक्षिण अफ्रीका की संसद् ने न्यायालय के विनिश्चय का विधि के द्वारा पुन: पुष्टि की।[214]

3.9.22 नाईजीरिया में मृत्युदंड मुख्यत: राज्य विषय है क्योंकि देश में संघीय प्रणाली है, जहां आपराधिक विधियां 36 देशों में विभिन्न रूपों में हैं। प्रत्येक राज्य अपराध और दंड को अपने राज्यक्षेत्र के भीतर विनिर्दिष्ट करता है और शरिया तथा सामान्य विधि प्रणाली पर आधारित विधियां रखता है। आज्ञापक मृत्युदंड नाईजीरिया के विभिन्न राज्यों में बहुत से अपराधों के लिए विहित किया गया है।[215]

3.9.23 2012 में लैगोस राज्य के उच्च न्यायालय ने जेम्स अजूलु एंड अदर्स वर्सेस अटार्नी जनरल आफ लगोश[216] में घोषित किया कि आज्ञापक मृत्युदंड असंवैधानिक था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'ऐसे अपराधों जैसे सशस्त्र डकैती और हत्या के लिए आज्ञापक मृत्युदंड का विहित किया जाना आवेदकों के मानव गरिमा के अधिकार और नाईजीरिया के संघीय गणराज्य के

---

[212] 1995(6) बीसीएलआर 665।

[213] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 89 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[214] रोजर हुड एंड केरोलिन होएल, एबोलिशिंग दि डेथ पेनल्टी वर्ल्डवाइड : दि इम्पैक्ट आफ ए 'न्यू डायनिमिक' क्राइम एंड जस्टिस, वोलNSX, नं0 1 (2009), पृष्ठ 1-63 पर।

[215] कंट्री प्रोफाइल : नाइजीरिया, 19 जून, 2014 को, http//www.deathpenaltyworldwide.org/country-search-post.cfm?country=Nigeria पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[216] सूट नं0 आईडी/76एम/2008, अक्तूबर, 2012।

संविधान 1999 की धारा 34 के अधीन अमानवीय या अपमानजनक दंड न दिए जाने के उनके अधिकार का उल्लंघन करता है'[217] इस विनिर्णय के परिणामस्वरूप मृत्युदंड के आज्ञापक अधिरोपण का लागोस राज्य में प्रतिषेध किया गया है और मृत्युदंड अब अधिकतम है किन्तु केवल मात्र नहीं हैं, दंड संभव है। यह अभिनिर्धारण केवल लोगोस राज्य में प्रवर्तनीय है।

3.9.24 नाईजीरिया में 2013 में चार कैदियों को फांसी दी गई थी, जब कि उसने अन्यथा 2006 से फांसी नहीं दी थी।[218] सितंबर, 2013 में मृत्यु पंक्ति में खड़े हुए कैदियों की संख्या 1233 थी, जिनमें से बहुत से कैदी मृत्यु पंक्ति में दस वर्ष से अधिक से बने हुए थे (संयुक्त राष्ट्रसंघ के विशेष रिपोर्टर द्वारा की गई एक रिपोर्ट के अनुसार 2006 में औसत पहले से ही 20 वर्ष था)।[219]

घ. एशिया और पैसिफिक

3.9.25 एशिया-पैसिफिक में लगभग 40 प्रतिशत देश मृत्युदंड के प्रतिधारक हैं और उन्होंने उसे बनाए रखा है तथा उसका प्रयोग करते हैं। चीन, ईरान, इराक और सउदी अरब वैश्विक रूप से सबसे अधिक फांसी देने वालों में बने हुए हैं और पिछले कुछ वर्षों में पाकिस्तान और इंडोनेशिया को, फांसी देने वालों में वापस आने के लिए अपने वास्वत में अधिस्थगन को समाप्त करते हुए देखा गया है।

3.9.26 दक्षिण पूर्व एशिया में मृत्युदंड के रुझानों का विश्लेषण करने वाले 2015 के एक ओएचसीएचआर प्रकाशन ने पाया है कि 'मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में वैश्विक आंदोलन दक्षिण पूर्व एशिया में प्रतिबिम्बित हो रहा है।'[220] रिपोर्ट के समय ब्रुनेई दारुस्लम, इंडोनेशिया, लाओस, मलेशिया, मिआन्मार, सिंगापुर, थाईलैंड और वियतनाम ने मृत्युदंड को समाप्त नहीं किया था जबकि कम्बोडिया, टाइमर-लैस्टे और फिलीपीन्स ने ऐसा किया था।

3.9.27 इंडोनेशिया, उदाहरण के लिए बनाए रखने वाला देश है, जो विभिन्न अपराधों के लिए, जिनके अंतर्गत मादक द्रव्य से संबंधित अपराध हैं, मृत्युदंड का प्रयोग करता है। 2015 के प्रारंभ में इंडोनेशिया ने मादक द्रव्य संबंधी अपराधों के लिए 8 व्यक्तियों को, जिनके अंतर्गत विदेशी राष्ट्रिक भी थे, गोली चलाने वाले दस्ते के द्वारा फांसी दी थी। इंडोनेशिया के राष्ट्रपति जोको विडोडो ने मृत्युदंड की यह कहकर प्रतिरक्षा की कि 'हम मादक द्रव्य की तस्करी करने वालों को यह कठोर संदेश भेजना चाहते हैं कि इंडोनेशिया मादक द्रव्य से संबंधित समस्या को हल करने में दृढ़ और गंभीर है और इसका एक परिणाम, यदि न्यायालय उन्हे मृत्यु के लिए दंडादेश

---

[217] मृत्युदंड का प्रश्न : मानव अधिकार संबंधी संयुक्त राष्ट्र संघ उच्चायुक्त की वार्षिक रिपोर्ट और उच्चायुक्त तथा महासचिव, मानव अधिकार परिषद् के कार्यालय की रिपोर्टें, 24 वां सत्र, संयुक्त राष्ट्र महासभा, ए/एचआरसी/24/18, 1 जुलाई, 2013।

[218] कंट्री प्रोफाइल : नाइजीरिया, 19 जून, 2014 को, http//www.deathpenaltyworldwide.org/country-search-post.cfm?country=Nigeria पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[219] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 204 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[220] दक्षिण पूर्व एशिया के लिए मानव अधिकार संबंधी उच्चायुक्त का क्षेत्रीय कार्यालय, 'मूव अवे फ्राम दि डेथ पेनल्टी : लेसन्स इन साउथ ईस्ट एशिया', पृष्ठ 19 पर, http://bangkok.ohchr.org/fkiles/Moving%20away%20from%20the%20death%20penalty-English%20for%20Website.pdf पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

देता है तो फांसी देना है'[221] इंडोनेशिया में 2008 और 2012 के बीच संक्षिप्त अशासकीय अधिस्थगन था किन्तु उसके पश्चात् उसने फांसी देने को पुन:ग्रहण कर लिया है।[222]

3.9.28 चीन विश्व में संबसे बड़े फांसी देने वाले देश में एक है। वहां इस बारे में बहुत सीमित जानकारी है कि चीन में कितनी फांसियां दी जाती हैं क्योंकि वे सभी रहस्यमय रूप से दी जाती हैं। तथापि, प्राक्कलन सुझाव देते हैं कि विश्व की 90 प्रतिशत फांसियां एशिया में दी जाती हैं और उनमें से अधिकांश चीन में दी जाती हैं,[223] और यह कि चीन सभी अन्य देशों को मिलाकर सबसे अधिक व्यक्तियों को फांसी देता है।[224] 2010 में 68 अपराध चीन में मृत्युदंड से दंडनीय थे। 2011 के एक संशोधन में इस संख्या को घटाकर 55 कर दिया गया। हांगकांग और मकाऊ, जो दोनों चीन के प्रशासित क्षेत्र है, ने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है। इसी प्रकार जापान ने भी मृत्युदंड बनाए रखा है[225] और वह रहस्यमय रूप से फांसी देता है। परिवारों को सामान्यतया फांसी दिए जाने के पश्चात् सूचित किया जाता है।[226]

3.9.29 फिलीपीन्स एशिया में प्रथम देशों में से एक था जिसने मृत्युदंड को समाप्त किया था। उसका 1987 का संविधान, जिसे राष्ट्रपति मार्कोस का तख्ता पलट दिए जाने के पश्चात् प्रख्यापित किया गया था,[227] कहता है कि :

> आर्टिकिल 3, सेक्शन 19(1) : अत्यधिक जुर्माने अधिरोपित नहीं किए जाएंगे, क्रूर, अपमानजनक या अमानवीय दंड नहीं दिया जाएगा। न तो मृत्युदंड अधिरोपित किया जाएगा जब तक कि विवश किए जाने वाले कारण न हों, जिनमें जघन्य अपराध अंतर्वलित हैं, कांग्रेस इसके पश्चात् इसके लिए उपबंध करती है। कोई मृत्युदंड, जिसे पहले ही अधिरोपित किया जा चुका है, कम करके चिरस्थायी एकांतवास में परिवर्तित कर दिया जाएगा (जोर दिया गया)।[228]

3.9.30 1994 तक राष्ट्र के कुछ भागों में मन:स्थिति परिवर्तित हो गई थी और रिपब्लिक एक्ट नं0 7659, जिसे 'कतिपय जघन्य अपराधों के लिए मृत्युदंड अधिरोपित करने वाला अधिनियम' भी कहा जाता है, पारित किया गया था। इस विधि की उद्देशिका ने कहा कि कांग्रेस, न्याय, लोक व्यवस्था और विधि के शासन तथा जघन्य अपराधों के लिए दांडिक मंजूरियों को तर्क संगत और सामंजस्यपूर्ण बनाने की आवश्यकता हेतु, उक्त अपराधों के लिए मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए विवश करने वाले कारणों को पाती है

---

[221] अल जजीरा से बातचीत, जोको विडोडो : 'मादक द्रव्य तस्करों को एक कड़ा संदेश', अल जजीरा, 7 मार्च, 2015 http://www.aljazeera.com/programmes/talktojazeera/2015/03/joko-widodo-stronge-message-drug-smugglers-150305131413414.html पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[222] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 98 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[223] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 98 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[224] चीन संबंधी कांग्रेसनल कार्यकारी आयोग, चीन की सरकार मृत्यु से दंडनीय अपराधों की संख्या घटाने के बारे में विचार कर रही है, फरवरी 23, 2011 http://www.cecc.gov/publications/commission-analysis/chinese-government-considers-reducing-number-of-crimes-bunishable पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[225] http://www.economist.com/blogs/banyan/2014/09/death-penalty-japan पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[226] एमनेस्टी इंटरनेशनल, जापान : प्राधिकारी कार्यकारी पुन: फांसी देकर जनता का धोखा दे रहे हैं, 25 जून, 2015, http://www.amnesty.org/en/latest/news/2015/06/japan-authorities-deceiving-the-public-by-resuming-executions/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[227] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 100 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[228] फिलीपीन्स गणराज्य का संविधान, http://www.gov.ph/constitutions/1987-constitution पर उपलब्ध।

।'[229] इस अधिनियम ने बहुत सारे अपराधों के लिए, जिनके अंतर्गत हत्या, राजद्रोह और कतिपय प्रकार के बलात्संग थे, मृत्युदंड को पुन: प्रारंभ किया। मृत्युदंडादेश अधिरोपित किए गए थे और फांसी देना पुन: प्रारंभ किया गया था।

3.9.31 फिलीपीन्स ने इस अवधि में, मृत्युदंड पर गहन लोक विचारविमर्श को देखा। 2000 में, राष्ट्रपति एसट्राडा ने फांसी देने पर अधिस्थगन को घोषित किया, जिसे राष्ट्रपति अरोयो ने जारी रखा।[230] अप्रैल, 2006 में राष्ट्रपति अरोयो ने सभी मृत्यु दंडादेशों को संपरिवर्तित करने और फांसी दिए जाने को बंद करने का विनिश्चय किया।[231] बाद में उस वर्ष मृत्युदंड को पूर्णरूप से समाप्त करने वाला एक विधेयक पारित किया गया।[232] 2007 में फिलीपीन्स ने अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनैतिक अधिकार संबंधी प्रसंविदा के दूसरे वैकल्पिक प्रोटोकाल का अनुसमर्थन कर दिया।

3.9.32 सउदी अरब ने भी मृत्युदंड को बनाए रखा है जिसका वह विदेशी राष्ट्रिकों और ऐसे अपराधों के, जो 'अत्यधिक गंभीर अपराधों' की अंतरराष्ट्रीय विधि की अवसीमा को पूरा नहीं करते हैं, सिद्धदोषी व्यक्तियों के विरुद्ध प्रयोग करता है। हाल में केवल 2015 में 102 व्यक्तियों से अधिक को फांसी दिए जाने से फांसियों की दर और संख्या में वृद्धि हुई है।[233]

3.9.33 1948 में इसके बनने के पश्चात् से, इजराइल, मामूली अपराधों के लिए इसको समाप्त करने वाला रहा है। मृत्युदंड केवल एक बार 1962 में अधिरोपित किया गया और कार्यान्वित किया गया, जब एडोल्फ आईचमान को फांसी दी गई थी। वर्तमान में निम्नलिखित अपराधों में मृत्युदंडादेश दिया जा सकता है : जनसंहार, नाजी शासन के दौरान कष्ट देने वाले व्यक्तियों की हत्या ; सैनिक विधि और दंड विधि के अधीन राजद्रोह के कार्य, जो युद्ध की स्थिति के समय में किए गए हों और शस्त्रों का अविधिपूर्ण प्रयोग और उन्हें रखना। आगे इजराइली विधि अपेक्षा करती है कि मृत्युदंड केवल न्यायिक सहमति से अधिरोपित किया जा सकता है न कि न्यायिक बहुसंख्या से। 2015 में ऐसा एक विधेयक पुर:स्थापित करने के प्रयास किए गए थे, जो आतंकवादियों पर मृत्युदंड अधिरोपित करना, ऐसे मामलों में केवल न्यायाधीशों की बहुसंख्या से अपेक्षा करके और उनके बीच सहमति न भी होने पर, जो सरल बनाएगा। विधेयक अपनी पहली रीडिंग में ही नामंजूर कर दिया गया था।[234]

1. दक्षिण एशिया

---

[229] अधिनियम की प्रति http://www.lawphil.net/statutes/repacts/ra1993/ra_7659_1993.html पर उपलब्ध है।

[230] देखिए एमनेस्टी इंटरनेशनल, फिलीपीन्स ने मृत्युदंड समाप्त किया, 7 जुलाई, 2006, http://www.amnesty.org.au/news/comments/2412/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[231] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, पृष्ठ 101 पर, (5वां संस्करण 2015)।

[232] देखिए सारह टोम्स, फिलीपीन्स ने मृत्युदंड बंद किया, बीबीसी न्यूज, 24 जून, 2006, http://news.bbc.co.uk/1/hi/world/asia-pacific/5112696.stm पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[233] बीबीसी न्यूज : मिडिल ईस्ट, एक वर्ष में सउदी अरब ने 175 लोगों को फांसी दी- एमनेस्टी, http://www.bbc.co.uk/news/world-middle-east-34050853 पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया) ; एडम विथनाल, सउदी अरब, प्रत्येक दो दिनों में एक व्यक्ति को फांसी देता है, इसलिए सिर से धड़ अलग करने की दर किंग सलमान के अधीन बढ़ गई है, दि इंडिपेंडेंट, 28 अगस्त, 2015 http://www.indpendent.co.uk/news/world/middle-east/Saudi-arabia-executions-amnesty-international-beheadings-death-sentences-rate-under-king-salman-10470456.html पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)

[234] देखिए टाइम्स आफ इजरायल, 'नेसेट ने आतंकवादियों के लिए मृत्युदंड संबंधी विधेयक को नामंजूर किया' 15 जुलाई, 2015,http://www.timesofisrael.com/Knesset-rejects-bill-on-deaht-penalty-for-terrorists/ पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

3.9.34 दक्षिण एशिया में भारत, पाकिस्तान और बंगलादेश ने मृत्युदंड को बनाए रखा है। दिसंबर, 2014 में पाकिस्तान ने पेशावर में एक स्कूल पर आतंकवादी हमले के उत्तरमें फांसी देने पर अपने अधिस्थगन को हटा दिया था। उसके पश्चात् से लगभग 200 व्यक्तियों को फांसी दी गई है और लगभग 8000 व्यक्ति मृत्यु पंक्ति में फांसी दिए जाने के खतरे में हैं।[235]

3.9.35 मालदीव और श्रीलंका ने विधि में दंड को बनाए रखा है, किन्तु व्यवहार में उन्होंने इसे समाप्त कर दिया है। श्रीलंका में 1976 में अंतिम फांसी दी गई थी ; तथा मालदीव में 1950 में। श्रीलंका में मृत्युदंड औपनिवेशिक समय के दौरान प्रारंभ किया गया था। श्रीलंका ने अभी तक इसे बनाए रखा है और वह व्यक्तियों को मृत्यु का दंडादेश देता है। मृत्यु पंक्ति श्रीलंका में विवादास्पद तथ्य है। केवल 2014 में श्रीलंकन न्यायालय ने 61 व्यक्तियों से अधिक को, जिनके अंतर्गत किशोर भी थे, दंडादेश दिया था।[236] श्रीलंका ने भी मादक द्रव्य से संबंधित ऐसे अपराधों के लिए, जो अंतरराष्ट्रीय विधि में ' अत्यधिक गंभीर अपराधों' की सीमा को पूरा नहीं करते हैं, मृत्युदंड को बनाए रखा है किन्तु श्रीलंका ने 1976 से कोई फांसी नहीं दी है और उसे व्यवहार में समाप्त करने वाला समझा जाता है। मृत्यु दंडादेशों को कारावास की अवधि में संपरिवर्तित कर दिया जाता है। यह ध्यान देने योग्य है कि श्रीलंका का अधिस्थगन 1980 और 2000 के अंत तक के बीच बगावत और सिविल युद्ध के बावजूद बना रहा है।

3.9.36 भूटान और नेपाल ने मृत्युदंड समाप्त कर दिया है। भूटान ने इसे 2004 में समाप्त किया था और यह इसके 2008 के संविधान में भी प्रतिषिद्ध है। नेपाल में अंतिम बार फांसी 1979 में दी गई थी।नेपाल ने शासकीय रूप से 1990 में मृत्युदंड समाप्त कर दिया था और उसकी सरकार ने कहा 'दंड को इसकी नई बहुदलों वाली राजनीतिक पद्धति से असंगत समझा जाता है।'[237] उसके पश्चात् से नेपाल ने 10 वर्ष लंबा सिविल युद्ध, जो 1966 से 2006 तक रहा, देखा है। सिविल युद्ध के दोनो पक्षकार मानव अधिकारों का दुरुपयोग करते रहे हैं और उसका उत्तरदायित्व आज नेपाल में केंद्रीय चिंता का विषय है।

3.9.37 यह हिंसा और संघर्ष नेपाल की सरकार और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के बीच 2006 के व्यापक शांति समझौते पर हस्ताक्षर होने के पश्चात् समाप्त हुआ। हिंसा और नृशंसताओं के पैमाने के बावजूद समझौते का खंड 7.2.1 स्पष्ट रूप से कहता है कि 'दोनों पक्षकार किसी व्यक्ति के जीवन के मूल अधिकार का आदर करते हैं और उसका संरक्षण करते हैं। कोई व्यक्ति अपने मूल अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा और कोई भी विधि, जो मृत्युदंड का उपबंध करती है, अधिनियमित नहीं की जाएगी।'[238] नेपाल के अंतरिम संविधान का अनुच्छेद 12, जो व्यापक शांति समझौते पर हस्ताक्षर होने के पश्चात् प्रवर्तन में आया है, कहता है :[239]

---

[235] देखिए बीबीसी न्यूज : एशिया, पाकिस्तान ने अपीलों के बावजूद शफाकत हुसैन को फांसी दी, बीबीसी न्यूज, 4 अगस्त, 2014, http://www.bbc.com/new/world-asia-33767835 पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[236] एमनेस्टी इंटरनेशनल, 2014 में मृत्युदंड और फांसी, एसीटी50/001/2015।

[237] एलए टाइम्स, 'नेपाली न्यू लीडर्स ने मृत्युदंड समाप्त किया' 10 जुलाई, 1990, http://articles.latimes.com/1990-30/news/mn-790_1_death-sentence पर उपलब्ध है।

[238] नेपाल सरकार और नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) के किए गए व्यापक शांति करार का अशासकीय अनुवाद, 21 नवंबर, 2006 2006http://www.usip.org/sites/defaults/files/resources/collections/peace_agreements/nepal_opa_20061121_en.pdf पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[239] देखिए, नेपाल का अंतरिम संविधान, 2007, http://www.worldstatesmenorg/Nepal_Interim_Constitution2007.pdf पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

प्रत्येक व्यक्ति को गरिमा के साथ रहने का अधिकार होगा और कोई विधि ऐसी नहीं बनाई जाएगी जो मृत्युदंड के लिए उपबंध करती हो।

3.9.38 मृत्युदंड के विरुद्ध प्रतिषेध को भी नेपाल के वर्तमान प्रारूप संविधान में, जिस पर संविधान सभा में विचार-विमर्श किया जा रहा है, बनाए रखा गया है।

ग. निष्कर्ष

3.10.1 आज 140 देशों ने मृत्युदंड को विधि या व्यवहार में समाप्त कर दिया है। दंड समाप्त करने की दिशा में यह रुझान अंतरराष्ट्रीय विधि में हुए विकासों से प्रकट है, जिन्होंने मृत्युदंड के क्षेत्र को, ऐसे अपराधों की प्रकृति को निर्बंधित करके, जिनके लिए इसे कार्यान्वित किया जा सकता है, उस रीति को परिसीमित करके, जिसमें इसे निष्पादित किया जा सकता है और प्रक्रिया संबंधी रक्षोपायों को प्रारंभ करके, परिसीमित कर दिया है। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हाल की राजनैतिक प्रतिबद्धताएं, जैसे फांसी दिए जाने पर अधिस्थगन संबंधी राष्ट्र संघ की महासभा के संकल्प के लिए बढ़ता हुआ समर्थन, इस रुझान की पुन: पुष्टि करती हैं।

3.10.2 यह अध्याय प्रदर्शित करता है कि बगावत, आतंक या हिंसक अपराध से लड़ने और मृत्युदंड की आवश्यकता के बीच किसी कड़ी का कोई साक्ष्य नहीं है। कई देशों ने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है या सिविल युद्ध, बगावत की धमकियों या आतंकवादी हमलों का सामना करने के बावजूद फांसी देने पर अधिस्थगन बनाए रखा है। उदाहरण के लिए नेपाल ने 1990 में मृत्युदंड को शासकीय रूप से समाप्त कर दिया था और सिविल युद्ध के भय से भी इसे पुन: प्रारंभ नहीं किया ; श्रीलंका ने, लंबे सिविल युद्ध के बावजूद, मृत्युदंड पर अधिस्थगन बनाए रखा है ; और इजराइल ने, उसके बनने के पश्चात् से, केवल एक बार फांसी दी है। अधिकांश यूरोपियन देश, अर्थात् यूके, फ्रांस और स्पेन अपनी राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर आतंवाद का सामना करने के बावजूद इसे समाप्त करने वाले बने रहे हैं । वास्तव में यह ध्यान देना सुसंगत है कि यूके ने मृत्युदंड को ऐसे समय पर समाप्त किया जब आइरिस रिपबलिकन आर्मी, जो क्रांतिकारी सैनिक संगठन है, विशिष्ट रूप से देश में सक्रिय था। इसे अपराधों से लड़ने के लिए भी देखा जा सकता है। फिलीपीन्स मादक द्रव्यों के दुर्व्यापार की गंभीर समस्या का सामना कर रहा है किन्तु उसने मृत्युदंड समाप्त कर दिया है। दक्षिण अफ्रीका ने ऐसे समय पर मृत्युदंड को समाप्त किया था, जब देश में अपराध-दर बहुत ऊंची थी।

3.10.3 मृत्युदंड को समाप्त करने या बनाए रखने का किसी देश का विनिश्चय उसके सामाजिक, आर्थिक विकास के पार्श्व चित्र से आवश्यक रूप से जुड़ा हुआ नहीं है, बजाय इसके राजनैतिक इच्छा और नेतृत्व इसमें प्रमुख हैं। कई विकासशील देश मृत्युदंड का प्रयोग नहीं करते हैं। नेपाल, रुआंडा, सेनेगन, शोलोमन द्वीप, डिजिबाउटी, टोगो, हाइटी और गीनिया-बिसाऊ सभी ऐसे देशों के उदाहरण हैं जिन्हें संयुक्त राष्ट्र संघ विकास परियोजना मानव विकास सूचकांक में 'कम मानव विकास वाले' देशों के अधीन पंक्ति में रखा गया है, (अर्थात् जिन्हें भारत से कम विकसित समझा जाता है), किन्तु उन्होंने मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है।[240]

3.10.4 मृत्युदंड के संबंध में राज्य व्यवहार भी यह प्रदर्शित करता है कि दंड समाप्त किए जाने का मार्ग सदैव जनता की राय का कृत्य नहीं है, राजनैतिक नेतृत्व इस प्रक्रिया में प्रमुख रहा है। बहुत से राज्यों ने ऐसे समय पर मृत्युदंड को समाप्त किया है, जब जनता की राय ने इस स्थिति का आवश्यक रूप से समर्थन न भी किया हो। तथापि बहुत से देशों में जनता की राय धीरे-धीरे पश्चातवर्ती पीढ़ियों के साथ परिवर्तित होते-होते समय के साथ उलट गई है, जो यह सुझाव देती है कि जनता के लिए यह सोचना बंद करने में कि 'दंड लाभप्रद है' या यह अनुभव करने में कि इसका मानव वध के स्तरों के साथ कोई संबंध नहीं है, समय लगता है। उदाहरण के लिए फ्रांस में जनता की राय मृत्युदंड का कई वर्षों तक, उसके समाप्त कर दिए जाने के पश्चात्, समर्थन करती रही और यह विधि के समाप्त किए जाने के

[240] देखिए, मानव विकास सूचकांक और उसके संघटक, http://hdr.undp.org/en/content/table-1-human-development-index-and-its-components पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

लगभग दो दशकों के पश्चात् हुआ कि वह राय बदलनी आरंभ हुई। समान रूप से दक्षिण अफ्रीका में एक संवैधानिक न्यायालय के विनिश्चय ने मृत्युदंड को ऐसे समय पर, जब जनता उसका समर्थन कर रही थी, असंवैधानिक पाया, और न्यायालय के विनिश्चय का विधान मंडल द्वारा समर्थन किया गया। समय के साथ ये विनिश्चय बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य के अनुक्रम साबित हुए हैं। ये देश आज भी दंड समाप्त करने वाले बने हुए हैं और उन्होंने अपने विनिश्चयों पर संदेह या उस पर प्रश्न करने की आवश्यकता नहीं अनुभव की है। उन्होंने अपराध का नियंत्रण करने और व्यक्तियों को दंड देने के लिए विभिन्न पद्धतियों पर भरोसा किया है। यूके और फ्रांस में ऐसे राजनीतिक पक्षकार, जिन्होंने मृत्युदंड को जनता की राय के विरोध में समाप्त किया था , वास्तव में पुन: निर्वाचित किए गए थे।[241]

3.10.5 आज की स्थिति में, 1979-80 में मृत्युदंड की वैश्विक स्थिति से तुलना करके, बचन सिंह में उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के समय से अंतर किया जा सकता है। न्यायालय ने देखा कि केवल 18 देशों ने सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड को समाप्त किया था और 8 और देशों ने इसे केवल 'युद्ध के समय पर किए गए विनिर्दिष्ट अपराधों' के लिए बनाए रखा था। न्यायालय ने सउदी अरब, संयुक्त राज्य अमरीका , इजराइल, चीन, अर्जेंटीना, बेलजियम, फ्रांस, जापान, ग्रीस, टर्की, मलेशिया, सिंगापुर और यूएसएसआर (रूस) को उदाहरण के रूप में उद्धत किया था।[242] इन देशों में से कई ने, जिनके अंतर्गत, बेलजियम, फ्रांस, ग्रीस और टर्की हैं , विधि और व्यवहार में आज इसे समाप्त कर दिया है। दूसरों ने जैसे अर्जेंटीना और इजराइल ने इसे केवल अपवादात्मक अपराधों के लिए बनाए रखा है।

3.10.6 अंतरराष्ट्रीय विधि में और विश्व में राज्यों के व्यवहार में इसे समाप्त करने की दिशा में स्पष्ट रुझान दिखाई पड़ रहा है। अंतरराष्ट्रीय विधिक संननियमों को बहुत संकीर्ण किस्म के मामलों में और बहुत सीमित रीति में मृत्युदंड के विधिपूर्ण प्रयोग को निर्बंधित करने के लिए, विकसित किया गया है। भारत में व्यक्तियों को मृत्युदंड से दंडादिष्ट किया जाना और उन्हें फांसी दिया जाना जारी है और भारत ने अधिस्थगन पर महासभा के सभी 5 संकल्पों का विरोध किया है। ऐसा करने में भारत उन अल्पसंख्यक देशों के, जिन्होंने मृत्युदंड को बनाए रखा है और यहां तक कि उससे भी छोटी संख्या वाले ऐसे देशों के साथ है, जो वास्तव में फांसी देते हैं, ऐसे देशों की सूची में चीन, इरान, इराक और सउदी अरब सम्मिलित हैं।

---

[241] अपने लेख में हुड और होएल ने मृत्युदंड और जनता की राय पर अध्ययन के प्रति निर्देश किया, जिसने पाया है कि मृत्युदंड समापति के प्रत्येक वर्ष ने 'इस संभावना को कम किया है कि कोई व्यक्ति 46 प्रतिशत मृत्युदंड का समर्थन करेगा,' जो यह दर्शित करता है कि दृढ़ राजनीतिक नेता द्वारा मृत्युदंड की समापति स्वयं जनता की राय में परिवर्तन कर सकती है, (यूनाइटेड नेशन्स, 2014), http://www.ohchr.org/Lists/MeetingNY/Attachments/52/Moving-Away-from-the-Death-Penalty.pdf पर उपलब्ध (20.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[242] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1982) 3 एससीसी 24, पैरा 128 और 129 पर।

अध्याय 4

मृत्युदंड के लिए दंड संबंधी न्यायोचित्य

क. विचारण का क्षेत्र

4.1.1 उच्चतम न्यायालय ने किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य[243] ('खादे') में नियम बनाया कि 'यह आज्ञापक है .....कि न्यायालय मृत्युदंड देने के लिए और जब विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो, न्याय शास्त्र संबंधी आधार अधिकथित करे।'[244] इस संदर्भ में न्यायालय ने विधि आयोग से ' इस मुद्दे का यह परीक्षा करके समाधान करने के लिए कहा कि क्या मृत्युदंड भयपरतिकारी दंड है या प्रतिशोधात्मक न्याय है या अक्षम बनाने वाले उद्देश्य की पूर्ति करता है।'[245] इस अध्याय में इस रिपोर्ट ने इस बात की परीक्षा की है कि क्या मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए कोई दंड संबंधी प्रयोजन है। यह रिपोर्ट भयपरतिकारी, अक्षमता और प्रतिशोध के सिद्धांतों का विश्लेषण करती है। आनुपातिकता और पुनर्वास की भी दंड के सिद्धांतों के रूप में संक्षेप में परीक्षा की गई है। क्योंकि इन सिद्धांतों का उच्चतम न्यायालय द्वारा अपने मृत्युदंड संबंधी न्यायनिर्णयन में उपयोग किया गया है।

4.1.2 इस समय आयोग के लिए यह जोर देना आवश्यक है कि मृत्युदंड को समाप्त करना अपराधी को समाज में किसी भी प्रकार के किसी दंड के बिना निर्मुक्त करना आवश्यक नहीं बनाता है। इस पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए कि मृत्युदंड का विकल्प आजीवन कारावास है और इसे बहुधा मृत्युदंड पर होने वाले विचार विमर्शों में छोड़ दिया जाता है।[246] मृत्युदंड को बनाए रखने में क्या गुणागुण दर्शित किए जाने चाहिए, क्या मृत्युदंड दिए जाने के न्यूनतम लाभ अर्थात् ऐसे लाभ जो आजीवन कारवास द्वारा नहीं दिए जाते हैं, इतने अधिक पर्याप्त हैं कि जिससे एक जीवन ले लिया जाए।[247] यह सिद्धांत उच्चतम न्यायालय द्वारा संतोष कुमार बरियार बनाम महाराष्ट्र,[248] ('बरियार') में अधिकथित किया गया था, जहां न्यायालय ने कहा :

> दंडादेश दिए जाने की प्रक्रिया के दौरान दंडादेश देने वाले न्यायालय या उस मामले के लिए अपील न्यायालय को मृत्युदंड और उस प्रयोजन के बीच, जिसके लिए उसे विहित किया गया है, तार्किक और उद्देश्यात्मक संबंध का निष्कर्ष निकालना होता है। दंडादेश देने में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 354(3) के अधीन परिकल्पित रूप में 'विशेष कारण' पद को उस तुलनात्मक उपयोगिता का समाधान करना होता है जिसकी मृत्युदंडादेश विशिष्ट मामले में आजीवन कारावास की तुलना में पूर्ति करेगा। यह प्रश्न की क्या दिया गया दंड अनुच्छेद 21 के अधीन जीवन के अधिकार का यथासंभव कम, ह्रास करता है।[249]

---

[243] (2013) 5 एससीसी 546।

[244] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546, पैरा 148 पर।

[245] (2013) 5 एससीसी 546, पैरा 614 पर।

[246] देखिए, एच. बिदायु, भयोपरतता और मृत्युदंड : पुनर्विचारण, 61 आपराधिक विधि जरनल, अपराध शास्त्र और पुलिस विज्ञान 539, 542 (1970) ; रिचर्ड लेम्पर्ट, अभित्यजन और भयोपरतता : मृत्युदंड के लिए मामले के नैतिक आधारों का निर्धारण, 79, मिशिगन ला रिव्यू 1177, 1192 (1981)।

[247] देखिए, एच. बिदायु, भयोपरतता और मृत्युदंड : पुनर्विचारण, 61 आपराधिक विधि जरनल, अपराध शास्त्र और पुलिस विज्ञान 539, 542 (1970) ; रिचर्ड लेम्पर्ट, अभित्यजन और भयोपरतता : मृत्युदंड के लिए मामले के नैतिक आधारों का निर्धारण, 79, मिशिगन ला रिव्यू 1177, 1192 (1981)

[248] (2009) 6 एससीसी 498।

[249] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 145 पर।

ख. विधि आयोग की 35 वीं रिपोर्ट का दृष्टिकोण

4.2.1 यह सिफारिश करने में कि क्या मृत्युदंड को बनाए रखा जाए, विधि आयोग की 35 वीं रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया गया कि मृत्युदंड द्वारा निम्नलिखित प्रयोजनों की पूर्ति होती है :

(क) भयोपरतता - 35वीं रिपोर्ट ने कहा कि भयोपरतता न केवल मृत्युदंड का, किन्तु साधारणतया दंड का सबसे अधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।[250]

(ख) प्रतिशोध- प्रतिशोध को भी 35वीं रिपोर्ट में मृत्युदंड के महत्वपूर्ण न्यायोचित्य के रूप में देखा गया है। यह कहा गया था कि प्रतिशोध को 'आंख के लिए आंख' के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए किन्तु उसके परिष्कृत रूप में अपराध की लोक निंदा के रूप में समझा जाना चाहिए।[251]

(ग) अक्षमता - 35वीं रिपोर्ट ने कहा कि ऐसे व्यक्तियों का एक प्रवर्ग है जो 'क्रूर और दुष्चरित्र हैं और वे सुधार किए जाने के योग्य नहीं हैं'। सर फिट्जजेम्स स्टीफन को उद्धत करते हुए रिपोर्ट ने कहा कि 'ऐसे व्यक्तियों को जीने की अनुज्ञा देना सभ्य समाज में भेड़िए को जीवित छोड़ देने जैसा होगा।'[252] इसने आगे कहा कि यदि ऐसा कोई खतरा है कि ऐसा व्यक्ति पुन: अपराध कर सकता है, तो यह युक्तियुक्त होगा कि उसका जीवन समाप्त कर दिया जाए।[253]

4.2.2 मृत्युदंड को बनाए रखने के लिए 35 वीं रिपोर्ट में कथित एक बड़ा कारण भारत की अद्वितीय स्थिति है और यह कि इस समय प्रवृत्त समाज की परिस्थितियों की दृष्टि से मृत्युदंड का समाप्त करना बुद्धिमत्ता पूर्ण नहीं होगा।[254]

4.2.3 35वीं रिपोर्ट द्वारा कथित न्यायोचित्यों में से प्रत्येक के बारे में नीचे ब्यौरे वार बताया गया है :

ग. भयपरतता

4.3.1 भयपरतता का उद्देश्य व्यक्तियों को दंड के डर और धमकी के प्रयोग से अपराध करने से निवारित करना है।[255] भयपरतता के सिद्धांत के पीछे उपधारणा यह है कि सभी व्यक्ति तार्किक व्यक्ति हैं और वह अपराध तभी करेंगे जब वे देखते हैं कि लाभ, जो वह आपराधिक कार्य करके प्राप्त करेंगे, उस पीड़ा से अधिक होगा जो वह उसके दांडिक परिणामों से भोगेंगे।[256] विश्वास यह है कि भयपरतता की संक्रिया सुदृढ़ होती है, जब दंड को इतना गंभीर बनाया जाता है जितनी की मृत्यु स्वयं है, तो कोई भी व्यक्ति अपने सही

---

[250] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

[251] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 297 पर।

[252] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 300 पर।

[253] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 301 पर।

[254] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, (मुख्य निष्कर्षों और सिफारिशों का सार) http://lawcommissionofindia.nic.in/1-50/report 35Vol1 and 3.pdf पर उपलब्ध है (26.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[255] एन्ड्रियु एशवर्थ : दंडादेश देना और आपराधिक न्याय 75 (चौथा संस्करण 2005) ; रेमंड पेटर्नोस्टर, हम आपराधिक भयोपरतता के बारे में वास्तव में कितना जानते हैं, 100 आपराधिक विधि और अपराध शास्त्र का जरनल, 765, 766 (2010)।

[256] एंड्रियू एशवर्थ, दंडादेश देना और आपराधिक न्याय 71(चौथा संस्करण 2005)।

मस्तिष्क से ऐसा कार्य नहीं करेगा जिसके परिणामस्वरूप उसका जीवन समाप्त हो, स्वयं को बनाए रखने की सहज प्रवृतति साधारण परिस्थितियों में स्वाभाविक, जैविक और अजेय होती हैं।[257] इस संबंध में बहुधा उद्धृत किया गया कथन सर जेम्स स्टीफन का है :

> कुछ व्यक्ति, संभवतया हत्या से दूर रहते हैं क्योंकि वे डरते हैं कि यदि उन्होंने हत्या की तो उनहें फांसी पर लटकाया जाएगा ।हजारों में से सैकड़ों इससे इसलिए दूर रहते हैं क्योंकि वे इसे भयावना समझते हैं । एक बड़ा कारण, जिससे वे इसे भयानक समझते हैं वह यह है कि हत्यारों को फांसी पर लटकाया जाता है।[258]

4.3.2 35वीं रिपोर्ट ने इस प्रस्तावना के पक्ष में कि मृत्युदंड भयपरतिकारी मूल्य की पूर्ति करता है (अन्य के साथ) निम्नलिखित कारण दिए :[259]

1. प्रत्येक मानव मृत्यु से डरता है।[260]
2. मृत्युदंड कारावास से भिन्न पदस्थान पर है। दोनों में अंतर गुणागुण का है, केवल मात्रा का नहीं।
3. आयोग द्वारा परामर्श किए गए विशेषज्ञों का, जिनके अंतर्गत राज्य सरकारें, न्यायाधीश, संसद् सदस्य, राज्य विधान मंडल के सदस्य, पुलिस अधिकारी और अधिवक्ता थे, यह विचार था कि 'मृत्युदंड का भयपरतिकारी उद्देश्य भारत में काफी मात्रा में प्राप्त कर लिया गया है।'[261]

4. क्या दंड के अन्य रूपों को मृत्युदंड का लाभ प्राप्त है, यह संदेह का विषय है।
5. 'अन्य देशों के आंकड़े इस विषय पर अपूर्ण हैं। यदि उनके बारे में यह नहीं माना जाता है कि उन्होंने भयपरतिकारी प्रभाव को साबित किया है, तो उनके बारे में यह भी नहीं माना जा सकता कि उन्होंने अंतिम रूप से इसे साबित नहीं किया है।'[262]
6. यह कहने के लिए कि मृत्युदंड भयपरतिकारी के रूप में कार्य करता है 'पर्याप्त राय' है।[263]

4.3.3 बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य[264] में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि विश्व के अधिकांश देशों में, भारत सहित, जनसंख्या का एक बड़ा भाग, प्रसिद्ध दंडादिष्टों, न्यायाधीशों, न्यायविदों, विधायकों और अन्य विद्वान व्यक्तियों सहित 'अभी तक विश्वास करता है कि

---

[257] अर्नेस्ट हाग, दि अल्टीमेट पनिशमेंट – ए डिफेंस, 99 हार्वर्ड ला रिविव्यू 1662, 1666 (1986)

[258] अर्नेस्ट हाग, दि अल्टीमेट पनिशमेंट – ए डिफेंस, 99 हार्वर्ड ला रिविव्यू 1662, 1666 (1986)

[259] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 370 पर।

[260] हुड एंड होएले, तर्क देते हैं कि यह संभव है कि कुछ व्यक्ति फांसी के डर के कारण हत्या करने से विरत रहे, किन्तु वह इस निष्कर्ष को निकालने के लिए अपर्याप्त आधार है कि मृत्युदंड का बना रहना व्यक्तियों को हत्या करने से भयोपरत करता है, देखिए:रोजर हुड और केरोलिन होएले, भयोपरता का भ्रम, मृत्युदंड से दूर जाने में। तर्क, रुझान और दृष्टिकोण,67 (संयुक्त राष्ट्र संघ, मानव अधिकार आयोग, 2014)।

[261] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 370 पर।

[262] भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 370 पर।

[263] इस प्रतिपादना के लिए आयोग अपनी प्रश्नावली के लिए प्राप्त उत्तरों और सर पैट्रिक स्पेंस द्वारा हाउस आफ कामन्स में, उनके भारत में अनुभवों के आधार पर, दिए गए कथन को उद्धृत करता है।

[264] (1980) 2 एससीसी 684।

मृत्युदंड आजीवन कारावास से अधिक भयपरतता का सृजन करता है।[265] न्यायालय ने ऐसे बहुत से मामलों को देखा है, जहां उसने मृत्युदंड के भयपरतिकारी मूल्य को मान्यता प्रदान की थी।[266]

4.3.4 बचन सिंह के पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने भयपरतता का मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए एक न्यायोचित्य के रूप में उपयोग किया है। उदाहरण के लिए महेश बनाम मध्य प्रदेश राज्य[267] में मृत्यु का दंडादेश अधिरोपित करते हुए न्यायालय ने यह देखा कि '(कि सामान्य मनुष्य सुधारात्मक विशिष्ट शब्दावली से भयपरतता की भाषा अधिक समझता है और उसकी प्रशंसा करता है।[268] जासुबा भरत सिंह गोविंद बनाम गुजरात राज्य[269] में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'समाज का संरक्षण और अपराधी को भयपरत करना विधि का स्पष्ट उद्देश्य है।[270] तथापि ऐसे अन्य मामले हैं जहां न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि भयपरतता मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए प्राथमिक न्यायोचित्य नहीं हैं[271] और उन्होंने भयपरतता की कुशलता पर संदेह किया है।[272]

(i) मृत्युदंड की भयपरतता के मूल्य पर आनुभविक साक्ष्य

4.3.5 उन पद्धतियों में से एक जिसके द्वारा भयपरतता के तर्क की कुशलता का परीक्षण किया जाता है, आनुभविक रूप से यह स्थापित करना है कि मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव है । बहुत वर्षों के अनुसंधान और सांख्यिकीविदों, व्यवसायियों और सिद्धांतवादियों के बीच विचार-विमर्श के पश्चात् एक विश्व व्यापी सहमति अवप्रकट हुई है कि यह सुझाव देने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि मृत्युदंड अपने विकल्प- आजीवन कारावास-से अधिक भयपरतिकारी प्रभाव रखता है।

4.3.6 भयपरतता की कुशलता पर विचार-विमर्श ने हिजाब अहलरिच द्वारा किए गए अध्ययन के साथ, जो 1975 में प्रकाशित किया था, जिसमें अहलरिच ने हत्यारों को फांसी दिए जाने का 'अद्वितीय भयपरतिकारी प्रभाव' पाया था, गति पकड़ ली।[273] इस अध्ययन ने दावा किया कि प्रत्येक फांसी '8 निर्दोष जीवन 'तक बचाती है।[274] भारत के उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह में अहलरिच के अनुसंधान को उद्धत किया और उसे व्यापक मूल्य दिया।[275] तथापि, पश्चातवर्ती अहलरिच की प्रद्धति और उपधारणाओं में कई

---

[265] (1980) 2 एससीसी 684, 713।

[266] न्यायालय पारस राम बनाम पंजाब राज्य, (1981) 2 एससीसी 508, जगमोहन बनाम राज्य एआईआर 1973 एससी 947, एडिगा अन्नम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य एआईआर 1974 एससी 799, शिव मोहन सिंह बनाम राज्य एआईआर 1977 एससी 949, चार्ल्स सोभराज बनाम अधीक्षक, केंद्रीय कारागार, तिहाड़, नई दिल्ली, 1978 एआईआर 1514 के प्रति निर्देश करता है।

[267] (1987) 3 एससीसी 80।

[268] महेश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1987) 3 एससीसी 80, 82। यह भी देखिए : सेवक पेरुमल बनाम तमिनाडु, (1991) 3 एससीसी 471, 480, अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 667, 675, मोहन अन्ना छावन बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 7 एससीसी 561, 574।

[269] (1994) 4 एससीसी 353।

[270] जशुबा भारतसिंह गोहिल बनाम गुजरात राज्य, (1994) 4 एससीसी 353, 360। यह भी देखिए : पनिबेन बनाम गुजरात राज्य, (1992) 2 एससीसी 474, 483, बी.कुमार बनाम पुलिस निरीक्षक, (2015) 2 एससीसी 346, 354, गयासुद्दीन खान बनाम बिहार राज्य,(2003) 12 एससीसी 516, 525, पारस राम बनाम पंजाब राज्य, (1981) 2 एससीसी 508, 508।

[271] देखिए, सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, 343।

[272] रविन्द्र त्रिबंक छोटमल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1996) 4 एससीसी 148, 151।

[273] इसैक एलरिच, मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव : जीवन और मृत्यु का एक प्रश्न, 65 एएम, ईसीओएन. आरईवी. 397 (1975)

[274] इसैक एलरिच, मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव : जीवन और मृत्यु का एक प्रश्न, 65 एएम, ईसीओएन. आरईवी. 397 (1975)।

[275] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 648, 717-718।

कमियां पायी गई थीं। उदाहरण के लिए अहलरिच के अध्ययन के एक शक्तिशाली आलोचक ने प्रकट किया कि यदि आंकड़े ठीक छह वर्षों के, 1963-69 के, 43 वर्ष (1922-1963) वाले बड़े आंकड़ों के सेट से लिए गए थे, तो भयपरतता का साक्ष्य पूर्णरूप से अदृश्य हो गया था ।[276]

4.3.7 अहलरिच के अध्ययन और अन्य अध्ययनों का, जिन्होंने भयपरतता को मृत्युदंड से जोड़ा था, पुनर्विलोकन करने के लिए संयुक्त राज्य में राष्ट्रीय वैज्ञानिक अकादमी द्वारा एक पैनल बनाया गया, जिसके अध्यक्ष (नोवेल लारेट) लारेंस क्लियन थे। इस पैनल ने, 1978 में प्रस्तुत की गई अपनी रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला कि 'उपलब्ध अध्ययन मृत्युदंड के भयपरतिकारी प्रभाव पर कोई लाभप्रद साक्ष्य नहीं देता है' और मृत्युदंड की मंजूरी के भयपरतिकारी प्रभावों पर अनुसंधान से ऐसे परिणाम निकलने की संभावना नहीं है जो नीति बनाने वालों पर अधिक प्रभाव रखेंगे या जिन्हें रखना चाहिए।[277]

4. 3. 8 डोनोहू और बोल्फर्स, इन अध्ययनों के, जो दावा करते हैं कि मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव होता है, जोरदार आलोचक हैं।[278] उन्होंने रिपोर्ट किया कि संयुक्त राज्य और कनाडा में मानव वध दरें (सांस्कृतिक रूप से और सामाजिक-आर्थिक रूप से समान क्षेत्रों में) वस्तुत: चेनबद्ध जैसी हो गई थीं, जबकि मृत्युदंड के प्रति दृष्टिकोणों में 1950 से तेजी से मतभेद हो गया था। समान रूप से संयुक्त राज्य के भीतर सभी मृत्युदंड देने वाले और मृत्युदंड न देने वाले राज्यों की मानव वध दरों में (1960 और 2000 के बीच) गति वस्तुत: समान ही पायी गई थी।[279] इस प्रकार उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि समय और स्थान को दृष्टि से की गई शुद्ध मानव वध तुलनाओं में भयपरतता का साक्ष्य पाना कठिन है।

4.3.9 डोनोहू और बोल्फर्स ने यह भी पाया कि भयपरतता के लिए विद्यमान साक्ष्य आश्चर्यजनक रूप से कमजोर है और विनिर्देशों में छोटे परिवर्तन तक नाटकीय रूप से भिन्न परिणाम देते हैं.....हमारे प्राक्कलन इस बारे में कि मृत्युदंड का कोई भयपरतिकारी प्रभाव होता है, न केवल 'युक्तियुक्त संदेह का बल्कि गहरी अनिश्चितता का सुझाव देते हैं..... 'हम निराशावादी हैं कि विद्यमान आंकड़े इस अनिश्चिता का समाधान निकाल सकते हैं।'[280] (इस पर जोर दिया गया)

4.3.10 विद्यमान साहित्य के समरूप व्यापक पुनर्विलोकन में संयुक्त राज्य में राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् ने 2012 में प्रकाशित एक रिपोर्ट में निष्कर्ष निकाला कि 'मानव वध पर मृत्युदंड के प्रभाव पर आज तक का अनुसंधान इस बारे में सूचना देने वाला नहीं है कि क्या मृत्युदंड मानव वध की दरों को घटाता है, बढ़ाता है या उसपर कोई प्रभाव नहीं रखता है। अत: यह समिति सिफारिश करती है कि इन

---

[276] पीटर पेसेल एंड जॉन टेलर, मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव :एक दूसरा दृष्टिकोण 67 एएम ईसीओएन.आरइवी. 445(1977)

[277] लारेंस आरक्लीन, ब्रायन फोस्ट एंड विक्टर फिलाटो, मृत्युदंड का भयपरतिकारी प्रभाव, प्राक्कलनों का निर्धारण, एल्फ्रेड ग्लूम्स्टेनमे, जेक्लिन कोहेन एंड डेनियल नगिन (ईडीएस) भयपरतता और असमर्थता : अपराध दरों पर आपराधिक मंजूरी के प्रभाव का प्राक्कलन, राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, वाशिंगटन डीसी (1978)। यह भी देखिए :आईएस नगिन एंड जोन वी टेपर (ईडीएस), भयपरतता और मृत्युदंड, भयपरतता और मृत्युदंड संबंधी समिति (विधि और न्याय संबंधी समिति) राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् (2012)।

[278] जोन डोनाहु एंड जस्टिन वोल्फर्स, मृत्युदंड संबंधी विचार-विमर्श में आनुभविक साक्ष्य के उपयोग और दुरुपयोग, 58 स्टेन एल. आरईवी. 791 (2005), यह भी देखिए, डेनियल एस नगिन एंड जोन वी पेपर (ईबीएस), भयोपरतता और मृत्युदंड : भयोपरतता और मृत्युदंड संबंधी समिति। (विधि और न्याय संबंधी समिति), राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् (2012)।

[279] जोन डोनाहु एंड जस्टिन वोल्फर्स, मृत्युदंड संबंधी विचार-विमर्श में आनुभविक साक्ष्य के उपयोग और दुरुपयोग, 58 स्टेन एल. आरईवी. 791 (2005), यह भी देखिए, डेनियल एस नगिन एंड जोन वी पेपर (ईबीएस), भयोपरतता और मृत्युदंड, भयोपरतता और मृत्युदंड संबंधी समिति। (विधि और न्याय संबंधी समिति), राष्ट्रीय अनुसंधान परिषद् (2012)।

[280] जोन डोनाहु एंड जस्टिन वोल्फर्स, आनुभविक साक्ष्य के उपयोग और दुरुपयोग, मृत्युदंड संबंधी विचार-विमर्श, 58 स्टेन एल. आरईवी. 791, 794।

अध्ययनों का मानव वध पर मृत्युदंड के प्रभाव के बारे में निर्णयों की अपेक्षा करने वाले विचार-विमर्शों को सूचित करने के लिए प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।[281] (जोर दिया गया)

4.3.11 इस प्रकार विचार-विमर्श 21वीं सदी के पहले दशक में निकाले गए निष्कर्षों के साथ वहीं आ गया है, जहां से प्रारंभ हुआ था क्योंकि, निष्कर्ष वही हैं जो 1951 में यूके रायल कमीशन आन दि डेथ पेनाल्टी द्वारा निकाले गए थे, जब उसने कहा :

> साधारण निष्कर्ष, जिस पर हम पहुंचे हैं यह है कि ऐसे आंकड़ों में, जिनकी हमने परीक्षा की है कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है कि मृत्युदंड के समाप्त किए जाने ने मानव वध की दर में वृद्धि की है या यह कि उसके पुन: प्रारंभ किए जाने ने उसमें कमी की है ।[282] (जोर दिया गया)

4.3.12 इस दृष्टिकोण का संयुक्त राष्ट्र(यू एन) द्वारा भी समर्थन किया गया है जिसने लगातर यह माना है। 2008, 2010, 2013 और 2015 के मृत्युदंड के उपयोग पर अधिस्थगन संबंधी संकल्पों में कि भयपरतता और मृत्युदंड पर कोई निश्चायक साक्ष्य नहीं है।[283] आगे संयुक्त राष्ट्र संघ ने इन रिपोर्टों में, जो हाल ही में जैसे 2014 में प्रकाशित की गई हैं, यह देखा है कि भयोपरतता के किसी साक्ष्य के बारे में उसके विद्यमान होने की उपधारणा नहीं की जा सकती है।[284] संयुक्त राष्ट्र ने यह भी देखा है कि भयपरतता ' भ्रम 'से अधिक कुछ नहीं है।[285]

4.3.13 आगे दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने भयपरतिकारी के तर्क पर निर्णय देते हुए स्टेस वर्सस मैक्वान्याने एंड मछूनू[286] में यह कहा :

> यह एटार्नी जनरल द्वारा स्वीकार किया गया था कि भयपरतिकारिता मृत्युदंडादेश संबंधी साहित्य में बहुत विवादास्पद मुद्दा है। उन्होंने तर्क दिया कि यह सामान्य समझ है कि अत्याधिक डरावना दंड सबसे अधिक भयपरतिकारी होगा, किन्तु यह स्वीकार किया कि इस बात का कोई सबूत नहीं है कि मृत्युदंडादेश वास्तव में लंबी अवधि के आजीवन कारावास से बड़ा भयपरतिकारी है। ..... ' किसी दंड के बारे में, जो इतना चरम रूप का और इतना अप्रतिसंहरणीय है जैसे मृत्यु, इस बारे में परिकल्पना के आधार पर दृढ़तापूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि उसका क्या भयपरतिकारक प्रभाव होगा।[287]

4.3.14 उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह में भयपरतिकारिता और मृत्युदंड पर आकड़ों के अनुसार किए गए अध्ययनों को ध्यान में रखते हुए कहा: ' हम यह कह सकते हैं कि मृत्युदंड वास्तव में व्यवहार में भयपरतिकारक के रूप में कार्य करता है या नहीं, यह आंकड़ों के अनुसार किसी भी तरफ साबित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस बारे में आंकड़ों का संग्रह करना कि कितने संभावित हत्यारे, हत्या के लिए मृत्युदंड के विद्यमान होने के कारण, हत्या करने से भयभीत हुए थे, यदि पूर्णतया असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। भयभीत हुए

---

[281] राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, भयोपरतता और मृत्युदंड, 102 (डेनियल एस. नगिन, 2012)।

[282] देखिए, मृत्युदंड पर यूके रायल कमीशन की रिपोर्ट।

[283] देखिए, मृत्युदंड के उपयोग पर अधिस्थगन संबंधी संकल्प ; संकल्प 65/206(2010) और संकल्प 67/176 (2013) और संकल्प /69/186 (2015)। यह देखना महत्वपूर्ण है कि भारत इन संकल्पों का हस्ताक्षरकर्ता नही है।

[284] मृत्युदंड से दूर जाते हुए। दक्षिण पूर्व एशिया से पाठ, राष्ट्र संघ मानव अधिकार आयोग, 10 (2014)

[285] केरोलिन होएले एंड रोजर हुड, मृत्युदंड से दूर जाने में भयोपरतता का भ्रम : तर्क, रुझान और दृष्टिकोण, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार उच्चायुक्त का कार्यालय, 74-83 (2014)

[286] केस नं0 सीसीटी/3/94, दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य का संवैधानिक न्यायालय।

[287] स्टेस वर्सस मैक्वान्याने एंड मछूनू, केस नं0 सीसीटी/3/94, दक्षिण अफ्रीकी गणराज्य का संवैधानिक न्यायालय।

संभावित हत्यारों के ऐसे आंकड़े प्रकट करना कठिन है, क्योंकि वे उनके मस्तिष्क के सबसे भीतर के गुप्त स्थानों में छिपे रहते हैं।[288] इस प्रकार इस पर जोर देना, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा बचन सिंह में कहा गया है, महत्वपूर्ण है कि दंडादेश देने वाली नीति को मृत्युदंड के दृष्टिगोचर भयपरतिकारी प्रभाव के आनुभविक विश्लेषण के आधार पर, एक तरफ या दूसरी तरफ, ही प्रभावित नहीं होना चाहिए और उसके आधार पर विनिश्चय नहीं किया जाना चाहिए।

(ii) भयोपरतता की धारणाएं

4.3.15 भयोपरतता के कार्य करने के लिए, यह आवश्यक है कि कतिपय पूर्व अपेक्षाओं को पूरा किया जाए। यदि इन पूर्व अपेक्षाओं में से कोई विद्यमान नहीं है या उनमें से कोई कमजोर है तो भयोपरतता का विचार समग्र रूप से असफल हो जाता है। इन पूर्व अपेक्षाओं को मोटे तौर पर निम्नलिखित रूप में प्रभावशाली और स्पष्ट रूप से लिखा जा सकता है :[289]

(क) संभावित अपराधी यह जानते हैं कि कौन से अपराध मृत्युदंड के पात्र हैं।

(ख) संभावित अपराधी अपराध करने के पूर्व या करते समय लागत और लाभों का विश्लेषण करते हैं और मृत्युदंड को गंभीर और महत्वपूर्ण लागत के रूप में मापते हैं।

(ग) संभावित अपराधी इसे एक संभव परिणाम के रूप में देखते हैं कि उन्हें मृत्युदंड दिया जाएगा,यदि वह अपराध करते हैं।

(घ) संभावित अपराधी खतरे के विरुद्ध होते हैं न कि खतरा चाहने वाले।

(ड.) संभावित अपराधी लाभों से अधिक लागत को महत्व देते हैं और कार्य न करने का चयन करते हैं।

4.3.16 यदि ऊपर वर्णित सभी अपेक्षाएं पूरी हो जाती हैं तो यह उपधारणा की जाती है कि संभावित अपराधी अपराध करने से भयभीत होगा।

4.3.17 तथापि विशेषज्ञों ने इन उपधारणाओं में दो बड़ी भूलों को देखा है- जानकारी संबंधी भूलें और युक्तिमूलक भूलें।[290]

क. जानकारी संबंधी भूलें

4.3.18 जानकारी संबंधी भूलें, इस विचार के प्रति निर्देश करती हैं कि अपराधी उस अपराध को लागू, जो वे करने की योजना बनाते हैं, दंडों को नहीं जानते हैं। अत: वे गंभीर दंड के द्वारा भयभीत होना अनुभव नहीं करते हैं। तथापि, भयोपरतता यह उपधारणा करती है कि प्रत्येक व्यक्ति, यदि वह कोई अपराध करता है, तो उसको लागू विधिक दंडों को जानता है। यह दर्शित करने के लिए काफी साक्ष्य है कि सामान्य जनता और संभावित अपराधी उन दंडों की कम या कोई जानकारी नहीं रखते, जो उन्हें दिए जा सकते हैं।[291] जानकारी संबंधी भूल के विचार को किंग द्वारा उचित रूप से संक्षेप में व्यक्त किया गया है, 'विधि को भंग करने वाले विधि की पुस्तकों में विहित दंड की तरफ नहीं देखते हैं : वे योजना बनाते हैं और यदि सोचते भी हैं तो यह कि पकड़े जाने से कैसे बचा जाए।[292]

---

[288] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 101 पर।

[289] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173,175 (2004)।

[290] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173 (2004)।

[291] डेविड एंडरसन, भयोपरतता और कल्पना, अमरीकन ला एंड ईसीओएन. आरईवी.295 (2002)

[292] डेविड एंडरसन, भयोपरतता और कल्पना, अमरीकन ला एंड ईसीओएन. आरईवी.295 (2002)

ख. युक्तिसंगतता संबंधी भूलें

4.3.19 भयोपरतता सिद्धांत की एक बड़ी उपधारणा यह है कि संभावित अपराधी युक्तिसंगत विनिश्चय करने वाले होते हैं। तथापि, एक बड़ी संख्या में अपराध उन्माद या गुस्से की अवस्था में किए जाते हैं या जब अपराधी नैदानिक रूप से निराश होता है या वह ऐसी कठोर भावनाओं, जैसे प्रतिशोध या संभ्रांति द्वारा प्रेरित होता है।[293] ऐसी परिस्थितियों में, जैसी ये हैं, भयोपरतता से कार्य करने की संभावना नहीं होती है क्योंकि कार्य करने वाले के द्वारा इस बात पर कि उस पर पश्चातवर्ती दंड अधिरोपित किए जा सकते हैं, सम्यक् ध्यान दिए जाने की या सरसरे रूप से भी विचार किए जाने की संभावना नहीं होती है ; क्योंकि विचारों का केंद्रबिंदु उसके मस्तिष्क में आने वाली भावनाएं होती हैं।[294]

4.3.20 ऊपर किया गया विचार विमर्श यह संकेत नहीं देताहै कि भयोपरतता एक भ्रम है और आपराधिक न्याय प्रणाली भयोपरतता पर कोई प्रभाव डाले बिना, पूर्ण रूप से सभी दंडों से छुटकारा पर सकती है। तथापि, जैसा कि विद्वानों द्वारा प्रकट किया गया है कि यह तथ्य की एक आपराधिक न्याय प्रणाली विद्यमान है, जो आपराधिक आचरण को दंडित करती है, स्वयं में भयपरतिकारी है।[295] परिणामस्वरूप यह आवश्यक नहीं है कि दंड स्वयं में कठोर या अत्यधिक हो। सिद्धांतवादी तर्क देते हैं कि आपधारिक विधि में यह उपधारणा कि कठोरतर दंड हो, तो अपराध को किए जाने की संभावना कम होती है, सही नहीं है।[296]

(iii) आतंकवाद का मामला

4.3.21 एक महत्वपूर्ण प्रश्न, जिसका आयोग द्वारा सामना किया गया, यह था कि क्या मृत्युदंड आतंकवाद संबंधी अपराधों के संबंध में बनाए रखना चाहिए, चाहे उसे सभी अपराधों के लिए समाप्त कर दिया जाए। इस प्रतिपालना के लिए एक बड़ा कारण यह है कि मृत्युदंड, नागरिकों की सुरक्षा और राष्ट्र की समग्रता बनाए रखने के लिए, भविष्य में समान अपराधों के लिए भय उत्पन्न करके एक महत्वपूर्ण औजार के रूप में कार्य करता है। चूंकि आतंकवाद संबंधी अपराध लागू उद्देश्यों के अनुसार को मामूली अपराधों से बहुत भिन्न होते हैं, अत: भयोपरतता की धारणाओं पर यह अभिनिश्चित करने के लिए कि क्या आतंकवाद विरोधी अपराधों के लिए शायद मृत्युदंड को बनाए रखना वांछनीय है, पुन: विचार किए जाने की आवश्यकता है।

4.3.22 बहुत से व्यक्तियों द्वारा यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि मृत्युदंड से आतंकवादियों को भयभीत करने की संभावना नहीं है, क्योंकि बहुत से आतंकवादी आत्मघाती मिशन पर होते हैं (वे अपने उद्देश्य के लिए अपना जीवन अर्पित करने के लिए तैयार रहते हैं) ',[297] और अन्य ऐसे कारण भी हैं जिससे कि वास्तव में मृत्युदंड आतंकवादी हमलों में वृद्धि कर सकता है। मृत्युदंड की बहुधा

---

[293] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173, 174 (2004)

[294] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173 (2004)

[295] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173 (2004)

[296] पाल राबिंसन एंड जोन डार्ले, क्या आपराधिक विधि भयोपरत करती है, 24, आक्सफोर्ड विधिक अध्ययन जरनल, 173, 174 (2004)

[297] थामस माइकल मैकडोनल। मृत्युदंड 'आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध ? के लिए बाधा, 37 वैंड. जे. ट्रांसनेटल एल. 353, 390 (2004)। राष्ट्रपति जार्ज डब्ल्यू बुश की 2002 राष्ट्रीय सुरक्षा नीति, जिसे मोटे रूप से 9/11 के एक वर्ष पश्चात् प्रकाशित किया गया था, कहती है कि 'भयपरतता की पारम्परिक संकल्पनाएं ऐसे आतंकवादी शत्रु के विरुद्ध कार्य नहीं करेंगी जिसकी प्रकट युक्तियां विध्वंश करती हैं और निर्दोषों को लक्ष्य बनाती हैं, जिनके तथाकथित सिपाही मृत्यु में शहादत चाहते हैं और जिनका अत्यधिक प्रभावशाली संरक्षण राष्ट्रहीनता है.....भयपरतता – राष्ट्रों के विरुद्ध भारी प्रति-हिंसा का वायदा - से प्रतिरक्षा के लिए बिना किसी राष्ट्र या नागरिकों के छायात्मक आतंकवादी तंत्र के विरुद्ध कुछ अभिप्रेत नहीं हैं, वेस्ट प्वाइंट, न्यूयार्क में संयुक्त राज्य की सैनिक अकादमी में प्रारंभिक संबोधन, 38 वीकली सीओएमपी., प्रेस डीओसी. 944, 946 (जनू 1, 2012) ; बुश के 2006 के संबोधन में भी उसी बिंदु पर संबोधन किया गया था 'आतंकवादी शुत्र, जिनका हम आज सामना करते हैं, गुफाओं में और छाया में छुप जाते हैं और वहां से स्वतंत्रा राष्ट्रों पर

आतंकवादियों द्वारा याचना की जाती है। क्योंकि उन्हें फांसी दिए जाने पर, उनके राजनैतिक उद्देश्य का फांसी से सहयुक्त व्यक्तियों द्वारा नाटकीयता से समर्थन किया जाता है[298] और उन्हें इससे केवल जनता का ध्यान ही प्राप्त नहीं होता है किन्तु बहुधा उन्हें उन संगठनों और राष्ट्रों का समर्थन भी मिल जाता है, जो मृत्युदंड का विरोध करते हैं। इंडोनेशिया के बाली बाम्बर की अपनी दोषसिद्धि और फांसी लगने के समाचार पर यह प्रतिक्रिया थी कि वह प्रसन्न हो रहा था और अपने आप को शाबासी दे रहा था मानो उसने कोई पुरस्कार जीता हो।[299]

4.3.23 जससिका इस्टर्न ने, जो आतंकवाद के विषय पर पहले से ही प्रतिष्ठित विशेषज्ञ है, यह मत व्यक्त किया है :

> कोई व्यक्ति, साधारणतया मृत्युदंड की प्रभावकारिता के बारे में तर्क दे सकता है। किन्तु जब आतंकवाद की बात सामने आती है तो राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिंताएं सर्वोपरि होनी चाहिए। आतंकवादियों का, विशेष रूप से अवयस्क सक्रिय व्यक्तियों को फांसी देने का ऐसा प्रभाव होता है जो प्रतिशोध या न्याय से परे होता है। फांसी विरोधियों के हाथों का खिलवाड़ होती है। हम विरोधियों को शहीद बना देते हैं, प्रतिशोधात्मक आघातों को निमंत्रित करते हैं और शत्रुओं के जनसंपर्कों और निधि जुटाने वाली युक्तियों में वृद्धि करते हैं।[300]

4.3.24 समान रूप से बोस्टन के लंबी दौड़ वाले बाम्बर के विनिर्दिष्ट मामलें पर टिप्पण करते हुए डजोखर टसार्नेव, एलेन डर्सोविटुज लिखते हैं :

> टसार्नेव के विरुद्ध मृत्युदंड की मांग करना और उसे अधिरोपित करना, यदि उसे सिद्धदोषी ठहराया जाना है तो वह उसे शहीद बना देगा। उसका चेहरा आत्मघाती बम फेंकने वालों के लिए भर्ती करने से संबंधित पोस्टरों पर दिखाई पड़ेगा। उसको फांसी दिए जाने की दिशा में कम होते दिन आतंकवाद के अन्य कार्यों को अवश्य प्रेरित कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति , जो शहादत के माध्यम से स्वर्ग चाहते हैं, उसे ऐसी भूमिका के लिए अपने आदर्श के रूप में देखेंगे……. ।[301]

4.3.25 जेरेमी बेंथम, जो भयोपरतता के सिद्धांत के प्रणेता हैं, के प्रति निर्देश करना भी उपयोगी होगा। ' विद्रोहियों के संदर्भ में ' या 'विद्रोह ' के मामले में (जिसे मोटे तौर से राष्ट्र-विरोधी या आतंकवादियों के समान समझा जा सकता है) बेंथम ने कहा कि उन्हें फांसी देना अन्य संभावित विरोधियों को भयभीत नहीं करेगा किन्तु वास्तव में फांसी दिए गए व्यक्ति को शहीद बना देगा, जिसकी मृत्यु संभावित अनुगामियों को प्रेरित करेगी, न कि भयभीत करेगी।[302]

4.3.26 यद्यपि आतंकवाद के साथ अन्य अपराध के रूप में व्यवहार किए जाने के लिए कोई विधिपूर्ण दंड संबंधी न्यायोचित्य नहीं हैं, तथापि इस संबंध में बहुधा चिंता की जाती है कि आतंकवाद संबंधी अपराधों के लिए मृत्युदंड को समाप्त करने से राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव पड़ेगा। इस चिंता के कारण विधि बनाने वालों में गहरा मतभेद है। विधि बनाने वालों द्वारा उठायी गई चिंताओं को ध्यान में रखते हुए आयोग, आतंकवाद संबंधी अपराधों से भिन्न सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में प्रथम कदम उठाए जाने के लिए और लंबी प्रतीक्षा करने का कोई कारण नहीं देखता है।

आक्रमण करने के लिए प्रकट होते हैं आतंकवादियों के पास संरक्षा करने के लिए कोई सीमा या प्रतिरक्षा के लिए कोई राजधानी नहीं है। उन्हें भयपरत नहीं किया जा सकता – किन्तु वे हार जाएंगे। वेस्ट प्वाइंट, न्यूयार्क में संयुक्त राज्य की सैनिक अकादमी में प्रारंभिक संबोधन, 42, वीकली सीओएमपी., प्रेस डीओसी. 1037, 1039 (मई 27, 2006)।

[298] थामस माइकल मैकडोनल। मृत्युदंड 'आतंकवाद के विरुद्ध युद्ध ? के लिए बाधा, 37 वैंड. जे. ट्रांसनेटल एल. 353, 2004, 401।

[299] जेन परलेज, न्यायालय बाली के विस्फोटकर्ता को मृत्युदंड देने का विनिश्चय करता है, न्यूयार्क टाईम्स, अगस्त, 8 2003।

[300] जेसिका स्टर्न, हमारी अपनी जोखिम पर आतंकवादियों को फांसी , न्यूयार्क टाईम्स, 28 फरवरी, 2001।

[301] एलन डरशोविट्ज, डिजोखर टिसारनेव, को मृत्यु संबंधी अपराध के लिए भी मृत्युदंड का सामना नहीं करना चाहिए, दि गार्जियन, 24 अप्रैल, 2013

[302] एच.ए. बिदायु बेंथम का यूटीलिटेरियन क्रिटिक आफ दि डेथ पेनल्टी, 7 आपराधिक विधि और अपराध शास्त्र का जरनल,1033, 1046 (1983)।

घ. असमर्थता

4.4.1 असमर्थता का सिद्धांत अपराधियों के साथ इस प्रकार व्यवहार करने की वकालत करता है कि वह दोबारा अपराध करने की स्थिति में न रहें।[303] इसका सामान्यत: पुनरावृतति करने वाले अपराधियों, 'खतरनाक अपराधियों' और 'पेशेवर अपराधियों'[304] पर लंबे दंडादेश अधिरोपित के लिए न्यायोचित्य के रूप में प्रयोग किया जाता है।[305] मृत्युदंडादेश असमर्थता का सबसे अधिक चरम रूप है, क्योंकि इसमें अपराधी का जीवन यह सुनिश्चित करने के लिए ले लेना निहित होता है कि वह पुन: अपराध न करे। किसी व्यक्ति को असमर्थता की युक्तिसंगतता का प्रयोग करते हुए, यदि यह अवधारित किया जाता है कि उसका अस्तित्व समाज के लिए अयुक्तियुक्त भय कारित करेगा, मृत्यु का दंडादेश दिया जाता है।[306]

4.4.2 असमर्थता की युक्तिसंगतता का उपयोग करने में समर्थ होने के लिए यह आवश्यक है कि दंडादेश देने वाला न्यायालय अपराधी की 'भयानकता' का और इस संभावना का कि उस व्यक्ति के पुन: अपराध किए जाने की संभावना है, निर्धारण करता है।

4.4.3 असमर्थता के आधार पर किसी व्यक्ति को फांसी देने का प्राथमिक उद्देश्य उसके पूर्व लक्षण युक्त होने की समस्या है। सैद्धांतिकों ने तर्क दिया है कि इस प्रकार का पूर्व कथन करने में समर्थ होना वस्तुत: असंभव है कि सिद्धदोषी व्यक्ति के पुन: अपराध किए जाने की संभावना है।[307] किसी अपराध व्यसन के बारे में पूर्व कथन करने का प्रयोग सदैव उसमें कुछ अधिक सम्मिलित करेगा और मिथ्या सकारात्मकों बातों की करेगा।[308] पूर्व कथन का ऐसा कार्य स्वयं एक मनमाना प्रयोग है, जो मृत्युदंड का अधिरोपण करने में पहले से ही विद्यमान मनमानेपन को जोड़ता है।[309] आगे असमर्थता में किसी ऐसी बात के लिए, जो उसने नहीं की है- अर्थात किसी ऐसी बात के लिए, जो वह व्यक्ति को भविष्य में कर सकता है या नहीं कर सकता है, कोई परिणाम, जो न्यायोचित्य नहीं हैं, गंभीर रूप से किसी व्यक्ति को दंड देना अंतर्वलित है।[310] लॉग ने पूर्ण कुशलता से 'खतरनाक' व्यक्ति को फांसी न देकर 'भावी भयानकता के खतरे' के विषय पर, संक्षेप में लिख है, जब वह कहता है- 'यह किसी स्वतंत्र, यद्यपि अपूर्ण प्रजातंत समाज में रहने का अपरिहार्य खतरा होगा।'[311]

---

[303] एन्ड्रियु एशवर्थ, मृत्युदंडादेश और आपराधिक न्याय, 80 (चौथा संस्करण 2005)

[304] देखिए, क्रिस्टी ए विशेर, असमर्थता और अपराध नियंत्रण : क्या उनको कारागार में रखने की नीति अपराध को कम करती है ? 4 जस्ट. क्यू513, 539 (1987)

[305] देखिए, क्रिस्टी ए विशेर, असमर्थता और अपराध नियंत्रण : क्या उनको कारागार में रखने की नीति अपराध को कम करती है ? 4 जस्ट. क्यू513, 539 (1987)

[306] हार्वे डी. एलिस टिप्पणी : संवैधानिक विधि :मृत्युदंड : 8वें संशोधन की अपेक्षाओं को उसके न्यायोचित्य का समाधान करने के लिए रखे गए दार्शनिक आधारों का आलोचक, 34 ओकला.एल. आरईवी. 567, 609।

[307] सारा एफ. वरबोफ, हालटिंग दि सडेन डिसेन्ट इनटू ब्रूटल्टी, कैसे केनेड वर्सस ल्यूसियाना अधिक निर्बंधित मृत्युदंड न्यायशास्त्र को प्रस्तुत करता है, 14, ल्यूइस एंड क्लार्क एल. आरईवी. 1601, 1639 (2010)।

[308] जेम्स आर. एक्कर, न्यूयार्क की प्रस्तावित मृत्युदंड विधान : संवैधानिक और नीति दृष्टिकोण, 54, एएलबी.एल. आरईवी. 515, 572 (1989-1990)

[309] डोनाल्ड एल बेशेल, दोष (या भयपरतता) से क्या करना है? मृत्युदंड संस्कार और अनुकारी हिंसा, 38, डब्ल्युएम.एंड मैरी एल. आरईवी. 487, 502 (1996)।

[310] 34 ओकला.एल. आरईवी 567, 610।

[311] 62 यूएमकेसी एल. आरईवी 107, 170 (1993)।

4.4.4 एक दूसरा तर्क, जो असमर्थता के आधार पर किसी व्यक्ति को फांसी देने के विरुद्ध दिया जा सकता है, यह है कि इससे सुधार की संभावना पूर्णतया समाप्त हो जाएगी, जो कि भारत में एक महत्वपूर्ण दंड संबंधी विचारण है।[312]

4.4.5 पहले से ही कारावास में रखे गए व्यक्तियों के मामलों में पुन: अपराध करने की संभावना ऐसी स्थितियों तक परिसीमित है जहां सिद्धदोषी दूसरे सिद्धदोषी को या जेल अधिकारियों को, जब वे कारावास में हों, मारते हैं।[313] भारतीय संदर्भ में आज्ञापक मृत्युदंड को, जो ऐसी स्थिति के लिए विद्यमान था, मीठू बनाम पंजाब राज्य[314] में असंवैधानिक ठहराया गया। दंडादेश देने वाले न्यायालय, 'विरल मामलों में से विरलतम' के विश्लेषण को यह अवधारित करने के लिए लागू करना होगा कि क्या मृत्यु समुचित दंडादेश है। किसी व्यक्ति को, ऐसी स्थिति में भी, भारत में केवल असमर्थता के आधार पर फांसी नहीं दी जा सकती है।

4.4.6 मृत्युदंड, जब उसका असमर्थता के प्रयोजन के लिए प्रयोग किया जाता है[315] तो वह अत्यधिक भारी दंड हो जाता है, क्योंकि असमर्थता का उद्देश्य आजीवन कारावास द्वारा उतना ही प्राप्त किया जा सकता है, जितना कि फांसी देने के द्वारा प्राप्त होता है।[316] सिद्धदोषी अपराधी, कारावास में होते हुए, पुन: अपराध करने का अवसर नहीं पाता है।[317] अत: यह स्पष्ट है कि असमर्थता को मृत्युदंड के लिए न्यायोचित्य के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता, किन्तु वह आजीवन कारावास के लिए विधिमान्य न्यायोचित्य हो सकता है।

ड. प्रतिशोध

4.7.1 प्रतिशोध का सिद्धांत किए गए अपराध पर और किसी व्यक्ति के साथ न्यायोचित्य व्यवहार पर, बजाय अपराध का निवारण करने पर, ध्यान केंद्रित करता है।[318] यह इस बात पर जोर देता है कि दोष उन व्यक्तियों को दंड देकर प्रभावी बनाया जाता है, जो किसी ऐसे दोषपूर्ण कार्य के कारण, जो उन्होंने साशय या इच्छापूर्वक किया है, असुखद परिणाम के पात्र होते हैं।[319]

4.7.2 प्रतिशोध के दो कारण हैं – एक प्रतिशोध को बदले के रूप में समझता है। दूसरा कहता है कि प्रतिशोध अपराधी के साथ कोई समतुल्य कार्य करने की मांग नहीं करता है, जैसा कि 'आंख के लिए आंख' सिद्धांत ('दर्पण दंड') द्वारा सुझाव दिया गया है। यह अपराधी के चरित्र के लिए दंड के मापित और समुचित स्तर की वकालत करता है।[320]

(i) बदले के रूप में प्रतिशोध

---

[312] नीचे सुधार पर भाग देखिए।

[313] डोनाल्ड एल बेशेल, दोष (या भयपरतता) से क्या करना है? मृत्युदंड संस्कार और अनुकारी हिंसा, 38, डब्ल्युएम.एंड मैरी एल. आरईवी. 487, 502 (1996)।

[314] (1983) 2 एससीसी 277। उच्चतम न्यायालय ने पुन: अपराध करने वाले हत्या के सिद्धदोषियों के संबंध में संयुक्त राष्ट्र के आंकड़ों को भी देखा है। उसने कहा कि यद्यपि भारत में इस संबंध में कोई अध्ययन नहीं हुआ है किन्तु यह उपधारणा करना उचित होगा कि हत्या के सिद्धदोषियों द्वारा हत्या की घटनाएं न्यूनतम हैं। देखिए : (1983) 2 एससीसी 277, 292।

[315] 14 ल्यूइस एंड क्लार्क एल. आरईवी. 1601, 1639 (2010)।

[316] 38 डब्ल्युएम.एंड मैरी एल. आरईवी. 487, 502 (1996)। यह भी संयुक्त राज्य के उच्चतम न्यायालय द्वारा फरमन वर्सस जार्जिया में व्यक्त किया गया है, 408 यू.एस. 238, 311(व्हाइट, जे. कंकरिंग)।

[317] देखिए, फरमन वर्सस जार्जिया, 408 यू.एस. 238 (1972)।

[318] आर. वासेरस्ट्राम, न्याय और दंड में दंड के सिद्धांतों की कुछ समस्याएं, 189,(जे. सेडेरब्लूम एंड डब्ल्यू.ब्लीजेक ईडीएस., 1977)।

[319] मैरी एलेन गेल, प्रतिशोध, दंड और मृत्यु, 18 यू.सी. डेविस एल. आरईवी. 973,999-1000 (1985)।

[320] सुसैन एस्टोन एंड क्रिस्टीन पिपर, मृत्युदंडादेश और दंड :न्याय के लिए प्रश्न, 57 (2012)।

4.7.3 बदले के लिए प्रतिशोध की संकल्पना इस समझ पर आधारित है कि पीड़ित के साथ अपराधी द्वारा की गई 'नाहक बुराई' के अनुरूप अपराधी को दिए जाने वाले दंड की मात्रा समान होनी चाहिए।[321] जैसा कि पहले कहा गया है कि बहुधा उद्धत युक्ति- 'आंख के लिए आंख' इस दृष्टिकोण का संधि स्थल है।[322]

4.7.4 उच्चतम न्यायालय ने प्रतिशोध के दृष्टिकोण पर आधारित बदले का अननुमोदन किया है। दीना बनाम भारत संघ[323] में न्यायालय ने नियम बनाया कि 'दांत के लिए दांत' और 'आंख के लिए आंख' सिद्धांत में अंतर्वलित प्रतिशोध सभ्य न्यायशास्त्र की स्कीम में कोई स्थान नहीं रखता है'।[324] अभी हाल में शत्रुधन चौहान बनाम भारत संघ[325] में उच्चतम न्यायालय ने नियम बनाया कि प्रतिशोध का भारत में कोई संवैधानिक मूल्य नहीं है।[326] उसने अभिनिर्धारित किया कि किसी अपराधी को संविधान के अधीन वास्तव में संरक्षण प्राप्त है और न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह उसका परिरक्षण और संरक्षण करे।[327] उसने आगे अभिनिर्धारित किया कि ऐसे संरक्षण का 'प्रत्येक सिद्धदोषी तक, जिसके अंतर्गत मृत्यु सिद्धदोषी भी हैं' विस्तार है।[328] इस प्रकार उच्चतम न्यायालय ने अब स्पष्ट रूप से इस बात को मान्यता दी है कि दंड के लिए न्यायोचित्य के रूप मे बदले के लिए प्रतिशोध संवैधानिक सूची की कसौटी पर उत्तीर्ण नहीं होता है। न्यायालय ने इस बात पर भी जोर दिया है कि प्रतिशोधात्मक सिद्धांत का अपना दिन था और अब वह विधिमान्य नहीं रह गया है।'[329]

4.7.5 बचन सिंह[330] में न्यायालय ने यह कहा कि 'प्रतिशोध' सबसे खराब अपराधों के लिए समाज के परित्याग के अर्थ में पूर्णतया पुरानी संकल्पना नहीं हैं।'[331] यह विचारधारा प्रतिशोध को 'बदले' के रूप में नहीं देखती है किन्तु यह उसे अपराधी के कार्यों का तिरस्कार करने के रूप में देखती है। इस प्रकार बचन सिंह में, 'आंख के लिए आंख' दृष्टिकोण की उसने वकालत नहीं की गई थी।

(ii) प्रतिशोध, ऐसे दंड के रूप में, जिसके योग्य अपराधी हो

4.7.6 'अभित्यजन' की संकल्पना आधुनिक समझ और प्रतिशोधात्मक सिद्धांत के आधार को विहित करती है।[332] यह विहित करती है कि गलत कार्य के लिए ऐसा दंड होना चाहिए, जो अपराधी के कार्य के लिए समुचित हो और वह उसके योग्य हो।[333] यह

---

[321] इम्युनेल केंट, नैतिकता के सूक्ष्म विचार 141-142 (एम.जे.ग्रेगर ट्रांस, 1996), जेफ्री जी. मर्फी, केंट : अधिकार के दार्शनिक सिद्धांत 124 (1994)

[322] सुसैन एस्टोन एंड क्रिस्टीन पिपर, मृत्युदंडादेश और दंड :न्याय के लिए प्रश्न, 57 (2012)।

[323] (1983) 4 एससीसी 645।

[324] दीना बनाम भारत संघ, (1983) 4 एससीसी 645, पैरा 10 पर।

[325](2014) 3 एससीसी 1।

[326] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 245 पर।

[327] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 245 पर।

[328] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 245 पर।

[329] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1979) 3 एससीसी 646, पैरा 88 पर।

[330] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684।

[331] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 102 पर।

[332] मैरी एलेन गेल, प्रतिशोध, दंड और मृत्यु, 18 यू.सी. डेविस एल. आरईवी. 973, 1003(1985)।

[333] सुसैन एस्टोन एंड क्रिस्टीन पिपर, मृत्युदंडादेश और दंड :न्याय के लिए प्रश्न, 57 (2012)।

कथित करता है कि प्रतिशोध को बदले के बराबर मानना भ्रम है।[334] क्योंकि प्रतिशोध और बदले का समेकन 'आधुनिक आपराधिक विधि की जटिलता को, जिसका ध्यान आशय की मात्रा पर और न्यूनीकरण तथा क्षमा के मामलों पर केंद्रित है, सम्मिलित नहीं करता है।'[335]

4.7.7 धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[336] में, उच्चतम न्यायालय ने नियम बनाया कि समुचित दंड का अधिरोपण वह रीति है जिसमें न्यायालय अपराधियों के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर देते हैं।'[337] पश्चातवर्ती, 'न्याय के लिए समाज की पुकार' का उच्चतम न्यायालय द्वारा मृत्युदंडादेश अधिरोपित करने के लिए, नियमित रूप से न्यायोचित्य के रूप में उपयोग किया जाता रहा है।[338]

4.7.8 'न्याय के लिए समाज की पुकार' का उपयोग करने वाले दंड का न्यायोचित्य ऐसे दंड के रूप में, अपराधी जिसके योग्य हो, प्रतिशोध की संकल्पना के उपयुक्त नहीं हैं, क्योंकि वह इस पर ध्यान केंद्रित करने में असफल रहता है कि क्या सिद्धदोषी उस दंड के, जिसके अंतर्गत मृत्युदंडादेश है, योग्य है। अधिकांश मामलों ने, जिन्होंने दंड देने वाले न्यायोचित्य के रूप में 'न्याय के लिए समाज की पुकार' पर भरोसा किया है,[339] साधारणतया प्रत्येक व्यक्तिगत मामले में वृद्धि करने वाले और न्यूनीकरण करने वाले तथ्यों का विश्लेषण नहीं किया है, ऐसी एक प्रक्रिया, जो यह निर्धारण करने के लिए अपेक्षित है कि क्या दंडादेश योग्य है।[340]

4.7.9 आगे, प्रतिशोध इस प्रश्न के संबंध में कि 'कितना अधिक' दंडित किया जाना और दंड लगभग कितना होना चाहिए, किसी मार्गनिर्देशन का उपबंध नहीं करता है।[341] प्रतिशोधात्मक न्याय के बारे में कहा जाता है कि उसमें अंशशोधन समस्याएं हैं जहां कोई 'अपराध की तुला के पीछे से दंड की तुला' पर सरकते हुए कहां रुकना है, नहीं जान सकता है।[342] सिद्धांतवादी कहते हैं कि मृत्युदंड के उपयोग को आपराधिक न्याय की प्रतिशोधकारी प्रणाली में न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकता।[343]

---

[334] गेरार्ड वर्सस ब्रेडली, प्रतिशोध : दंड का केंदीय उद्देश्य, 27 हार्वर्ड, जे.एल.एंड पब. पोली. 19, 21 (2003)।

[335] एच.एल.ए. हर्ट, दंड और उत्तरदायित्व 164-165 (1968); मैरी एलेन गेल, प्रतिशोध, दंड और मृत्यु, 18 यू.सी. डेविस एल. आरईवी. 973, 1003(1985)।

[336] (1984) 2 एससीसी 220।

[337] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 एससीसी 220, पैरा 15 पर।

[338] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 एससीसी 220, जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम बसोडी, (2009) 12 एससीसी 318 ; बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 113 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्री कृष्ण, (2005) 10 एससीसी 420 ; जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 5 एससीसी 1 ; रवजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175 ; भेरू सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (1994) 2 एससीसी 467 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शेख शाहिद, (2009) 12 एससीसी 715 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतान @ सत्येंद्र, (2009) 4 एससीसी 736 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, (2006) 6 एससीसी 1 ; शैलेष जसवंतभाई बनाम गुजरात राज्य, (2006) 2 एससीसी 359।

[339] ओम प्रकाश बनाम हरियाणा, (1999) 3 एससीसी 19 ; जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम बसोडी, (2009) 12 एससीसी 318 ; बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 113 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561

[340] ओम प्रकाश बनाम हरियाणा, (1999) 3 एससीसी 19, पैरा 7 पर।

[341] क्लेरी फिंकेलिस्टीन, मृत्यु और प्रतिशोध, 21 क्रिम.जस्ट.एथिक्स. 12, 13 (2002)।

[342] एन्ड्रियु ओल्डेनक्विस्ट, प्रतिशोध और मृत्युदंड, 29 यू. डेटन एल.आरईवी 335, 338(2003)।

[343] मैथ्यू एच. क्रेमर, मृत्युदंड की आचार नीति :बुराई और उसके परिणामों का एक दार्शनिक अन्वेषण, प्रतिशोध के लिए मृत्यु, 77 (2011)।

च. आनुपातिकता

4.8.1 किसी अपराधी की परिनिन्दा करना और उसके कार्यों के लिए समाज का अननुमोदन संसूचित करना आनुपातिकता के सिद्धांत का प्राथमिक उद्देश्य है।[344] अपराधी के कार्यों की समाज द्वारा की गई परिनिन्दा को आनुपातिक दंड – ऐसा दंड जो उससे अधिक नहीं है, जिसके वह योग्य है- अधिरोपित करके उसे संसूचित किया जाता है।[345] उसको संसूचित करने वाले कृत्य के द्वारा आनुपातिकता का उद्देश्य अपराधी से उसके कार्यों के लिए पछतावा करवाना होता है।[346] यह अपराधी को पछतावा प्रकट करने के साधनों का उपबंध करके कराया जाता है। आगे आनुपातिकता के सिद्धांत की मूल अपेक्षा यह है कि अधिरोपित किया गया दंड 'अंतर्वलित अपराध की गंभीरता के अनुपात से अधिक' नहीं होना चाहिए।[347] (यूके) क्रिमिनल जस्टिस ऐक्ट 2003 का सेक्शन 143(1) इस सिद्धांत के एक उदाहरण का उपबंध करता है। यह कहता है कि किसी अपराध की गंभीरता का विचारण करने में न्यायालय को उस अपराध को और किसी हानि को, जो उस अपराध ने कारित की है, करने में अपराधी की सदोषिता पर विचार करना चाहिए कि क्या वह अपराध कारित किए जाने के लिए आशयित था या पूर्वानुमान करके कारित किया गया है।

4.8.2 दंड की कठोरता आनुपातिकता के सिद्धांत के लिए महत्वपूर्ण विचारण है क्योंकि अननुपातिक या गंभीर दंड निन्दा करने के तत्व को पराजित कर देता है।[348] परिणामस्वरूप यह सिद्धांत अधिकारिताओं के पार कैद के निम्न स्तरों और विद्यमान दंड की अनुपातत: कटौती का पक्ष लेता है।[349] आनुपातिकता विधि के शासन के मूल्यों का आदर करती है और दंडादेश देने की शक्ति पर सीमाओं को रखती है।[350]

4.8.3 कुछ मामलों में उच्चतम न्यायालय ने आनुपातिकता का दंड संबंधी उद्देश्य के रूप में प्रयोग किया है।[351] यह विनिर्णय कि 'आपराधिक विधि प्रत्येक किस्म के आपराधिक आचरण की सदोषिता के अनुसार दायित्व विहित करने में आनुपातिकता के सिद्धांत का साधारणत: पालन करती है,[352] न्यायालय ने आनुपातिकता का मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए न्यायोचित्य के रूप में उपयोग किया है

---

[344] पी.एफ. स्ट्रासन, स्वतंत्रता और रोष और अन्य पाठ 1 (1974) ; एन्ड्रू वान हिर्स्च, दंड के दार्शनिक सिद्धांत में आनुपातिकता : 'दंड क्यों दिया जाए ?' 'कितना' दिया जाए , 25 एलएसआर एल आरईवी.549, 561 (1991)

[345] मैथ्यू वर्डसवर्थ, दंडादेश और आपराधिक न्याय 84(2005)।

[346] मैथ्यू वर्डसवर्थ, दंडादेश और आपराधिक न्याय 84(2005)। देखिए :एन्ड्रयू वान हिस्च, दंड के दार्शनिक सिद्धांत में आनुपातिकता, 16 अपराध और न्याय 67 (1992 ; आर.ए. डफ, ट्रायल और पनिशमेंट 1986)।

[347] मैथ्यू वर्डसवर्थ, दंडादेश और आपराधिक न्याय 84(2005)।

[348] एन्ड्रयू वान हिस्च एंड एन्ड्रयू वर्डसवर्थ, आनुपातिक दंडादेश : सिद्धांतों को खोजना, 143 (2005)

[349] सुसैन एस्टोन एंड क्रिस्टीन पिपर, मृत्युदंडादेश और दंड :न्याय के लिए प्रश्न, 57 (2012) ; मेल्कम थोरबर्न, आपराधिक विधि और आपराधिक न्याय के सिद्धांतोंमें आनुपातिक मृत्यदंडादेश और विधि के नियम : एस्से इन आनर आफ एन्ड्रियु वर्डसवर्थ 269 (लुसिका जेंडर एंड जुलियन वी. राबर्ट ईडीएस 2012) ;बेरी पोलक, डेजर्ट एंड डेथ : दंड पर अधिकतम सीमाएं, 44 रूटजर्स एल. आरईवी. 985 (1991-1992)।

[350] मैथ्यू वर्डसवर्थ, दंडादेश और आपराधिक न्याय 84(2005)।

[351] देखिए शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713 ; लेहना बनाम हरियाणा राज्य, (2002) 3 एससीसी 76 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561।

[352] देखिए शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713, पैरा 25 पर ; लेहना बनाम हरियाणा राज्य, (2002) 3 एससीसी 76, पैरा 27 पर ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114, पैरा 29 पर ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561, पैरा 21 पर ; लेहना बनाम हरियाणा राज्य, (2002) 3 एससीसी 76 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561।

।[353] न्यायालय ने आनुपातिकता के सिद्धांत को, और समाज संबंधी धारणाओं को ध्यान में रखने की अपेक्षा को भी पढ़ा है। उसने कहा : आनुपातिकता के सिद्धांत का भारतीय आपराधिक न्यायशास्त्र के अधीन दंडादेश देने की नीति में मूल्यवान उपयोजन है.....न्यायालय को न केवल इसकी परीक्षा करनी होगी कि क्या न्यायसंगत है बल्कि इसकी भी परीक्षा करनी होगी कि समाज पर स्वच्छंद प्रभाव पड़ने को दृष्टि में रखते हुए, अभियुक्त किसके योग्य है।'[354] उसने यह भी कहा कि 'दंड का अधिरोपण, बहुत से मामलों में सामाजिक व्यवस्था पर उसके प्रभाव का विचारण किए बिना, वास्तव में एक निष्फल प्रयास हो सकता है।[355]

4.8.4 उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ ने हाल ही में इस पर मार्गनिर्देशन किया है कि आनुपातिकता के सिद्धांत को मृत्युदंड के सबंध में कैसे लागू किया जा सकता है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> दंडादेशों की आनुपातिकता के प्रश्न पर कार्यवाही करने में, मृत्युदंड को कारावास के दंड से किस्म और श्रेणी में भिन्न समझा जाता है। उसका परिणाम यह है कि जबकि इस बात के कई उदाहरण हैं जब मृत्युदंड को किए गए अपराध से अननुपातिक समझा गया है, किन्तु कारावास के दंड के ऐसे बहुत कम और विरले मामले हैं, जिन्हें अननुपातिक अभिनिर्धारित किया गया है।[356]

4.8.5 आनुपातिकता के सिद्धांत की सही समझ और उसका लागू किया जाना बरियार में पाया जा सकता है, जिसमें न्यायालय ने उस विरचना का उपबंध किया, जिसके भीतर मृत्युदंड के मामले में दंड देने की प्रक्रिया की जानी चाहिए। उसने कहा कि न्यायालय को पहले उसके समक्ष मामले के तथ्यों की 'समान रूप से परिस्थितिबद्ध मृत्यु से दंडनीय प्रतिवादियों के पूल' के साथ तुलना करनी चाहिए।[357] अपराध की गंभीरता और प्रकृति तथा साथ ही अपराधी के हेतु पर इस विश्लेषण में विचार किया जा सकता है। तत्पश्चात् गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों को परिचिह्नित किया जाना चाहिए। उनकी भी तुलनीय मामलों के पूल के साथ तुलना की जानी चाहिए। यह सुनिश्चित करेगा कि न्यायालय समान रूप से प्रस्तुत मामलों पर एक साथ विचार करता है और यह अभ्यास न्यायालय को यह जानकारी देगा कि कैसे समरूप मामले पर पहले कार्रवाई की गई है। न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यह अभ्यास दंड देने में अत्याधिकता को, यदि कोई हो, इंगित कर सकता है और साथ ही कतिपय सीमा तक मनमानेपन को कम कर सकता है। उसने यह भी सलाह दी कि उसके द्वारा प्रस्तावित प्रयोग निश्चित रूप से किया जाना चाहिए, यदि दंड देने वाला न्यायालय सिद्धदोषी व्यक्ति पर मृत्युदंड अधिरोपित करने के विकल्प का प्रयोग करता है। महत्वपूर्ण रूप से न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि 'सैद्धांतिक दंड देना' सुनिश्चित करने के लिए तर्क सबसे अधिक महत्वपूर्ण है।[358]

4.8.6 जैसा कि पहले वर्णित किया जा चुका कि आनुपातिकता का मुख्य केंद्र बिन्दु परिनिन्दा है। दंड को संसूचित किए जाने से संबंधित पहलु भी एक महत्वपूर्ण विचारण है और परिनिन्दा तथा संसूचना संबंधी पहलुओं की आजीवन कारावास के माध्यम से, अपराधी पर मृत्युदंड अधिरोपित करने के बजाय, अधिक अच्छे ढंग से पूर्ति की जा सकती है। कैद अपराधी को पछतावा प्रकट करने का साधन प्रदान करती है और उसके कार्यों के लिए समाज के अननुमोदन को संसूचित करती है। दूसरी ओर मृत्युदंड दंड के संसूचनात्मक

---

[353] देखिए शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713 ; लेहना बनाम हरियाणा राज्य, (2002) 3 एससीसी 76 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561।

[354] बृजेंद्र सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 289, 305 (रामनरेश और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2012) 4 एससीसी257, 287 के मामले में)।

[355] अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 667, पैरा 15 पर।

[356] विक्रम सिंह बनाम भारत संघ, 2013(एससी) की दांडिक अपील सं0 824, तारीख 21 अगस्त, 2015, पैरा 49 पर।

[357] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 131 पर।

[358] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

पहलु के महत्व को कम करता है, क्योंकि अपराधी का जीवन समाप्त कर दिया जाता है। अत: इस दृष्टिकोण से आजीवन कारावास आनुपातिकता के उद्देश्य की समुचित रूप से पूर्ति करता है।

4.8.7 आनुपातिकता का संसूचनात्मक पहलू समाज को यह संसूचना देना है कि अपराधी के कार्य स्वीकार्य योग्य नहीं हैं। इस संदर्भ में 'पाशविकता संबंधी प्रभाव' पर ध्यान देना आवश्यक है।[359] बोबर्स और पीयर्स तर्क देते हैं कि जब किसी राज्य द्वारा वध किया जाता है तो वह इसको न्यायोचित ठहराकर कि वह उसकी निन्दा करना चाहता है, संसूचनात्मक पहलु का महत्व कम कर देता है। वह सामान्य व्यक्ति की निगाहों में जीवन के महत्व को कम करता है, जो आगे अपराधियों का सशक्त बनाता है।[360]

छ. सुधार

4.9.1 सुधार का सिद्धांत सभी अपराधियों को शांतिपूर्ण, उत्पादक और समर्थ समाज के नागरिकों के रूप में परिवर्तित कर देना चाहता है। सुधार यह उपधारणा करता है कि अपराधी परिवर्तन के योग्य हैं, और यदि एक बार अपराध किए जाने के लिए कारण दूर कर दिए जाते हैं तो वह साधारण और पूर्ण जीवन बिता सकता है।[361]

4.9.2 जबकि यह स्पष्ट है कि जब किसी व्यक्ति को मृत्यु का दंड दिया जाता है तो सुधार का आदर्श दंड दिए जाने में अपनी पूर्विकता स्पष्ट रूप से खो देता है, सुधार पर विचार-विमर्श बहुधा मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन का (और वस्तुत:, होना अपेक्षित है) भाग रहा है। यह इस कारण है कि सुधार हमारी आपराधिक न्यायप्रणाली की केंद्रीय आदर्शमूलक प्रतिबद्धता रहा है और केवल उन अपराधियों को, जिन्हें सुधार से परे अधिनिर्णीत किया गया है और जो, अभियोजन द्वारा दिए गए निश्चायक साक्ष्य के माध्यम से ऐसे साबित हुए हैं, कभी भी मृत्यु से दंडादिष्ट किया जा सकता है।

(i) सुधार के संबंध में उच्चतम न्यायालय

4.9.3 उच्चतम न्यायालय द्वारा मृत्युदंडादेश के न्यायनिर्णयन में विचार किए जाने वाले सिद्धांत के रूप में बचन सिंह में वकालत किए जाने के पूर्व भी यह दंड संबंधी नीति न्यायालय द्वारा मृत्युदंड और गैर मृत्युदंड के दोनों संदर्भों में लगातार व्यक्त की गई है। एडिगा अनम्मा बनाम आंध्र प्रदेश राज्य[362] में न्यायालय ने दंड देने के प्रक्रम पर 'सामाजिक और व्यक्तिगत प्रकृति के तथ्यों' के संबंध में साक्ष्य देने की आवश्यकता पर जोर दिया। यह इस बात को सुनिश्चित करने के लिए था कि सुधार को उतना ही महत्व दिया गया था जितना भयोपरतता को।[363]

---

[359] विलियम जे. वोवर्स एंड ग्लेन एल. पियेरसी, भयोपरतता या बर्बरता : फांसी का क्या प्रभाव है? 26 क्रिम एंड डेलिंग 453 (1980) ; जोएना शेफर्ड, कैपिटल पनिशमेंट्स डिफरिंग इम्पैक्ट्स एमंग स्टेट्स, 104 मिशिगन ला रिव्यू (2005)।

[360] विलियम जे. वोवर्स एंड ग्लेन एल. पियेरसी, भयोपरतता या बर्बरता : फांसी का क्या प्रभाव है? 26 क्रिम एंड डेलिंग 453 (1980) ; यह भी देखिए : एच.एल.ए. हर्ट : दंड और उत्तरदायित्व, 88 (2008)

[361] एन्ड्रियु एशवर्थ, मृत्युदंडादेश और आपराधिक न्याय, 82 (चौथा संस्करण 2005)।

[362] (1974) 4 एससीसी 443।

[363] देखिए एडिगा अनम्मा, (1974) 4 एससीसी 443, पैरा 14 पर।

4.9.4 समान रूप से सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन[364] में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि पुनर्वास और सुधार हमारी आपराधिक न्याय प्रणाली में दंड देने की नीति का महत्वपूर्ण भाग हैं और वर्तमान कारावास की प्रथाओं को उन संवैधानिक संननियमों के साथ, जो कैदियों के पुनर्वास की मांग करते हैं, समरूप बनाने का प्रयास किया। उसने कहा कि '(क) पुनर्वास का प्रयोजन अपराधी के प्रत्येक दंडादेश में संननिहित है और होना चाहिए जब तक कि दंड देने वाले न्यायालय द्वारा अन्यथा आदेश न दिया गया हो।'[365]

4.9.5 न्यायालय ने बत्रा में भी मोहम्मद गयासुद्दीन बनाम आंध्र प्रदेश राज्य[366] को निर्दिष्ट किया, जहां उसने अभिनिर्धारित किया था कि आधुनिक समुदाय का अपराधी के सुधार में प्राथमिक दांव है और ध्यान 'आतंक संबंधी' दृष्टिकोण में होने के बजाय आरोग्य संबंधी में होना चाहिए।[367] न्यायालय ने कहा : 'संपूर्ण मनुष्य स्वास्थप्रद मनुष्य है और प्रत्येक व्यक्ति जन्म से अच्छा होता है। आपराधिकता एक साध्य विचलन है.....हमारे कारागार सुधार करने वाले घर होने चाहिए न कि आत्मा को पीड़ा देने वाले क्रूर लोहा..... हम यह लगातार संप्रेक्षण देश में स्वतंत्रता की अनिवार्यता को लाने के लिए कर रहे हैं.....यह कि राज्य द्वारा उसके वंचन को केवल ऐसी योजना द्वारा विधिमान्य किया जाए, जो दंडों को उसके जन्मसिद्ध अधिकार के अधिक योग्य बनाने के लिए हो।[368] (जोर दिया गया)

4.9.6 सुधार संबंधी आदर्श उच्चतम न्यायालय द्वारा अन्य मामलों में भी व्यक्त किया गया है।[369] इस पृष्ठभूमि में बचन सिंह का मामला आया, जिसने इस सुधारात्मक पहलू को, 'विरले मामलों में से विरलतम' परीक्षण को विकसित करते हुए मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन का भाग बनाया।

4.9.7 बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य[370] में, उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पुनर्वास प्रकट दंड देने वाला उद्देश्य है और उसकी विशेष रूप से मृत्युदंड के संदर्भ में कभी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। उसने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड 'विरले मामलों में से विरलतम' में के सिवाय, जब आनुकलपिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो,[371] अधिरोपित नहीं किया जाना चाहिए (इस पर जोर दिया गया)

4.9.8 उच्चतम न्यायालय ने पुन: हाल में मृत्युदंड के मामलों में 'सुधार से परे' साक्ष्य के प्रस्तुत किए जाने की आवश्यकता पर जोर दिया है।[372] न्यायालय ने 'विरले मामलों में से विरलतम' के परीक्षण पर, जैसा वह बचन सिंह में अभिकथित किया गया है, परीक्षण को दो भागों में विभाजित कर दिया; प्रथम भाग यह विनिश्चित करने वाला है कि क्या मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' प्रवर्ग से संबंधित होना चाहिए ; और दूसरा भाग यह विनिश्चित करने वाला है कि क्या आजीवन कारावास का आनुकलपिक विकल्प उस मामले के तथ्यों में पर्याप्त नहीं होगा। दूसरे भाग पर टिप्पण करते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया : (आजीवन कारावास) पूर्णतया निरर्थक है केवल तब, जब सुधार के लिए दंड देने वाले उद्देश्य को प्राप्त न करने वाला कहा जाए। अत: 'विरले मामलों में से विरलतम'

---

[364] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, (1978) 4 एससीसी 494।

[365] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, (1978) 4 एससीसी 494, पैरा 230 पर।

[366] (1977) 3 एससीसी 287।

[367] देखिए गयासुद्दीन, (1977) 3 एससीसी 287, पैरा 8 पर।

[368] देखिए गयासुद्दीन, (1977) 3 एससीसी 287, पैरा 24-25 पर।

[369] बिशनु देव शाव बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1979) 3 एससीसी 714 ; मेरु राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107।

[370] (1980) 2 एससीसी 107।

[371] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 284, पैरा 209 पर।

[372] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

के सिद्धांत के दूसरे अपवाद की प्रतिपूर्ति करने के लिए न्यायालय को इस बारे में स्पष्ट साक्ष्य देना होगा कि सिद्धदोषी किसी भी प्रकार की सुधारात्मक और पुनर्वास स्कीम के लिए क्यों नहीं उपयुक्त है।[373] (इस पर जोर दिया गया)

4.9.9 इस प्रकार किसी मामले को 'विरले मामलों में से विरलतम' अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त मृत्युदंड अधिरोपित करने का समान रूप से एक महत्वपूर्ण भाग यह है कि क्या अपराधी सुधार के योग्य है या नहीं। यह अवधारण करने में कि कोई अपराधी मृत्यु से दंडादिष्ट किया जाना चाहिए, विभिन्न परिस्थितियों को निर्धारित करने की आवश्यकता होती है। यह देखना महत्वपूर्ण है कि ये परिस्थितियां अपराधी और अपराध, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, दोनों की है।[374]

4.9.10 बचन सिंह में न्यायालय के आदेश की, जो न्यायालय से यह निर्धारण करने की अपेक्षा करता है कि क्या अपराधी सुधार किए जाने के योग्य है और क्या आजीवन कारावास निश्चित रूप से प्रतिबंधित है, बहुधा मृत्युदंड का न्यायनिर्णयन करने में उपेक्षा की गई है।[375] अपराधी के बारे में 'सुधार से परे' होने का साक्ष्य कभी-कभी दिया गया है और उस पर विचार किया गया है।[376]

4.9.11 कुछ आलोचकों ने मत व्यक्त किया है कि यदि सुधार दंड देने का सिद्धांत है, और 'सुधार से परे' साक्ष्य पर विचार किया जाना है तो यह निष्कर्ष निकालना कभी संभव नहीं है कि कोई अपराधी सुधार से परे है क्योंकि सदैव अपराध को कुछ कम करने वाली परिस्थितियां पायी जा सकती हैं। न्यायमूर्ति भगवती के शब्दों में :

> निश्चित रूप से यह भविष्य कथन करने का या किसी नैतिकता की किसी श्रेणी की निश्चितता के साथ यह जानने का कि हत्यारे का सुधार नहीं किया जाएगा या वह सुधार किए जाने के अयोग्य है, कोई मार्ग नहीं है। वह सब जो हम जानते हैं यह है कि अत्यधिक दोषयुक्त मामलों में भी सफलताएं मिली हैं .....बहुत सारे उदाहरण यह स्पष्ट रूप से दर्शित करते हैं कि किसी निश्चित मात्रा के साथ समयपूर्व यह जानना संभव नहीं है कि कोई हत्यारा सुधार से परे है।[377] (इस पर जोर दिया गया है)

ज. अन्य महत्वपूर्ण विषय

(i) जनता की राय

4.10.1 मृत्युदंड बनाए रखने के लिए सरकार द्वारा बहुधा दिया गया एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि जनता की राय उसकी मांग करती है। विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट में भी मृत्युदंड के संदर्भ में जनता की राय को एक महत्वपूर्ण तथ्य माना गया था।[378]

4.10.2 कोई तर्क दे सकता है कि जनता की राय वास्तव में ऐसा तत्व है जिस पर, ऐसे महत्वपूर्ण विनिश्चय करते समय ,जिनसे जनता पर स्वच्छंद प्रभाव पड़ता है, विचार किया जाना चाहिए। तथापि सरकार के लिए प्रत्येक विषय पर जनता की राय को मानना आवश्यक

---

[373] संतोष कुमार सतीशभूषण बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

[374] राजेंद्र प्रसाद बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, यह भी देखिए बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 284, संतोष बरियार, (2009) 6 एससीसी 498 , एडिगा अनम्मा,
1974) 4 एससीसी 443 ।

[375] देखिए मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन में मनमानेपन पर अध्याय 5 में विचार-विमर्श।

[376] [376] देखिए अध्याय 5 में विचार-विमर्श, यह भी देखिए अपर्णा चन्द्र, एक सनकी कैद। दिसंबर, 16 के सामूहिक बलात्संग मामले में विचारण न्यायालय के दंडादेश पर टिप्पण।

[377] मधु मेहता बनाम भारत संघ (1984) 4 एससीसी 62।

[378] 35 वीं रिपोर्ट ने अनुभव किया कि यदि विधि जनता की राय के विरुद्ध गई तो यह संभव है कि जनता अपराधियों की स्वयं हत्या करके या उन्हें घायल करके बदले के कार्यों में संलिप्त हो जाएगी। (देखिए भारत का विधि आयोग, 35वीं रिपोर्ट, 1967, विधि मंत्रालय, भारत सरकार, पैरा 265 (22) पर।

नहीं है। वस्तुत: सरकार का यह कर्तव्य है कि वह जनता की राय उन विकल्पों की दशा में ले जाए, जो ऋजुता, गरिमा और न्याय का समर्थन करते हैं, जो संवैधानिक रूप से प्रतिष्ठापित आदर्श हैं। यहां पूर्व राष्ट्र संघ मानव अधिकार संबंधी उच्चायुक्त, नवीपिल्लै को उद्धत करना उपयोगी होगा, जो कहते हैं :

> मानव उन्नति स्थिर नहीं रहती है। मृत्युदंड के लिए आज प्रसिद्ध समर्थन का यह अर्थ नहीं है कि वह कल भी रहेगा। ऐसे अविवादास्पद ऐतिहासिक उदाहरण हैं जहां उन विधियों, नीतियों और पद्धतियों को, जो मानव अधिकार मानकों से असंगत थीं, अधिकांश जनसंख्या का समर्थन प्राप्त था। किन्तु वे गलत साबित हुई और आकस्मिक रूप से उन्हें समाप्त या वर्जित कर दिया गया। नेताओं को वह मार्ग दर्शित करना चाहिए कि मृत्युदंड मानव गरिमा के साथ कितने गहरे रूप से असंगत है।[379] (इस पर जोर दिया गया)

4.10.3 ऐसे बहुत से उदाहरण है जहां विश्व के चारो ओर सरकारों ने, एशिया और पश्चिम, दोनों में, वर्तमान जनता की राय के विरुद्ध मृत्युदंड को समाप्त कर दिया है।[380] वर्तमान मृत्युदंड समाप्त करने वाले बहुत कम देशों ने मृत्युदंड को समाप्त किया होता यदि उन्होंने इस विषय पर जनता की राय बदलने की प्रतीक्षा की होती।[381] इसके अतिरिक्त जब एक बार जब मृत्युदंड समाप्त कर दिया गया, तो विधिक विरचना के कारण इस विषय पर जनता की राय आमूल रूप से परिवर्तित कर दिया और अब मृत्युदंड अविचारणीय समझा जाता है।[382] सामाजिक मुद्दों को शासित करने वाली विधियों का भारतीय अनुभव जैसे सती, दहेज प्रतिषेध, छुआछूत का प्रतिषेध और बालक विवाह इस तथ्य का प्रमाण हैं कि सरकार के पास गहरे रूप से घुसे हुए सांस्कृतिक संननियमों के विरुद्ध जनता की राय का मार्गदर्शन करने की शक्ति है और उसकी ऐसा करने की, जब मानव गरिमा और समानता से संबंधित विषयों का सामना हो, बाध्यता भी है।

झ. सुधारात्मक न्याय की दिशा में गतिविधि

4.11.1 पीड़ितों के लिए न्याय के अंततोगत्वा उपाय के रूप में मृत्युदंड पर ध्यान केंद्रित करने में न्याय के सुधारात्मक और पुनर्वासात्मक पहलुओं से ध्यान हट जाता है। मृत्युदंड पर भरोसे से बीमार आपराधिक न्याय प्रणाली की अन्य समस्याओं जैसे कम अन्वेषण, अपराध निवारण और अपराध के पीड़ितों के अधिकार से ध्यान हट जाता है।

4.11.2 20 वीं शताब्दी के बाद में एक बड़ा विकास अपराध के पीड़ितों के अधिकारों और आवश्यकताओं पर ध्यान केंद्रित होना था। आपराधिक न्याय के सुधारात्मक सिद्धांत भी कुछ समय के बाद प्रकट हुए।[383] एशवर्थ ने जैसा टिप्पण किया है 'मूल प्रतिपादना यह है कि पीड़ितों के लिए न्याय आपराधिक न्याय प्रणाली और दंड देने का केंदीय उद्देश्य हो जाता है।'[384] एशवर्थ ने आगे कहा कि' सुधारात्मक न्याय, आपराधिक व्यवहार को उत्तर देने के संरचनात्मक और सामाजिक रूप से सम्मिलित मार्ग के रूप में पर्याप्त आकर्षण रखता है।'[385]

---

[379] मृत्युदंड से दूर जाना : दक्षिण पूर्व एशिया से पाठ, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग 6 (2014)।

[380] मृत्युदंड से दूर जाना : दक्षिण पूर्व एशिया से पाठ, संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार आयोग 9 (2014)।

[381] जोन यार्की, मृत्युदंड के विरुद्ध 262 (पहला संस्करण 2008)।

[382] उदाहरण, फ्रांस और यूके ; यह भी देखिए, 10 जुलाई, 2015 के विधि आयोग राष्ट्रीय परामर्श पर रोजर हुड का भाषण।

[383] एन्ड्रियु एशवर्थ : दंडादेश देना और आपराधिक न्याय 88 (2005)।

[384] एन्ड्रियु एशवर्थ : दंडादेश देना और आपराधिक न्याय 88 (2005)।

[385] एन्ड्रियु एशवर्थ : दंडादेश देना और आपराधिक न्याय 89 (2005)।

4.11.3 अधिक अच्छे और अधिक प्रभावी अन्वेषण तथा अभियोजन के लिए पुलिस सुधारों की आवश्यकता सार्वभौमिक रूप से कुछ समय से अब अनुभव की जा रही है और उसके बारे में पूर्विकता के आधार पर उपाय किए जाने की आवश्यकता है। उच्चतम न्यायालय ने प्रकाश सिंह बनाम भारत संघ[386] में यह अभिनिर्धारित किया :

> निम्नलिखित का ध्यान रखते हुए (i) समस्याओं की गंभीरता ; (ii) विधि के शासन का परिरक्षण करने और उसे सुदृढ़ बनाने के लिए अत्यावश्यकता ; (iii) इस याचिका का भी पिछले 10 वर्षों से लंबित होना ; (iv) यह तथ्य कि विभिन्न आयोगों और समितियों ने देश में पुलिस व्यवस्था में सुधार प्रारंभ करने के लिए समान आधारों पर सिफारिशें की हैं ; और (v) इस बारे में पूर्ण अनिश्चितता की कि पुलिस सुधारों को कब प्रारंभ किया जाएगा, हम समझते हैं कि अब और प्रतीक्षा नहीं की जा सकती है और तुरंत अनुपालन के लिए समचित निदेश जारी करने के लिए स्थिति आ गई है जिससे कि उन्हें ऐसे समय तक के लिए क्रियाशील किया जा सके जब तक कि नया आदर्श पुलिस अधिनियम केंद्रीय सरकार और/या राज्य सरकारें तैयार करती हैं और अपेक्षित विधान पारित कराती हैं। आगे इस पर भी ध्यान दिया जा सकता है कि देश में आपराधिक न्याय प्रणाली की गुणवत्ता, बड़ी सीमा तक, पुलिस बल के कार्यकरण पर निर्भर करती है। इस प्रकार बृहत् सार्वजनिक हित को ध्यान में रखते हुए यह पूर्णरूप से आवश्यक है कि अपेक्षित निदेश जारी किए जाएं। इस न्यायालय ने लगभग 10 वर्षों पूर्व, विनीत नारायण बनाम भारतसंघ [(1998) 1 एससीसी 226 : 1998 एससीसी (क्रीमी) 307 में अपेक्षित क्रियाविधि स्थापित करने के लिए अत्यावश्यकता अनुभव की थी और केंद्रीय सरकार को राज्य सरकारों के साथ पुलिस सुधारों के विषय पर कार्य करने तथा न केवल राज्य पुलिस के प्रमुख के किन्तु पुलिस अधीक्षक और उसकी ऊपर के रैंक के सभी पुलिस अधिकारियों के चयन/नियुक्त, अवधि, स्थानांतरण और तैनाती के लिए एक क्रियाविधि स्थापित करना सुनिश्चित करने के लिए भी निदेश दिया था। न्यायालय ने अपना दुख प्रकट किया था कि कुछ राज्यों में पुलिस अधीक्षक की अवधि कुछ महीनों की होती है और स्थानांतरण सनकी कारणों से किए जाते हैं, जिससे कि पुलिस बल पर न केवल निराशावादी प्रभाव पड़ता है बल्कि जो परिकलपित संवैधानिक यांत्रिकी के भी प्रतिकूल है। यह देखा गया था कि पुलिस बल में निराशा फैलाने के अतिरिक्त इससे कार्मिकों को राजनैतिक बनाने का भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और इसलिए यह आवश्यक है कि केंद्रीय सरकार द्वारा तुरंत उपाय किए जाएं।[387]

4.11.4 प्रकाश सिंह में उच्चतम न्यायालय के निदेशों को कार्यानवित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए।

4.11.5 पीड़ितों और साक्षियों की आवाजें बहुधा शक्तिशाली अपराधी व्यक्तियों द्वारा दी गई धमकियों और अपनायी गई भयोत्पादक तकनीकों द्वारा बंद करा दी जाती हैं। अत: यह आवश्यक है कि कोई साक्षियों के संरक्षण की स्कीम भी स्थापित की जाए।[388]

4.11.6 यह आवश्यक है कि अपराध के पीड़ितों को पुनर्वासित करने के लिए प्रभावी पीड़ित प्रतिकर स्कीमें बनाएं। साथ ही यह भी महत्वपूर्ण है कि न्यायालय उचित मामलों में पीड़ितों को समुचित प्रतिकर देने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के अधीन उन्हें दी गई शक्ति का प्रयोग करें।

---

[386] (2006) 8 एससीसी 1।

[387] (2006) 8 एससीसी 1, पैरा 26 पर।

[388] साक्षी संरक्षण स्कीमों का दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक रूप से नीलम कटारा बनाम भारत संघ आईएलआर (2003) 2 दिल्ली, 377 में प्रस्ताव किया गया है, इस संबंध में दिल्ली सरकार द्वारा एक शुरुआत की गई है, जिससे जुलाई, 2015 में एक साक्षी संरक्षण स्कीम को अधिसूचित किया गया।

4.11.7 आपराधरिक कारणों के लिए प्रतिकर का दंड प्रक्रिया संहिता 1973 के (दंप्र.सं.) की धारा 357 और धारा 357क में उपबंध किया गया है। धारा 357 (1) के अधीन जब किसी सिद्धदोषी पर दंड के भागरूप में कोई जुर्माना अधिरोपित किया जाता है, तो न्यायाधीश यह आदेश दे सकता है कि संपूर्ण जुर्माने की रकम या उसके भाग का पीड़ित (जिसके अंतर्गत घातक दुर्घटना अधिनियम, 1855 के अधीन उसके हिताधिकारी भी हैं) को प्रतिकर के रूप में संदाय किया जाए। इस उपबंध के अधीन प्रतिकर की रकम सिद्धदोषी पर अधिरोपित जुर्माने की रकम से अधिक नहीं हो सकती है।

4.11.8 धारा 357(3) के अधीन दंड के भागरूप में कोई जुर्माना अधिरोपित नहीं किया जाता है, तो न्यायाधीश सिद्धदोषी को, प्रतिकर के रूप में पीड़ित को ऐसी रकम का संदाय करने का आदेश दे सकता है, जो न्यायाधीश विनिर्दिष्ट करे। जबकि प्रतिकर की रकम के, जो इस उपबंध के अधीन दी जा सकती है, ऊपर कोई सीमा नहीं है, उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 357(3) के अधीन प्रतिकर की रकम नियत करने में न्यायालय को प्रत्येक मामलें के तथ्यों और परिस्थितियों, अपराध की प्रकृति, दावे की न्यायोचितता और अपराधी की संदाय करने की सामर्थ्य को ध्यान में रखना चाहिए।[389]

4.11.9 इस पर ध्यान देना आवश्यक है कि धारा 357 के खंड (1) और (3) के अधीन प्रतिकर केवल दोषकर्ता से और दोषकर्ता का दोष स्थापित हो जाने के पश्चात् ही, वसूलनीय है।

4.11.10 ऐसे मामलों के संबंध में कार्रवाही करने में, जहां धारा 357 के अधीन प्रतिकर की रकम पीड़ित को पुनर्वासित करने के लिए यथोचित नहीं है,[390] या जहां किसी दोषकर्ता की पहचान नहीं की गई है, पता नहीं लगाया गया है या उसे सिद्धदोषी नहीं ठहराया गया है, वहां धारा 357क यह उपबंध करती है कि राज्य अपराध के पीड़ितों के प्रतिकर और पुनर्वास के लिए एक निधि का सृजन करेगा। इस धारा के अधीन केंद्र से परामर्श करके राज्य सरकारों द्वारा एक स्कीम बनाए जाने की आवश्यकता है और राज्य को उस स्कीम के लिए निधि आबंटित करनी होगी। कई राज्य स्कीमें 2008 में इसके अधिनियमन के पश्चात् ही इस उपबंध के अधीन स्थापित की गई हैं।[391]

4.11.11 इस संदर्भ में उच्चतम न्यायालय ने सुरेश बनाम हरियाणा राज्य[392], में पीड़ित के प्रतिकर से संबंधित निदेश जारी किए थे और यह नियम बनाया था कि :

> हमें यह सूचित किया गया है कि 29 में से 25 राज्य सरकारों ने पीड़ित प्रतिकर स्कीमों को अधिसूचित किया है। स्कीमें प्रतिकर की अधिकतम सीमा को विनिर्दिष्ट करती हैं और अधिकतम सीमा के अधीन रहते हुए, मात्रा को विनिश्चित करने का विवेकाधिकार राज्य/जिला विधिक प्राधिकारियों पर छोड़ दिया गया है। इस ओर हमारा ध्यान दिलाया गया है कि यद्यपि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357क के अधिनियमन के पश्चात् से 5 वर्ष व्यतीत हो गए हैं, प्रतिकर का दिया जाना नियम नहीं बना है और अंतरिम प्रतिकर, जो कि बहुत महत्वपूर्ण है, न्यायालयों द्वारा नहीं दिया जा रहा है। यह भी बताया गया है कि प्रतिकर की ऊपरी सीमा, जो कुछ राज्यों द्वारा नियत की गई है, मनमाने रूप से कम है और विधान के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए नहीं बनायी गई है।

---

[389] अंकुश शिवाजी गायकवाड बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2013 एससी 2454। विकास यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2015) 218 डीएलटी(सीएन) 1 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने पीड़ित प्रतिकर के संबंध में विधि को संक्षेपित किया और इस संबंध में मार्गनिर्देशक तत्वों का उपबंध किया।

[390] दंड संहिता प्रक्रिया के प्रयोजनों के लिए पीड़ित की परिभाषा के लिए देखिए धारा 2(डब्ल्यूए) दंड प्रक्रिया संहिता।

[391] देखिए अर्थात् दिल्ली पीड़ित प्रतिकर स्कीम, 2011, उड़ीसा पीड़ित प्रतिकर स्कीम, 2012, तमिलनाडु पीड़ित प्रतिकर स्कीम, 2013।

[392] (2015) 2 एससीसी 227।

हमारा ऐसा विचार है कि यह न्यायालयों का कर्तव्य है कि, किसी आपराधिक अपराध का संज्ञान लेते हुए, वे यह अभिनिश्चित करें कि क्या अपराध का करना प्रदर्शित करने वाली मूर्त सामग्री है, क्या पीड़ित पहचाने जाने योग्य है और क्या अपराध के पीड़ित को तुरंत वित्तीय अनुतोष देने की आवश्यकता है। किसी आवेदन पर या स्वप्रेरणा से समाधान हो जाने पर, न्यायालय को अंतिम प्रतिकर के पश्चातवर्ती अवधारित किए जाने के अधीन रहते हुए, अंतिम प्रतिकर को देने के लिए निदेश देना चाहिए ऐसा कर्तव्य प्रत्येक आपराधिक मामले के प्रत्येक प्रक्रम पर, जहां प्रतिकर दिया जाना चाहिए और नहीं दिया गया है, पीड़ित द्वारा दिए गए आवेदन का ध्यान रखे बिना, बना रहता है। अंतिम सुनवाई के प्रक्रम पर न्यायालय के भाग पर यह बाध्यकारी है कि वह उपबंध की ओर ध्यान दे और यह निष्कर्ष अभिलिखित करे कि क्या प्रतिकर की मंजूरी के लिए कोई मामला बनाया गया है और यदि ऐसा है तो कौन और कितने प्रतिकर के लिए हकदार है। ऐसे प्रतिकर का अधिनिर्णय अंतरिम हो सकता है। अपराध की गंभीरता और पीड़ित की आवश्यकता कुछ ऐसे मार्गनिर्दशक कारक हैं जिन्हें, ऐसे अन्य कारकों से पृथक, जो किसी व्यक्तिगत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में सुसंगत पाए जाएं, ध्यान में रखा जाना चाहिए।

हमारा यह भी विचार है कि प्रतिकर के पैमाने में ऊपर की ओर पुनरीक्षण किए जाने की आवश्यकता है और ऐसे विचारण के लंबित रहत हुए केरल राज्य द्वारा अपनी स्कीम में अधिसूचित किया गया पैमाना, जब तक कि किसी अन्य राज्य या संघ राज्यक्षेत्र द्वारा अधिनिर्णीत किया गया पैमाना उच्चतर न हो, अपनाया जाए। आंध्र प्रदेश, मध्यप्रदेश, मेघालय और तेलंगाना राज्यों को इस आदेश की एक प्रति की प्राप्ति से एक मास के भीतर अपनी स्कीमें अधिसूचित करने का निदेश दिया जाता है।[393]

4.11.12 तदनुसार, आयोग की यह राय है कि पीड़ित प्रतिकर स्कीम को, जिसका उच्चतम न्यायालय द्वारा सुरेश में सुझाव दिया गया है, कार्यान्वित किया जाए।

अध्याय 5

मृत्यु से दंडनीय अपराधों में दंड देना

क. बचन सिंह विरचना : मार्गनिर्देशित विवेकाधिकार और व्यक्ति विशेष पर आधारित दंड देना

5.1.1 क्या बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य[394] ('बचन सिंह') में न्यायालय को मृत्युदंड की निम्नलिखित चुनौतियों को संबोधित करना पड़ा था :

(1) भारतीय दंड संहिता की धारा 302 में हत्या के अपराध के लिए उपबंधित मृत्युदंड असंवैधानिक है।

(2) यदि पूर्वगामी प्रश्न का उत्तर नकारात्मक हो, तो क्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का अधिनियम 2) में उपबंधित दंड देने की प्रक्रिया इस आधार पर असंवैधानिक है कि वह न्यायालय में मार्गदर्शन रहित और बाधा रहित विवेकाधिकार को विनिहित करती है और भारतीय दंड संहिता के अधीन मृत्यु से या अनुकल्पत: आजीवन कारावास से दंडनीय हत्या का अथवा किसी अन्य मृत्यु से दंडनीय किसी अपराध का दोषी पाए गए किसी व्यक्ति पर मनमाने ढंग से या सनकीपन से किसी मृत्युदंडादेश को अधिरोपित किए जाने की अनुज्ञा देती है।[395]

---

[393] (2015) 2 एससीसी 227, पैरा 15-17।

[394] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684।

[395] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 15 पर।

5.1.2 न्यायालय ने पहले प्रति विरोध को अस्वीकार कर दिया और इसके बजाय उसने पाया कि मृत्युदंड अनुच्छेद 19 और अनुच्छेद 21 में युक्तता की अपेक्षा को पूरा करता है, प्राथमिक रूप से, क्योंकि व्यक्तियों के एक बड़े निकाय की यह राय है कि मृत्युदंड एक तार्किक दंड है। दूसरे के बारे में उसने उस चिंता के बारे में कार्रवाई की कि दंड प्रक्रिया संहिता न्यायालय को यह विनिश्चित करने में कि किसी प्रस्तुत मामले में मृत्युदंड दिया जाए या नहीं, मार्गदर्शित करने के लिए विधायी नीति से और साथ ही न्यायिक उदाहरणों से सिद्धांत लेकर 'न्यायालय में मार्गदर्शन रहित और बाधा रहित विवेकाधिकार निहित करती है और मृत्युदंड को मनमाने ढंग से या सनकीपन से अधिरोपित करने के लिए'[396] अनुज्ञात करती है।

5.1.3 मृत्युदंड को मनमानेपन के दुर्गुण से बचाने के लिए न्यायालय ने अत्यधिक और बहुत कम न्यायिक विवेकाधिकार के बीच, जिनमें से दोनों का परिणाम मनमाने और अऋजु दंड में हो सकता है, कठोर मार्ग पर चलना चाहा। एक तरफ, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के लागू किए जाने के लिए कठोर और सीधा फार्मूला या प्रवर्गों को अधिकथित किया जाना 'न तो व्यवहार्य था और न वांछनीय'[397] । कोई भी दो मामले 'क्रमिकत: एक जैसे नहीं होते हैं और उनमें 'अनंत अपूर्वकथनीय और अप्रत्याशित विविधताएं.....और अनगिनत क्रम परिवर्तन तथा सम्मिश्रण' [398],एकल प्रवर्ग के अपराधों तक में भी, होते हैं। एक यांत्रिकी सूत्रीय दृष्टिकोण, जो आपराधिकता की विविधताओं में अंशांकित नहीं किया गया है'[399], एकल किस्म के या प्रवर्ग के अपराधों के लिए भी, प्रकृति में न्यायिक नहीं रह जाएगा। इसके बजाय ऐसा मानकीकरण 'अंधी एकरूपता की बेदी पर न्याय का बलिदान' कर देगा[400] और उसकी समाप्ति 'बलपूर्वक समता स्थापित करने वाली क्रूरता में हो सकती है'।[401]

5.1.4 इसी समय न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विधायी नीति ने निदर्शित किया है कि निम्नलिखित सिद्धांतों को हत्या के लिए समुचित मृत्युदंडादेश का अवधारण के लिए न्यायिक विवेकाधिकार का मार्गदर्शन करना चाहिए :

1. हत्या के अपराध के लिए, आजीवन कारावास नियम हैं और मृत्युदंडादेश एक अपवाद।
2. यह अपवादात्मक दंड किसी मामले में गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों को, 'अपराध की परिस्थितियों और साथ ही 'अपराधी की परिस्थितियों' को ध्यान में रखते हुए, 'अत्यधिक आपराधिकता के केवल गंभीरतम मामलों में अधिरोपित किया जा सकता है।
3. दंड का मनमाना होने से निवारण करने के लिए न्यायालय ने इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों का अवधारण 'सुमान्यता प्राप्त सिद्धांतों पर.....जिन्हें ऐसे न्यायिक विनिश्चयों द्वारा आकार दिया गया हो, जो इस बात का उदाहरण देते हों कि किसे उन मामलों में गुरुतरकारी या कम करने वाली परिस्थितियां माना गया था',[402] आधारित होना चाहिए। इस प्रकार न्यायालय ने सिद्धांतपूर्ण दंड देने की प्रक्रिया को विहित किया और अभिनिर्धारित किया कि गुरुतरकारी और कम करने वाले कारकों का अवधारण अवधारित मानकों पर, जो न्यायिकपूर्ण निर्णयों की विकासशील प्रक्रिया के माध्यम से सृजित किए गए हों, आधारित होगा।
4. केवल तब, जब गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों के विश्लेषण ने, जैसा ऊपर निदर्शित किया गया है, मृत्यु के लिए 'अपवादात्मक कारणों' का उपबंध किया हो, क्या मृत्युदंड न्यायोचित होगा, क्योंकि '(क) मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और स्थायी चिंता, विधि के माध्यम से जीवन लेने का विरोध करने का अधिकार

---

[396] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 15 पर।
[397] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 195 पर।
[398] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 172 पर।
[399] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 173 पर।
[400] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 173 पर।
[401] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 173 पर।
[402] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 165 पर।

मांगती है। ऐसा विरले मामलों में से विरलतम में के सिवाय, जब आनुकलपिक विकल्प निशचित रूप से प्रतिबंधित हो, नहीं किया जाना चाहिए।'[403]

5.1.5 अत: न्यायालय के अनुसार ऊपर दर्शित किए गए सिद्धांतों में हत्या के लिए दंडादेश देने में न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग के लिए पर्याप्त मार्गनिर्देशन दिया गया है और मृत्युदंड को मनमानेपन के आरोप से बचा लिया है।

ख. बचन सिंह विरचना का कार्यान्वयन

5.2.1 बचन सिंह में न्यायालय की इस आशावादिता के बावजूद कि इसके मार्गनिर्देशक सिद्धांत मृत्युदंड को मनमानेपन से अधिरोपित किए जाने के खतरे को न्यूनतम करेंगे, यह चिंता कि मृत्युदंड 'मनमानेपन से या सनकीपन से' अधिरोपित किया जाता है[404], भारत में मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र को परेशान कर रही है। पिछली दशाब्दी में ही, आलोक नाथ दत्ता बनाम पशचिम बंगाल राज्य[405] , स्वामी श्रद्धानंद बनाम कर्नाटक राज्य,[406] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य[407] , मोहम्मद फारुख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य[408] , संगीत बनाम हरियाणा राज्य[409], शंकर खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य[410] और अशोक देव वर्मा बनाम त्रिपुरा राज्य[411] जैसे मामलों में, उच्चतम न्यायालय ने अभिस्वीकार किया कि मृत्युदंड का लागू किया जाना विषयगत और मनमाना है और यह कि यद्यपि बचन सिंह में 'सिद्धांतपूर्ण दंड देना' आशयित था, किन्तु अब दंड देना वास्तव में न्यायाधीश-केंद्रित हो गया है।[412] इस प्रकार इस न्यायालय द्वारा 'मृत्युदंड की पुषटि या उसका लघुकरण न्यायपीठ का गठन करने वाले न्यायाधीशों की अभिरुचि पर बहुत कुछ निर्भर करता है'[413]। न्यायालय ने अपने भाग पर इसको 'गंभीर स्वीकृति'[414] मानते हुए संतोष बरियार में स्वीकार किया कि 'इस बारे में असंगतता है कि बचन सिंह को कैसे कार्यानवित किया गया है क्योंकि बचन सिंह में सिद्धांतपूर्ण दंड देने की और न कि न्यायाधीश केंद्रित दंड देने की आज्ञा दी गई थी।'[415]

5.2.2 इस पर टिप्पणी करते हुए कि 'विरले मामलों में से विरलतम' की बचन सिंह वाली अवसीमा को भिन्न-भिन्न रूप में और असंगत रूप से लागू किया गया है'[416] उच्चतम न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि 'मामले प्रति मामले के आधार पर गुरुतरकारी

---

[403] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 209 पर।

[404] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 15 पर।

[405] आलोक नाथ दत्ता बनाम पशचिम बंगाल राज्य, (2007) 12 एससीसी 230।

[406] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767।

[407] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498 ।

[408] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641।

[409] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452।

[410] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546।

[411] अशोक देब्बारामा बनाम त्रिपुरा राज्य, (2014) 4 एससीसी 747 ('मनमानापन, विभेद और असंगतता बहुधा बहुत बड़े दिखायी पड़ते हैं, जब हम दंडादेश देने वाले कुछ न्यायिक निर्णयों का विश्लेषण करते हैं')

[412] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452, पैरा 33 पर।

[413] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767, पैरा 51 पर।

[414] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 54 पर ।

[415] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 54 पर ।

[416] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 109 पर ।

और कम करने वाली परिस्थितियों के तुलनपत्र ने पर्याप्त रूप से इतना अच्छा कार्य नहीं किया है, जिससे कि हमारी मृत्यु से दंड देने वाली प्रणाली से मनमानेपन के दोष को हटाया जा सके।'[417] जहां बचन सिंह में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि न्यायपूर्ण निर्णयों के माध्यम से विकसित सुमान्यताप्राप्त सिद्धांत मृत्यु से दंडनीय अपराध के लिए दंड देने में न्यायालयों का मार्गदर्शन करेंगे, मोहम्मद फारूख में, उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि 'मृत्युदंड पर पूर्व निर्णय' पृथक् निर्वाचनों के वजन के अधीन स्वयं बिखर गए हैं।'[418]

5.2.3 उन मामलों की गणना करते हुए, जहां विभिन्न न्यायपीठें ऐसे मामलों में, जहां समान तथ्य और परिस्थितियां हैं[419], विपरीत रूप से विरोधी परिणामों पर पहुंची हैं, उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु से दंडनीय अपराध में दंड देने में, 'संगतता की कमी'[420] और 'एकरूपता की कमी'[421] को 'न्याय के आपराधिक प्रशासन की प्रणाली का घटिया प्रतिबिंब' बताया है।[422] न्यायालय ने इस बारे में चिंता व्यक्त की है कि 'बचन सिंह के अत्यधिक असमानपूर्ण रूप से लागू किए जाने में मृत्यु से दंडनीय अपराध में दंड देने संबंधी विधि में अनिश्चितता की स्थिति को जन्म दिया है, जो संवैधानिक सम्यक् प्रक्रिया और समानता के सिद्धांत के स्पष्ट रूप से विरुद्ध है।'[423]

5.2.4 बचन सिंह में उच्चतम न्यायालय ने न्यायाधीशों से 'यह विनिश्चय करने में कि मृत्युदंड को सदैव से अधिक सबसे अधिक सावधानी और मानवीय चिंता के साथ अधिरोपित किया जाए या नहीं, दुर्भर कृत्य का निर्वहन करने की अपेक्षा की थी।'[424] समान भावना को, बरियार में प्रतिध्वनित करते हुए न्यायालय ने टिप्पणी की कि 'इस निष्कर्ष को कि मामला विरले प्रवर्ग के विरलतम से संबंधित है या नहीं, न्यायिक संयम और पूर्णत: के उच्चतम मानकों को पूरा करना चाहिए।'[425] तथापि जैसा कि न्यायालय ने समय-समय पर माना है कि भारत के मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र में असंगतताओं की बहुतपरतें विद्यमान हैं, जो मृत्यु से दंडनीय अपराधों का विनिश्चय करने में, दंड देने में संयम रखना कठिन बनाती हैं। अत्यधिक आधारी स्तर पर, मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र, मृत्युदंड के दंड संबंधी प्रयोजनों की विभिन्नतापूर्ण और बहुधा प्रतियोगी समझ को स्वयं प्रदर्शित करता है। चूंकि इस पहलू पर पूर्व अध्याय में विचार कर लिया गया है। अत: इस पर यहां विचार नहीं किया जाएगा।[426]

5.2.5 इसके आगे यह रिपोर्ट भारत में मृत्यु से दंडनीय अपराध के लिए दंड देने की व्यवस्था में मनमानेपन के संबंध में चिंताओं की परीक्षा करेगी, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं विशिष्ट रूप से दर्शाया गया है और जिसकी विद्वानों के हस्तक्षेपों, आनुभविक आंकड़ों और तुलनात्मक जानकारी द्वारा अनुपूर्ति की गई है।

(i) सैद्धांतिक विरचना

---

[417] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 109 पर ।

[418] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 165 पर।

[419] नीचे देखिए।

[420] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767, पैरा 52 पर।

[421] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767, पैरा 52 पर।

[422] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767, पैरा 52 पर।

[423] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 110 पर ।

[424] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 209 पर।

[425] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 61 पर ।

[426] ऊपर अध्याय 4 देखिए।

5.2.6 बचन सिंह में न्यायालय ने व्यक्ति पर आधारित किन्तु सिद्धांतपूर्ण दंड देने के महत्व पर जोर दिया था। न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए कि एकल प्रवर्ग के अपराधों में भी अनन्य अनगिनत क्रम परिवर्तन और सम्मिश्रण है, ऐसे अपराधों के लिए, जिनके लिए मृत्युदंड लागू होगा, प्रवर्गों का सृजन करने से इंकार कर दिया था। इसके बजाय न्यायालय ने न्यायाधीशों से यह अपेक्षा की कि वे दंडादेश का निर्धारण करने में अपराध और साथ ही अपराधी, दोनों की गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों को प्रत्येक व्यक्तिगत मामलें में, ध्यान में रखे। इस बात को मान्यता देते हुए कि अपराध और अपराधी से संबंधित परिस्थितियां बहुधा 'इतनी परस्पर मिली हुई होती हैं कि उनमें से प्रत्येक के साथ पृथक् व्यवहार करना कठिन होता है'[427], न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'अपराध की परिस्थितियों और अपराधी की परिस्थितियों पर दो पृथक् पूर्णरूप से बंद कक्षों के रूप में, विचार करना वांछनीय नहीं है।'[428] तथापि, पश्चातवर्ती मामलों में न्यायालय ने बचन सिंह संबंधी अपेक्षाओं को विभिन्न निर्वाचन दिए हैं और विभिन्न न्यायाधीशों ने बचन सिंह वाली आज्ञा को भिन्न-भिन्न रूपों में समझा है।

क. माछी सिंह

5.2.7 बचन सिंह के तीन वर्षों के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य[429] ('माछी सिंह') में ऐसे पांच वर्गों के मामले सूचीबद्ध किए, जिनके लिए मृत्युदंड उपयुक्त विकल्प था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड वहां अधिरोपित किया जा सकता है, जहां समाज की 'सामूहिक चेतना'[430] को इतना धक्का लगता है 'कि वह न्यायिक शक्ति केंद्र के धारकों से मृत्युदंड देने की अपेक्षा करती है।'[431] न्यायालय के अनुसार 'समुदाय ऐसी भावनाओं में उस समय बह सकता है, जब अपराध को, उसके लिए हेतुक की दृष्टि से या अपराध के किए जाने की रीति से अथवा अपराध की गैर सामाजिक या घृणात्मक प्रकृति की दृष्टि से, देखा जाता है।'[432]

---

[427] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 201 पर।

[428] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 201 पर।

[429] माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470।

[430] माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470, पैरा 32 पर।

[431] माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470, पैरा 32 पर।

[432] माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470, पैरा 33-37 पर, इन प्रवर्गों को ब्यौरेवार निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया : हत्या करने की रीति : जब हत्या अत्यधिक क्रूर, बर्बर, दुराचारपूर्ण, विद्रोही या डरपोक रीति से की गई है, जिससे कि वह समाज के गहरे और अत्यधिक आक्रोश को जन्म दे। उदाहरण के लिए I (i) जब पीड़ित का घर उसको घर में जिन्दा जलाने की दृष्टि से जला दिया जाता है ; (ii) जब पीड़ित को अमानवीय यातना दी जाती है या क्रूरता से उसके साथ व्यवहार किया जाता है जिससे कि उसकी मृत्यु हो सके; (iii) जब पीड़ित का शरीर टुकड़ों में काटा जाता है या उसके शरीर का पैशाचिक रीति से अंग विच्छेद किया जाता है ;

II हत्या करने के लिए हेतु- जब हत्या ऐसे हेतु के लिए की जाती है जो पूर्ण बर्बरता और कमीनेपन को प्रदर्शित करता है। उदाहरण के लिए – जब (क) कोई भाड़े का हत्यारा धन या ईनाम के लिए हत्या करता है ; (ख) किसी रक्षित व्यक्ति की या हत्यारे के नियंत्रण के अधीन व्यक्ति की या उसकी तुलना में, उसकी जो हत्यारे के आधिपत्य में है या उसके लिए हत्यारा विश्वास की स्थिति में है, संपत्ति को उत्तराधिकार में पाने या उसके ऊपर नियंत्रण पाने के लिए जानबूझकर योजना बनाकर उसकी निर्दयतापूर्वक हत्या करता है ; (ग) कोई हत्या मात्रभूमि से द्रोह करने के अनुक्रम में की जाती है।

III अपराध की गैर सामाजिक या सामाजिक रूप से घृणास्पद प्रकृति (क) जब किसी अनुसूचित जाति या अल्पसंख्यक समुदाय आदि के व्यक्ति की हत्या, व्यक्तिगत कारणों से नहीं, किन्तु ऐसी परिस्थितियों में जो सामाजिक गुस्से को भड़काती हैं, की जाती है। उदाहरण के लिए, जब ऐसा कोई अपराध ऐसे व्यक्तियों को डराने और उन्हें भयभीत करने के लिए, जिससे कि वे एक स्थान से चले जाएं या पिछले अन्यायों को उलटने की दृष्टि से उन्हें वंचित करने और सामाजिक संतुलन को प्रत्यावर्तित करने के क्रम में, की जाती है।

(ख) 'दुल्हन को जलाने' के मामलों में और उनमें जिन्हें 'दहेज मृत्यु' के रूप में जाना जाता है या पुन: दहेज निष्कर्षित करने के लिए या सम्मोहन के कारण किसी दूसरी स्त्री से विवाह करने के लिए, दोबारा विवाह करने के क्रम में, हत्या की जाती है।

5.2.8 माछी सिंह ने इस प्रकार विरले मामलों में से विरलतम सिद्धांत के लागू किए जाने को पांच भिन्न प्रवर्गों के लिए निश्चित कर दिया, जिससे कि बचन सिंह में स्पष्ट रूप से विरत रहा गया था। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने स्वामी श्रद्धानंद में टिप्पण किया कि माछी सिंह ने 'मृत्युदंड को अधिरोपित करने के लिए क्षेत्र का पर्याप्त रूप से विस्तार कर दिया था'[433], उससे परे, जिसकी बचन सिंह में परिकल्पना की गई थी।

ख. अपराध केंद्रित फोकस

5.2.9 माछी सिंह प्रवर्ग केवल अपराध की परिस्थितियों से संबंधित हैं। जबकि न्यायालय ने यह कहा कि दंड देने वाले न्यायाधीश को कम करने वाली परिस्थितियों को भी पूर्ण वजन प्रदान करना चाहिए, पश्चातवर्ती मामलों में बहुत से न्यायाधीशों ने माछी सिंह में बनाए गए प्रवर्गों का ऐसी रीति से आह्वान किया है जो सुझाव देता है कि एक बार यदि कोई मामला 5 प्रवर्गों में से किसी में आ जाता है, तो वह मृत्युदंड के योग्य विरले मामलों में से विरलतम हो जाता है।[434] इसका एक उदाहरण देवेंद्रपाल सिंह बनाम राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र[435] है, जहां बहुमत ने माछी सिंह प्रवर्गों को उद्धत किया था और यह अभिनिर्धारित किया कि अपराध की परिस्थितियां (अपराधी की परिस्थितियों के संबंध में कोई विचार-विमर्श किए बिना) ऐसी थीं कि जो मृत्युदंड अधिरोपित किए जाने की अपेक्षा करती थीं। निश्चित रूप से विसम्मत न्यायाधीश ने इस मामलें में अपराधी को दोषमुक्त कर दिया था, किन्तु इस कारक पर बहुमत द्वारा यह विनिश्चय करने में कि वह मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' में से एक था, विचार नहीं किया गया था।

5.2.10 माछी सिंह और पश्चातवर्ती ऐसी पंक्ति के मामलों में अपराध की परिस्थितियों, प्रकृति, रीति और हेतुक पर, अपराधी की परिस्थितियों को या सुधार की संभावना को, जैसा बचन सिंह सिद्धांत के अधीन अपेक्षित है, ध्यान में रखे बिना, ध्यान केंद्रित किया गया। माछी सिंह के आगे के मामलों में बहुत संख्या में ऐसे मामलें सम्मिलित हैं, जिनमें न्यायालय ने यह विनिश्चित किया है कि केवल यह परीक्षा करके कि अपराध कितना क्रूर, दुराचारपूर्ण या पैशाचिक है, जिससे कि 'समुदाय की सामूहिक चेतना को धक्का लगता है', मृत्युदंड दिया जाए या नहीं।[436] न्यायालय ने बरियार में इस बात को मान्यता दी कि न्यायाधीश 'गुरुतरकारी और कम करने वाली

IV हत्या का परिमाण : जब हत्या अनुपात में विशाल है। उदाहरण के लिए जब बहु हत्याएं अर्थात् किसी परिवार के सभी सदस्यों की या अधिकांश की या किसी विशिष्ट जाति, समुदाय या परिक्षेत्र के व्यक्तियों की, की जाती हैं।

V हत्या के पीड़ित का व्यक्तित्व : जब हत्या का पीड़ित (क) एक निर्दोष बालक है, जो कोई बहाना नहीं बना सकता था या जिसने नहीं बनाया है, जहां हत्या के लिए बहुत ही कम उत्तेजना है, (ख) कोई असहाय स्त्री या वृद्धावस्था अथवा अशक्तता के कारण असहाय कोई व्यक्ति (ग) जब कोई पीड़ित ऐसा व्यक्ति है, जिसकी तुलना में हत्यारा उसे आधिपत्य में लेने की या उसके विश्वास में होने की स्थिति में है, (घ) जबकि पीड़ित कोई सार्वजनिक कोई व्यक्ति है, जिसे समाज द्वारा उसके द्वारा की गई सेवाओं के लिए प्यार किया जाता है और उसका आदर किया जाता है और हत्या व्यक्तिगत कारणों से भिन्न राजनैतिक या समरूप कारणों से की जाती है।

[433] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767।

[434] देखिए उदाहरण प्रदीप कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य (2008) 4 एससीसी 434, जहां न्यायालय ने माछी सिंह के कारकों का उदाहरण दिया था और फिर अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान मामले में अपराध की विशालता सार्वजनिक रूप से लिखी हुई है। अपराधी अपीलार्थी ने बहुत सी हत्याएं की और 3 साक्षियों पर आक्रमण किया .....इस कार्य की बर्बरता उस रीति से बढ़ गई जिसमें उस घर के सभी रहने वालों पर आक्रमण किया गया है, जिसमें असहाय पीड़ितों की हत्या की गई है, जो इस तथ्य को दर्शित करती है कि यह कार्य विचारों में सर्वोच्च श्रेणी का पैशाचिक कार्य था और निष्पादन में क्रूरतापूर्ण था तथा किसी आधारिक मानवता की धारणा के अंतर्गत नहीं आता है जो उसकी ऐसी मानसिक स्थिति को दर्शित करता है, जिसे किसी सुधार के योग्य नहीं कहा जा सकता।' अपराध की प्रकृति स्वयं इस बात को दर्शित करने वाली अभिनिर्धारित की गई है कि वह व्यक्ति सुधार से परे है।

[435] देवेंद्र पाल सिंह बनाम राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, (2002) 5 एससीसी 234।

[436] एक उदाहरण सुडान @ राहुल कनिराम जाधव बनाम महाराष्ट्र राज्य (2011) 7एससीसी 125, पैरा 22 पर है , जहां अभियुक्त एक स्त्री और 4 बालकों की हत्या करने के लिए दोषसिद्ध ठहराया गया था। न्यायालय ने देखा कि अपराध पूर्वचिंतन करके किया गया था और अभिनिर्धारित किया कि तथ्य यह

परिस्थितियों पर बहुत कम उद्देश्यपूर्ण विचार – विमर्श करते हैं'।[437] ऐसे अधिकांश मामलों में न्यायालय अपराध के सूचकांक की क्रूरता पर विचार करते रहे हैं। समान रूप से संगीत में न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि बचन सिंह के बावजूद, प्राथमिकता अभी भी अपराध की प्रकृति को दी जाती हुई प्रतीत होती है। अपराधी की परिस्थितियां, जो बचन सिंह में निर्दिष्ट की गई है, दंड देने वाली प्रक्रिया की पृष्ठभूमि में जाती हुई प्रतीत होती हैं।'[438]

5.2.11 बरियार में न्यायालय ने रवजी एलियाश रामचंद्र बनाम राजस्थान राज्य[439] में विनिश्चय की परीक्षा की। जहां उसने अभिनिर्धारित किया कि :

> 'यह अपराध की, न कि अपराधी की प्रकृति और गंभीरता है जो आपराधिक विचारण में समुचित दंड के विचारण के लिए समुचित अंग हैं .....किसी अपराध के लिए दिए जाने वाले दंड को उस नृशंसता और क्रूरता के, जिससे वह अपराध किया गया है, सार्वजनिक घृणा को उचित ठहराने वाली अपराध की विशालता के, अनुरूप और संगत होना चाहिए और उसे अपराधी के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर' देना चाहिए।[440]

5.2.12 बरियार ने अभिनिर्धारित किया कि रवजी में अपराध पर अनन्य रूप से ध्यान केंद्रण से इस विनिश्चय ने बचन सिंह को असावधानता से किया गया बना दिया था। न्यायालय ने 6 मामलों को सूचीबद्ध किया जहां रवजी को अपनाया गया था और जिन्होंने इस कारण गलत पूर्व निर्णय पर भरोसा किया था।

5.2.13 समान रूप से उच्चतम न्यायालय ने धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[441] में मृत्युदंड के अधिरोपण के ठीक होने पर खादे में संदेह प्रकट किया, जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि प्रस्तुत मामले में दंड के पैमाने को अपराध की नृशंसता पर ; अपराधी के आचरण और पीड़ित के रक्षा रहित और संरक्षण रहित होने की स्थिति पर निर्भर होना चाहिए। समुचित दंड का अधिरोपण वह रीति है, जिसमें न्यायालय अपराधियों के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर देता है।'[442] खादे में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रथमदृष्टया निर्णय में अपराधी से संबंधित कम करने वाली परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा गया था। धनन्जय चटर्जी को 2004 में फांसी दी गई थी।

दर्शित करते हैं कि 'अपराध पशुतुल्य, अत्यधिक बर्बरतापूर्ण, पैशाचिक और भयानक रीति से किया गया है। इसके परिणामस्वरूप समुदाय में गहरा और अत्यधिक रोष है और इसने समाज की सामूहिक चेतना को झकझोर दिया है। हमारी यह राय है कि अपीलार्थी समाज के लिए अभिशाप है, जिसका सुधार नहीं किया जा सकता। हमारी राय में कमतर दंड खतरे से भरा हुआ होगा, चूंकि वह समाज को एक बार फिर अपीलार्थी के हाथों में खतरे के लिए अनावृत्त करेगा।' न्यायालय ने किसी भी कम करने वाली परिस्थिति का न तो उल्लेख किया न उसके बारे में चर्चा की।

[437] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 71 पर।

[438] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452, पैरा 34 पर ।

[439] रवजी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175।

[440] रवजी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175, पैरा 124 पर। संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 63 पर, बचन सिंह में अनवधानता हुई।

[441] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल, (1994) 2 एससीसी 220।

[442]धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल, (1994) 2 एससीसी 220, पैरा 15 पर। इस विनिश्चय का अनन्य केंद्र अपराध पर और न कि अपराधी पर होने के बारे में शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546 में प्रश्न किया गया था।

5.2.14 संगीत में भी न्यायालय ने अतिरिक्त तीन मामलों पर ध्यान दिया, जिनमें गुरुतरकारी और कम करने वाली दोनों परिस्थितियों पर विचार करने के लिए बचन सिंह में दिए गए निदेश को नहीं अपनाया गया था।[443]

5.2.15 उच्चतम न्यायालय द्वारा इस मान्यता के बावजूद कि उसने उन मामलों में गलती की थी जहां केवल अपराधी की परिस्थितियों को न कि अपराधी की परिस्थितियों को ध्यान में रखा गया था, न्यायाधीश केवल पूर्व विचारणों पर आधारित मृत्युदंड को अधिरोपित कर रहे हैं।[444]

ग. सामूहिक चेतना को धक्का और न्याय के लिए समाज की पुकार

5.2.16 माछी सिंह ने भारत के मृत्युदंड संबंधी न्याय शास्त्र की शब्दावली में समाज की 'सामूहिक चेतना को धक्का'[445] धारणा को यह विनिश्चय करने के लिए कसौटी के रूप में प्रारंभ किया कि मृत्युदंड अधिरोपित किया जाए या नहीं। समान धारणाओं जैसे 'न्याय के लिए समाज की पुकार'[446] और 'अपराध के प्रति जनता की घृणा'[447] का भी न्यायालय द्वारा पश्चातवर्ती मामलों में आह्वान किया गया है। बचन सिंह में स्पष्ट रूप से चेतावनी दी गई की :

> न्यायाधीशों को जनता की राय का भविष्य वक्ता या प्रवक्ता होने का दायित्व अपने ऊपर नहीं लेना चाहिए.....जब न्यायाधीश अपने ऊपर आचरण के सामाजिक संननियम स्थापित करने का दायित्व लेते हैं, तब, समाज में स्वच्छंद रूप से विद्यमान सही और गलत धारणाओं का तार्किक अनुमान लगाने के लिए प्रत्येक प्रयास करने

---

[443] शिवु वी. महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713 ; राजेंद्र प्रलहादराव वासनिक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 4 एससीसी 37 ; मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 5 एससीसी 317।

[444] उदाहरण देखिए, संदीप बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 6 एससीसी 107 ; अजीतसिंह हरनामसिंह गुजराल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 14 एससीसी 401।

[445] माछी सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 3 एससीसी 470, पैरा 32 पर।

[446] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 एससीसी 220, जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम बसोडी, (2009) 12 एससीसी 318 ; बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 113 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्री कृष्ण, (2005) 10 एससीसी 420 ; जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 5 एससीसी 1 ; रवजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175 ; भेरू सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (1994) 2 एससीसी 467 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शेख शाहिद, (2009) 12 एससीसी 715 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतान @ सत्येंद्र, (2009) 4 एससीसी 736 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, (2006) 6 एससीसी 1 ; शैलेष जसवंतभाई बनाम गुजरात राज्य, (2006) 2 एससीसी 359।

[447] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 एससीसी 220, जमील बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 12 एससीसी 532 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम बसोडी, (2009) 12 एससीसी 318 ; बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 1 एससीसी 113 ; मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य (2008) 7 एससीसी 561 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम सलीम, (2005) 5 एससीसी 554 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम श्री कृष्ण, (2005) 10 एससीसी 420 ; जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 5 एससीसी 1 ; रवजी बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175 ; भेरू सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (1994) 2 एससीसी 467 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम शेख शाहिद, (2009) 12 एससीसी 715 ; उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतान @ सत्येंद्र, (2009) 4 एससीसी 736 ; मध्य प्रदेश राज्य बनाम संतोष कुमार, (2006) 6 एससीसी 1 ; शैलेष जसवंतभाई बनाम गुजरात राज्य, (2006) 2 एससीसी 359।

के बावजूद इसका खतरा रहता है कि वे अपने विशिष्ट विचार या व्यक्तिगत अधिमान को निष्कपटतापूर्वक गलती से समाज के नैतिक नियमों के रूप में देखते हुए, विधि में लिख सकते हैं। 'समाज के मानकों की धारणा या नैतिक नियम एक न्यायाधीश से दूसरे न्यायाधीश के लिए भिन्न हो सकते हैं।। न्यायाधीशों के पास निश्चित रूप से जनता की इच्छा का सही-सही अनुमान लगाने के लिए कोई अनुमान लगाने वाली छड़ी नहीं है।[448]

5.2.17 तथापि माछी में और पश्चातवर्ती मामलों में जनता की राय को 'सामूहिक चेतना', 'समाज की पुकार' और 'जनता की घृणा' के स्पष्ट मानकों के संधि-योजन के माध्यम से दंड देने वाले न्याय शास्त्र में महत्वपूर्ण भूमिका करने के लिए दी गई है।

5.2.18 बरियार में उच्चतम न्यायालय ने विरले मामलों में से विरलतम के विश्लेषण में ऐसी 'जनता की राय' को कारक बनाने की सुसंगतता और वांछनीयता पर प्रश्न किया था क्योंकि प्रथमत: निश्चित रूप से यह परिभाषित करना कठिन है कि किसी प्रस्तुत मामले पर वास्तव में 'जनता की राय' क्या है। इसके अतिरिक्त जनता की अपराध की धारणा 'न तो अपराध से और न अपराधी से' संबंधित उद्देश्यपूर्ण परिस्थिति है।[449] इस प्रकार यह कारक बचन सिंह[450] द्वारा आज्ञा दिए गए विरले मामलों में से विरलतम के विश्लेषण से असंगत है। तीसरे जैसा कि बरियार में भी बताया गया है न्यायालय संवैधानिक रक्षोपायों द्वारा शासित होते हैं, जो राज्य द्वारा अपनी विभिन्न हैसियतों में जनता के साथ, जिनके अंतर्गत सिद्धदोषी भी हैं, 'व्यवहार करने में आह्वान की जाने वाली प्रक्रिया के संबंध में ऋजुता, युक्तियुक्तता और समान व्यवहार की चुनौती के अनुसार संस्थागत औचित्य के मूल्यों को प्रारंभ करते हैं।'[451] उदाहरण के लिए न्यायालय बहुमत वाले मनोवेगों के विरुद्ध व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करने में बहुमत वाली भूमिका का प्रतिविरोध करता है। किसी प्रस्तुत मामले में जनता की राय विधि के शासन के मूल्यों और संवैधानिकता के, जिसके द्वारा न्यायालय तथापि आबद्ध हैं, विरुद्ध जा सकती है।[452]

5.2.19 दंड देने वाले किसी न्यायालय के पास किसी प्रस्तुत मामले में जनता की राय की कठोर रूप से परीक्षा करने के साधन नहीं होते हैं। यह भी कि कोई संसक्त, संबद्ध और दृढ़ 'जनता की राय' एक कल्पना है। जनता के सदस्यों की राय चंचल और गलत सूचना पर आधारित हो सकती है क्योंकि 'जनता को न केवल किसी व्यक्तिगत मामले के तथ्य दिए जाते हैं किन्तु स्वयं आपराधिक न्याय प्रक्रिया के बारे में भी बताया जाता है। अत: जनता की राय पर ध्यान केंद्रित करने से 'मृत्युदंड देना मीडिया के लिए आकर्षक दृश्य बनने का खतरा रखता है। यदि मीडिया द्वारा विचारण की संभावना है, तो मीडिया द्वारा दंड देने को भी अवैध नहीं ठहराया जा सकता।[453] ऐसी परिस्थितियों में संवैधानिक मानकों और रक्षोपायों पर ध्यान केंद्रित करने के बजाय जनता की राय का आह्वान करना बचन सिंह में विस्तार से बताई गई संपूर्ण विचरना को विफल कर देगा।[454] रमेंश भाई राठौर बनाम गुजरात राज्य[455] में एक राय ने यह माना कि,

---

[448] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 126 पर।

[449] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 80 पर।

[450] मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2013) 3 एससीसी 294 में दोहराया गया।

[451] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 82 पर।

[452] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

[453] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 87 पर।

[454] यह भी देखिए अपर्णा चन्द्र, एक सनकी कैद, 2 राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली का जरनल 124 (2014) ('कोई न्यायालय विधि का न्यायालय है न कि सार्वजनिक राय का न्यायालय। नि:संदेह न्यायाधीश समाज का सृजन हैं और उन पर उसका प्रभाव पड़ेगा। किन्तु सार्वजनिक राय का मृत्युदंड देने की औपचारिक विरचना में संकेत देना उसे निर्देशात्मक वजन देता है, जो समस्यामूलक है। यदि जनता की राय दंड देने के प्रश्न पर महत्व रखती है तो न्यायालय दंडादेश का अवधारण करने के लिए गलत संस्थाएं हैं। संसद् या तुरंत न्याय करने वाली भीड़ अधिक विरोधी हैं')।

[455] रमेशभाई राठौड़ बनाम गुजरात राज्य,(2009) 5 एससीसी 740 (पीईआर गांगुली, जे)

न्यायालय ध्यानपूर्वक विचार करने की इस अपेक्षा पर कि क्या अपराध करने वाला व्यक्ति समाज के लिए खतरा है, किए गए अपराधों की प्रकृति के बारे में तिरस्कार की भावनाओं को प्राथमिकता नहीं दे सकता। न्यायालय को इस बात पर अवश्य विचार करना चाहिए कि क्या अपराध करने वाले व्यक्ति के सुधार या पुनर्वास की कोई संभावना है और वह दंड देने वाली प्रक्रिया के मूल में होनी चाहिए। यही केवल वह दृष्टिकोण है जो मृत्युदंड को 'विरले मामलों में से विरलतम में रख सकता है'।[456]

5.2.20 हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य[457] में उच्चतम न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि माछी सिंह के 'समाज की सामूहिक चेतना को धक्का देने'[458] के आह्वान ने यह मूल्यांकन करने के लिए कि कोई मामला मृत्यु के योग्य है या नहीं, विरले मामलों में से विरलतम सूत्र का उससे परे, जिसकी बचन सिंह में परिकल्पना की गई थी, विस्तार किया। तथापि, जैसा नीचे विचार विमर्श किया गया है, इस अभिस्वीकृति के बावजूद न्यायालय मृत्युदंड देने के लिए आधार के रूप में समुदाय की प्रतिक्रियाओं और जनता की राय का आह्वान करता रहा है।[459]

घ. अपराध परीक्षण, आपराधिक परीक्षण और विरले में से विरलतम का परीक्षण

5.2.21 अभी हाल के मामलों में उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह सिद्धांत के दूसरे सूत्र का संधियोजन करके इस चिंता का उत्तर दिया है कि मृत्युदंडादेश देना 'न्यायाधीश केंद्रित' है। न्यायालय ने गुरुवेल सिंह@ गाला बनाम पंजाब राज्य[460] जैसे मामलों में यह अभिनिर्धारित किया है कि मृत्युदंड दिए जाने के पूर्व तीन परीक्षणों का समाधान किया जाना होगा : अपराध परीक्षण, जिसका तात्पर्य है मामले की गुरतरकारी परिस्थितियां ; आपराधिक परीक्षण, जिसका तात्पर्य है कि अपराधी का पक्ष लेने वाली कोई कम करने वाली परिस्थितियां नहीं होनी चाहिए ; और यदि दोनों परीक्षणों का समाधान हो जाता है, तब विरले मामलों में से विरलतम का परीक्षण, 'जो समाज के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है न कि न्यायाधीश केंद्रित' पर, अर्थात् क्या समाज कतिपय प्रकार के अपराधों के लिए मृत्युदंड देने का अनुमोदन करेगा या नहीं। इस परीक्षण को लागू करते हुए न्यायालय को विभिन्न प्रकार के कारणों को देखना होता है, जैसे कतिपय प्रकार के अपराधों के प्रति समाज की घृणा, अत्यधिक आक्रोश और चिढ़'।[461] इस परीक्षण को स्पष्ट करते हुए न्यायालय ने मोफिल बनाम झारखंड राज्य[462] में कहा कि इस परीक्षण को 'आधारभूत रूप से इस बात की परीक्षा करनी है कि क्या समाज ऐसे अपराधों से घृणा करता है और क्या ऐसे अपराध समाज की चेतना को धक्का पहुंचाते हैं और समाज के गहरे और अत्यधिक आक्रोश को आकर्षित करते हैं।'[463]

---

[456] रमेशभाई राठौड़ बनाम गुजरात राज्य,(2009) 5 एससीसी 740, पैरा 108 पर।

[457] हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 12 एससीसी 56।

[458] हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 12 एससीसी 56, पैरा 20 पर।

[459] यह भी देखिए, वसंत संपत डुपरे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2015) 1 एससीसी 252 3 (इस मुद्दे पर हर्ष राजपूत को उद्धृत करते हुए कि माछी सिंह ने 'सामूहिक चेतना' की संकल्पना की शुरुआत करके बचन सिंह वाले सूत्र के परे विरले मामलों में से विरलतम सिद्धांत का विस्तार किया था। किन्तु वर्तमान मामले में मृत्युदंड अधिरोपित करने में सामूहिक चेतना को धक्का लगने का आह्वान करना यद्यपि कुछ नहीं है)।

[460] गुरवेल सिंह@गाला बनाम पंजाब राज्य, (2013) 2 एससीसी 713। यह भी देखिए बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2014) 3 एससीसी 421, अशोक देबबर्मा@अशोक देबबर्मा बनाम त्रिपुरा राज्य, 2014) 4 एससीसी 747 ; संतोष कुमार सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2014) 12 एससीसी 650 ; धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 5 एससीसी 509 ; अनिल@एंथोनी अरिक्स्वामी जोसेफ बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 69। तिहरे परीक्षण में प्रयुक्त शंकर खादे की राय भी देखिए।

[461] गुरवेल सिंह@गाला बनाम पंजाब राज्य, (2013) 2 एससीसी 713, पैरा 19 पर।

[462] मोफिल खान बनाम झारखंड, (2015) 1 एससीसी 67।

[463] मोफिल खान बनाम झारखंड, (2015) 1 एससीसी 67, पैरा 46 पर।

5.2.22 ये तिहरा परीक्षण मृत्युदंड के अधिरोपित किए जाने की संभावना को मामलों के उस बहुत संकीर्ण प्रवर्ग तक, जिनमें कैसी भी कम करने वाली परिस्थितियां नहीं हैं, परिसीमित करता है। इसमें परीक्षण बचन सिंह की भावना को बनाए रखता है कि मृत्युदंड केवल अत्यधिक अपवादात्मक परिस्थितियों में अधिरोपित किया जाना चाहिए।

5.2.23 तथापि, तिहरे परीक्षण के विश्लेषण में, मृत्युदंड की 'न्यायाधीश केंद्रित' प्रकृति का अपराध के समाज संबंधी उत्तर पर ध्यान केंद्रित करके निवारण किया जा सकता है। यह संबंधित चिंता का विषय है क्योंकि जैसा कि बचन सिंह ने स्वयं अभिस्वीकार किया था और जिसे बरियार में पुन: दोहराया गया था कि यह संभावना है कि न्यायाधीश समाज की धारणाओं के स्थान पर अपनी उपधारणाओं, मूल्यों और अधिमानों को प्रतिस्थापित कर दें, क्योंकि यदि किसी को यह उपधारणा करनी है कि समाज इन मामलों पर निश्चित, दृढ़ और विस्तृत रूप से बांटे हुए अधिमान रखता है, तो न्यायाधीशों के पास इन अधिमानों का अवधारण करने के लिए कोई साधन नहीं है।

5.2.24 आगे, जैसा ऊपर वर्णित किया गया है बचन सिंह ने उन अपराधों की, जो मृत्युदंड के योग्य हैं, किस्मों का प्रवर्गीकरण करने की धारणा को नामंजूर कर दिया। तथापि, यह तिहरा परीक्षण संबंधी सूत्र 'विरले मामलों में से विरलतम' में वही करना चाहता है जो 'कतिपय प्रकार के अपराधों के लिए समाज की घृणा, अत्यधिक आक्रोश और चिढ़' के बारे में दृढ़तापूर्वक कहा गया है।'[464]

5.2.25 'विरले मामलों में से विरलतम' से गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों का वियोजन बचन सिंह विरचना से दूर हट जाता है। इसके अतिरिक्त तिहरा परीक्षण सूत्र अपराध से संबंधित परिस्थितियों और अपराधी से संबंधित परिस्थितियों की विभिन्न सूचियां बनाना चाहता है। यह बचन सिंह व्यादेश के विरुद्ध जाता है कि अपराध और अपराधी से संबंधित परिस्थितियों को सुभिन्न, पूर्णरूप से बंद कक्षों के रूप में नहीं माना जा सकता।[465] वस्तुत: उच्चतम न्यायालय ने स्वयं इस चिंता पर तिहरे परीक्षण के साथ महेश धानाजी सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य[466] में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ में टिप्पणी की और सावधान किया कि यह तिहरा परीक्षण' ऐसी परिस्थितियों का सृजन कर सकता है जो उससे परे जा सकती हैं जो कि बचन सिंह में अधिकथित किया गया था।'[467] तथापि, तेहरे परीक्षण को महेश सिंदे में विनिश्चय के बावजूद उच्चतम न्यायालय स्वयं अपनाता रहा है और लागू करता रहा है।[468]

5.2.26 बचन सिंह से, विश्लेषण की विरचना के और विचार किए जाने वाले (विशेष रूप से जनता की राय का विचारण) सुसंगत कारणों के अनुसार, यह दोनों से हट जाने में तिहरा कांटेदार परीक्षण 'विरले में से विरलतम' संबंधी विश्लेषण के चारो और और वैचारिक संभ्रम जोड़ता दिखाई पड़ता है।

5.2.27 उपर्युक्त विचार विमर्श निदर्शित करता है कि विभिन्न न्यायाधीशों ने 'विरले मामलों में से विरलतम' मामलों की अपेक्षाओं को भिन्न रूप में समझा है, जिसका परिणाम विषम और 'न्यायाधीश केंद्रित' इस अवधारण में हुआ है कि कोई मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' के प्रवर्ग के भीतर आता है या नहीं। जैसा कि न्यायालय ने संगीत में कहा है, बचन सिंह उक्ति 'अनुवाद में खो गई' प्रतीत होती है।[469] उच्चतम न्यायालय ने मोहम्मद फारूख में 'न्यायालय द्वारा दंडादेश देने में 'विरले मामलों में से विरलतम'

---

[464] गुरवेल सिंह@गाला बनाम पंजाब राज्य, (2013) 2 एससीसी 713, पैरा 19 पर।

[465] इस परीक्षण की समीक्षा के लिए साधारणतया देखिए अपर्णा चन्द्रा, एक सनकी कैद, 2 राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली का जरनल 14 (2014)।

[466] महेश धानाजी सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 292।

[467] महेश धानाजी सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 292, पैरा 24 पर।

[468] देखिए अशोक देबबर्मा@अछक देबबर्मा बनाम त्रिपुरा, (2014) 4 एससीसी 747, धरम देव यादव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 5 एससीसी 409, ललिट कुमार यादव@कुरी बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2014) 11 एससीसी 129।

[469] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452, पैरा 33 पर ।

अभिव्यक्ति के विभिन्न निर्वचनों से निकलती हुई असमानता' को अभिस्वीकार किया[470] और उसको चिंता थी कि 'मृत्युदंड पर पूर्व निर्णय असमान निर्वचनों के वजन के नीचे बिखर रहे हैं।'[471] न्यायालय ने यह भी सावधान किया कि इस परीक्षण के किसी संगत निर्वचन के बिना अनुच्छेद 14 का अतिक्रमण होगा।[472]

(ii) गुरुतरकारी और कम करने वाले समझे गए कारक

5.2.28 बचन सिंह ने इस बात को मान्यता दी और इस पर जोर दिया कि प्रत्येक मामला अद्वितीय है और उसका अपने तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर विनिश्चय किया जाना है। इस कारण से न्यायालय ने ऐसे अपराधों का, जिनके लिए मृत्युदंड लागू होगा, कोई मानकीकरण या प्रवर्गीकरण करने से इंकार कर दिया। तथापि, उसी समय न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि दंड देने का विवेकाधिकार अनियंत्रित नहीं था। बल्कि उसने जगमोहन में उस धारणा की पुष्टि की कि 'दंड देने वाले विवेकाधिकार का सुमान्यताप्राप्त ऐसे सिद्धांतों के आधार पर प्रयोग किया जाना है, जिन्हें इस बारे में उदाहरण देने वाले न्यायिक विनिश्चयों द्वारा कि किन्हें उन मामलों में गुरुतरकारी या कम करने वाली परिस्थितियां माना जाए, आकार दिया गया हो।'[473] इस प्रकार बचन सिंह ने न्यायालयों को, इस प्रकार के कारकों के, जो गुरुतरकारी हैं और जो कम करने वाले हैं, बारे में पूर्व निर्णयों के अध्ययन से प्राप्त न्यायिक सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह अवधारित करने के लिए निदेश दिया कि क्या कोई मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' है। इस प्रकार बचन सिंह ने व्यक्तिगत तथापि, सिद्धांतवादी दंड देने के जुड़वे तत्वों का अनुमोदन किया। तथापि, उच्चतम न्यायालय ने उस समय से इस बात को मान्यता दी है और नीचे मामले यह प्रदर्शित करते हैं, 'यद्यपि साधारणतया न्यायालय पूर्व निर्णयों की ओर देखेंगे किन्तु यह अत्यधिक कठिन, यदि असंभव नहीं, हो जाता है, क्योंकि पूर्व निर्णयों में कोई एकरूपता नहीं है, कम से कम यह कहा जा सकता है।'[474]

क. गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर विचार न करना

5.2.29 उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश[475] में सिद्धदोषी किसी अवयस्क का बलात्कार और हत्या करने का अभियुक्त था। दंडादेश के प्रश्न पर, न्यायालय ने, ऐसे विनिश्चयों का सर्वेक्षण करने के पश्चात् जिन्होंने मृत्युदंड अधिरोपित करने के संबंध में सिद्धांत अधिकथित किए हैं, यह कहा कि उसे 'यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि प्रस्तुत मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' के प्रवर्ग में आता है और विचारण न्यायालय द्वारा दिया गया मृत्युदंड समुचित था।'[476] यह निर्णय मामले की गुरुतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों पर पूर्ण रूप से शांत है, इस पर किसी भी प्रकार का कोई विचार-विमर्श नहीं किया गया है कि प्रस्तुत मामला क्यों मृत्युदंड का अधिरोपण किए जाने के योग्य था।

5.2.30 यह एकल उदाहरण नहीं है। बचन सिंह के पश्चातवर्ती बहुत से मामलों ने, उदाहरण के लिए लोकपाल सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य[477], दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य[478] और रंजीन सिंह बनाम राजस्थान राज्य[479] ने 'विरले मामलों में से विरलतम' सूत्र

---

[470] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 165 पर।

[471] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 165 पर।

[472] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641।

[473] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 197 पर।

[474] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 104 पर।

[475] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114।

[476] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114।

[477] लोक पाल सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1985 एससी 891।

[478] दर्शन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1988) 1 एससीसी 618।

के प्रति बिल्कुल भी निर्देश किए बिना मृत्युदंड को बनाए रखा है। कुछ अन्य मामलों में जैसे नाम लिए जाने के लिए मुकुंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य[480], अशोक कुमार पांडे बनाम दिल्ली राज्य[481] में, फारूख बनाम केरल राज्य[482] और अचारपरमबाथ प्रदीपन बनाम केरल राज्य[483], न्यायालय ने 'विरले मामलों में से विरलतम' उक्ति के प्रति निर्देश किया। किन्तु उसे मृत्युदंड देने में, संपरिवर्तित करने में लागू नहीं किया, जिससे कि उसने केवल 'विरले मामलों में से विरलतम' परीक्षण के प्रति केवल मौखिक कार्य किया।

ख. कम करने वाले कारक के रूप में आयु

5.2.31 बचन सिंह ने इस बात को मान्यता दी थी कि अपराधी की अल्पायु सुसंगत कम करने वाली परिस्थिति है, जिसे दंडादेश के अवधारण में बड़ा वजन दिया जाना चाहिए। न्यायालय ने यह बार-बार अभिनिर्धारित किया है कि यदि अपराधी ने अल्पायु में कोई अपराध किया है तो अपराधी का सुधार करने की संभावना से मना नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, राम नरेश बनाम छत्तीसगढ़ राज्य[484] में, जिसमें सामूहिक बलात्संग और हत्या अंतर्वलित थे, न्यायालय ने सभी सिद्धदोषियों की (सभी 21-30 वर्ष की आयु के बीच थे) अल्पायु को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया था, जिसने सुधार की संभावना के प्रति संकेत किया। समान रूप से, रमेश बनाम राजस्थान राज्य[485] में, जो लाभ के लिए दोहरी हत्या अंतर्वलित करने वाला मामला था, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करके आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया कि सिद्धदोषी की अल्पायु कम करने वाला कारक थी, क्योंकि उसे सुधारा जा सकता था। सुरेन्द्र मेहतो बनाम बिहार राज्य[486] में आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित करने में न्यायालय द्वारा विचार किया गया प्राथमिक कम करने वाला कारक यह था कि अपराधी केवल 30 वर्ष का था और इसलिए उसका सुधार किया जा सकता था।

5.2.32 तथापि, कम करने वाले कारक के रूप में आयु का उपयोग बहुत ही असंगत रूप में किया गया है। बचन सिंह में स्वयं विसंगत राय प्रकट करते हुए न्यायमूर्ति भगवती ने अन्यथा ऐसे समरूप मामलों के, जहां अपराधी की अल्पायु पर मृत्यु के बजाय आजीवन कारावास का दंड देने के लिए आधार के रूप में विचार किया गया था या नहीं, बहुत से उदाहरण दिए थे। कम करने वाले कारक के रूप में अभियुक्त की आयु पर विचार करने में असंगतता की प्रवृतति बचन सिंह के पश्चात् भी बनी रही है।

5.2.33 एक उदाहरण लेने के लिए, धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[487] में उच्चतम न्यायालय ने अपराधी को 18 वर्ष की एक स्त्री का, जो उस भवन में रहती थी, जहां वह सुरक्षा गार्ड था, बलात्संग और हत्या करने के लिए मृत्युदंड दिया था। यह मामला रमेशभाई चंदूभाई राठौर बनाम गुजरात राज्य[488] में ध्यान में लाया गया था, जिसमें न्यायालय के अपने निर्धारण के अनुसार समान तथ्य अंतर्वलित थे सिवाय इससे कि इस मामले में बलात्कार और हत्या एक बच्चे की की गई थी। बड़ी न्यायपीठ को निर्देश किए जाने पर, क्योंकि दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ दंडादेश पर सहमत नहीं हो सकी, न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तथ्यों की समानता

---

[479] रंजीत सिंह बनाम राजस्थान राज्य, (1980) 1 एससीसी 683।

[480] मुकुंद बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1997) 10 एससीसी 683।

[481] अशोक कुमार पांडे बनाम दिल्ली राज्य, (2002) 4 एससीसी 76।

[482] फारूख बनाम केरल राज्य, (2002) 4 एससीसी 697।

[483] आचारपरमबथ प्रदीपन बनाम केरल राज्य, (2006) 13 एससीसी 643।

[484] रामनरेश और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य, (2012) 4 एससीसी 257।

[485] रमेश बनाम राजस्थान राज्य, (2011) 3 एससीसी 685।

[486] सुरेन्द्र मेहतो बनाम बिहार राज्य, दांडिक अपील सं0 211/2009।

[487] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,(1994) 2 एससीसी 220।

[488] रमेशभाई चंदूभाई राठौर (2) बनाम गुजरात राज्य, (2011) 2 एससीसी 764।

धनन्जय चटर्जी के मामले के साथ देखी। किन्तु यह अभिनिर्धारित किया कि अपराधी की आयु केवल 28 वर्ष थी, जिसमें सुधार किए जाने की संभावना थी और इसलिए उन्होंने उस पर आजीवन कारावास का दंड अधिरोपित किया। अत: स्वीकार्य रूप से समरूप तथ्यों की स्थिति में रमेशभाई राठौर को आजीवन कारावास दिया गया था, क्योंकि वह 28वर्ष की आयु का था। धनन्जय चटर्जी को मृत्युदंड दिया गया था और उसे 2004 में फांसी दी गई थी, वह 27 वर्ष की आयु का था।

5.2.34 पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे बनाम महाराष्ट्र राज्य[489] में, जो उच्चतम न्यायालय द्वारा इस वर्ष मई में विनिश्चित किया गया बहुत हाल का मामला है, बलात्संग और हत्या के समरूप तथ्यों की स्थिति अंतर्वलित थी। न्यायालय ने पुन: मामले की धनन्जय चटर्जी के मामले के साथ समरूपता इंगित की और धनन्जय चटर्जी के मामले का अनुगमन करते हुए उसने दोनों अपराधियों पर मृत्युदंड अधिरोपित किया। न्यायालय ने न तो रमेशभाई राठोर में विनिश्चय के प्रति और न शंकर खादे में विनिश्चय के प्रति निर्देश किया, जिन्होंने धनन्जय चटर्जी में मृत्युदंड के अधिरोपण पर इस आधार पर संदेह किया था कि न्यायालय ने कम करने वाले तथ्यों को ध्यान में नहीं रखा था। पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे में अपराधियों की आयु क्रमश: 26 और 20 वर्ष थी।[490]

5.2.35 उच्चतम न्यायालय ने शंकर खादे में बलात्संग और हत्या की अन्यथा समरूप मामलों में कम करने वाले कारक के रूप में आयु के असंगत उपयोग की तरफ इंगित किया। एक तरफ अपराधियों को अमित बनाम महाराष्ट्र राज्य[491] (लगभग 20 वर्ष की आयु) में राहुल बनाम महाराष्ट्र राज्य[492] (आयु 24 वर्ष), संतोष कुमार सिंह बनाम राज्य[493] (आयु 24 वर्ष), रमेशभाई चंदूभाई राठौर (2) बनाम गुजरात राज्य[494] (आयु 28 वर्ष) और अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[495] (आयु 28 वर्ष) में मृत्युदंड नहीं दिया गया था क्योंकि उनकी आयु को कम करने वाले कारक के रूप में समझा गया था, दूसरी तरफ धनन्जय चटर्जी[496] (आयु 27 वर्ष), जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य[497] (आयु 22 वर्ष), और शिबु और अन्य बनाम महा रजिस्ट्रार कर्नाटक उच्च न्यायालय[498] (आयु 20 और 22 वर्ष) में, अपराधी की अल्पायु पर या तो विचार नहीं किया गया था या उसे असंगत समझा गया था।

ग. गुरुतरकारी कारक के रूप में अपराध की प्रकृति

5.2.36 चूंकि मृत्युदंड 'विरले मामलों में से विरलतम' में ही दिया जाना है, अत: बरियार में न्यायाधीशों से यह अवधारण करने में कि क्या उनके समक्ष मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' था या नहीं, समरूप मामलों के समूह का सर्वेक्षण करने की अपेक्षा की गई थी।

---

[489] पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे बनाम महाराष्ट्र राज्य, ए.आई.आर.2015 एससी 2170।

[490] अपराधी की आयु इस मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय से ली गई है। देखिए महाराष्ट्र राज्य बनाम पुरुषोत्तम दशरथ बोराटे, दांडिक अपील सं0 632/2012(मुम्बई), 25.09.2012।

[491] अमित बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2003) 8 एससीसी 93।

[492] राहुल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 10 एससीसी 322।

[493] संतोष कुमार सिंह बनाम राज्य, (2010) 9 एससी 747।

[494] रमेशभाई चंदूभाई राठौर (2) बनाम गुजरात राज्य, (2011) 2 एससीसी 764।

[495] अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 107।

[496] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य,(1994) 2 एससीसी 220।

[497] जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 5 एससीसी 1।

[498] शिबु और अन्य बनाम महा रजिस्ट्रार कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713।

5.2.37 हाल में, शंकर खादे में उच्चतम न्यायालय ने पुन: साक्ष्य आधारित मृत्युदंडादेश के लिए आवश्यकता की ओर संकेत किया था और वह इस बात से संबंधित था कि 'विरले मामलों में से विरलतम' का सूत्र व्यवहार्य नहीं हैं, जब तक कि आनुभविक साक्ष्य उपलब्ध नहीं कराया जाता है जो न्यायालय को यह मूल्यांकन करने के लिए अनुज्ञात करता है कि कोई विशिष्ट मामला, विरले मामलों के तुलनीय समूह से 'विरलतम' है। इस आंकड़े की अनुपस्थिति में न्यायालय ने अनुभव किया कि 'विरले मामलों में से विरलतम' सूत्र का लागू करना 'अत्यधिक नाजुक' और 'विषयगत' हो जाता है।[499] तथापि, जैसा कि न्यायालय ने इस मामले में, बलात्संग और हत्या से संबंधित मामलों के समूह का सर्वेक्षण करते समय, अनुभव किया कि किसी अल्पायु के बालक का बलात्कार और हत्या कुछ मामलों में न्यायिक चेतना को झकझोरते हैं, दूसरों में नहीं।

5.2.38 इस प्रकार उदाहरण के लिए एक तरफ न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक मामले में किसी डेढ़ साल के शिशु का बलात्कार और हत्या,[500] दूसरे में 6 वर्ष की आयु की बालिका का बलात्कार और हत्या[501] और तीसरे मामलें में 10 वर्ष की बालिका का बलात्कार और हत्या[502], मृत्युदंड को आकर्षित नहीं करेंगे, क्योंकि यद्यपि ये अपराध जघन्य थे, किन्तु अपराधी समाज के लिए खतरा नहीं थे और सुधार की संभावना समाप्त नहीं हुई थी । दूसरी तरफ मामलों की दूसरी आवलियों में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि किसी 5 वर्ष की आयु की[503], 6 वर्ष की आयु की[504] या 7 वर्ष की आयु की[505] या 9 वर्ष की आयु की[506] बालिका का बलात्कार और हत्या, उसकी प्रकृति से ही अत्यधिक क्रूर, दुराचारपूर्ण, जघन्य और बर्बरतापूर्ण थे और इस प्रकार चरम दंड के योग्य थे। इस प्रकार उदाहरण के लिए जुम्मन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[507] में, जिसमें किसी 6 वर्ष की आयु की बालिका का बलात्कार और हत्या अंतर्वलित थी, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि केवल मात्र दंड, जिसके कि अपीलार्थी अपनी कामवासना की पूर्ति के लिए किसी निर्दोष बालिका की निन्दा योग्य और बर्बर हत्या करने के लिए योग्य है, वह कुछ नहीं बल्कि सामाजिक आवश्यकता के उपाय के रूप में और अन्य संभावित अपराधियों को भयोपरत करने के लिए साधन के रूप में मृत्यु है।'[508]

5.2.39 समान रूप से मोहम्मद मन्नन @ अब्दुल मन्नन बनाम बिहार राज्य[509] में सिद्धदोषी ने एक 7 वर्ष की बालिका का व्यपहरण किया, बलात्कार किया और उसकी हत्या कर दी। न्यायालय ने मृत्युदंड दिया, क्योंकि पीड़ित एक 'निर्दोष, असहाय और रक्षारहित बालिका' थी।[510] न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'अपराध ने समुदाय का अत्यधिक आक्रोश आमंत्रित किया था और समाज की सामूहिक चेतना को धक्का पहुंचाया था। उनकी प्रत्याशा अधिनिर्णीत करने की शक्ति प्रदान किए गए प्राधिकारियों से यह थी कि वे मृत्युदंडादेश दें, जो कि प्राकृतिक और तार्किक है।'[511] सादर ऊपर दिए गए विरोधी पंक्ति के मामलों को देखते हुए, इस निर्णय से यह स्पष्ट नहीं है कि इस मामले में क्यों, ऊपर वर्णित मामलों में क्यों नहीं, समाज की सामूहिक चेतना को इतना धक्का लगा था कि उसने

---

[499] शिबु और अन्य बनाम महा रजिस्ट्रार कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713, पैरा 2-3।

[500] मो0 चमन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली), (2001) 2 एससीसी 28।

[501] बंटू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2001) 9 एससीसी 615।

[502] हरेश मोहनदास राजपूत बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2011) 12 एससीसी 56।

[503] बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 11 एससीसी 113।

[504] जुम्मन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1991) 1 एससीसी 752।

[505] कामता तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 6 एससीसी 250।

[506] शिवाजी @ दया शंकर अलहत बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 15 एससीसी 269।

[507] जुम्मन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1991) 1 एससीसी 752।

[508] जुम्मन खान बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1991) 1 एससीसी 752, पैरा 4 पर।

[509] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65।

[510] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65, पैरा 18 पर।

[511] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65, पैरा 18 पर।

मृत्युदंड को आमंत्रित किया था। असंगतियां, जो यहां विशिष्ट रूप से बतायी गई और न्यायालय द्वारा स्वयं खादे में देखी गई थीं, इस मामले में मृत्युदंड का दिया जाना, कुछ भी किन्तु 'प्राकृतिक और तार्किक' बनाती हैं।[512]

5.2.40 इन असंगतियों ने उच्चतम न्यायालय को यह स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया है कि 'ऐसे तथ्यों की बहुत पतली रेखा है जो किसी अल्पायु के व्यक्ति द्वारा किसी बालिका के बलात्कार और हत्या के मामले में मृत्युदंड दिए जाने को आजीवन कारावास से पृथक् करती है और मृत्युदंड की नैतिकता, कुशलता या अन्यथा के बारे में व्यक्तिगत रूप से न्यायाधीशों की विषयगत राय को पूर्णरूप से असंगत नहीं माना जा सकता।'[513]

5.2.41 समान रूप से सुशील मुरमू बनाम झारखंड राज्य[514] के विरुद्ध महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू[515] की तुलना की जा सकती है। पश्चातवर्ती में अपराधी छुपा हुआ खजाना प्राप्त करने के लिए मानव बलिदान के रूप में 3 बालकों की हत्या करने के सिद्धदोषी थे। न्यायालय ने उन पर मृत्युदंड अधिरोपित नहीं किया, यद्यपि यह अभिनिर्धारित किया कि भयानक कार्यों ने इसे 'अत्यधिक रूप से विरल मामला' बना दिया था।[516] तथापि न्यायालय ने इस तर्क पर आजीवन कारावास अधिरोपित किया कि अपराध अज्ञानता और अंधविश्वास से प्रेरित था और जिन्हें कम करने वाली परिस्थितियां समझा गया था। इसके विरुद्ध सुशील मुरमू में जहां अभियुक्त मानव बलिदान के रूप में एक बालक की हत्या करने का सिद्धदोषी था, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अपराध की प्रकृति को देखते हुए, अपराधी 'के पास आधारभूत मानवता नहीं थी और उसके पास पूर्णरूप से ऐसे अंत:करण या मस्तिष्क की कमी थी, जिसमें कोई सुधार किया जा सके वह सुधार से परे था।'[517] यह कथन करते हुए कि अपराध 'मानवता के विरुद्ध ऐसे किसी अपराध की सीमा पर था, जो न केवल सही सोचने वाले व्यक्ति की , बल्कि न्यायालयों की चेतना को भी धक्का देने वाला सबसे बड़ी दुराचारिता का संकेतक था,'[518] न्यायालय ने कम करने वाले कारक के रूप में अंधविश्वास की प्रेरणा पर विचार करने से इंकार कर दिया। इसके स्थान पर उसने अभिनिर्धारित किया कि किसी भी परिमाण की अंधविश्वासिता का रंग किसी ऐसी हत्या के, जिसमें कोई उत्तेजना न दिलायी गई हो, पाप और अपराध को नहीं धो सकता और ऐसा किसी निर्दोष और रक्षा रहित बालक के मामले में तो और भी अधिक है।'[519] न्यायालय के लिए इस प्रकार का कोई मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' के रूप में माना जाने वाला एक उदाहरणात्मक और अत्यधिक उल्लेखनीय मामला है, जिसमें मृत्युदंडादेश नियम है और होना चाहिए, किसी भी प्रकार के बिना अपवाद के बिना।'[520] अत: समरूप परिस्थितियों में, जबकि एक मामले को मानव बलिदान के लिए तीन बालकों की हत्या को मृत्युदंड देने के लिए मांग न करने वाला पाया गया, दूसरे मामले में समान कारणों से एक बालक की हत्या को नियम के रूप में मृत्युदंड अधिरोपित करने वाला पाया गया।

घ. किसी भड़काने वाले कारक के रूप में अपराधी का पूर्व आपराधिक अभिलेख

5.2.42 जबकि न्यायालय ने बहुधा यह अवधारित करने में कि कोई व्यक्ति सुधार किए जाने योग्य है या नहीं, अपराधी के पूर्व आपराधिक अभिलेख को ध्यान में रखा है, उच्चतम न्यायालय ने संगीत और शंकर खादे में उन उदाहरणों की ओर संकेत किया जहां

---

[512] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65, पैरा 18 पर।

[513] रमेशभाई राठौर(2) बनाम गुजरात राज्य, (2011) 2 एससीसी 764, पैरा 8 पर।

[514] महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू, (2000) 6 एससीसी 269।

[515] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338।

[516] महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू, (2000) 6 एससीसी 269, पैरा 47 पर।

[517] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 22 पर।

[518] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 22 पर।

[519] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 22 पर।

[520] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 23 पर।

न्यायालय ने ऐसे मामलों को ध्यान में रखा था जो न्यायालयों के समक्ष केवल लंबित थे और अंतिम रूप से विनिश्चित नहीं किए गए थे ।[521] यह अभिनिर्धारित करते हुए की कि ऐसे लंबित मामलों पर मृत्युदंड अधिरोपित करने के विनिश्चय को आधारित करना निर्दोषिता की उपधारणा के सिद्धांत को नकारात्मक रूप में लेने के बराबर होगा, उच्चतम न्यायालय ने स्वीकार किया कि ये विनिश्चय भ्रामक थे ।[522]

5.2.43 ऐसा एक मामला सुशील मुरमू बनाम झारखंड राज्य[523] का था, जहां अपराध में मानव बलिदान के प्रयोजन के लिए हत्या अंतर्वलित थी। न्यायालय ने, मृत्युदंड अधिरोपित करने में 'अपराधी के आपराधिक झुकाव को, जो इस तथ्य से स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि विचारण के समय मानव बलिदान को अंतर्वलित करने वाले समरूप अभियोग विद्यमान थे' को ध्यान में रखा ।[524] यद्यपि न्यायालय ने इस बात को मान्यता दी कि उसके विरुद्ध अभियोगों को अभिलेख पर नहीं लाया गया था और इसलिए यह स्पष्ट नहीं था कि क्या अभियोगों के परिणामस्वरूप दोषसिद्धि हुई थी, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ' यह तथ्य कि ऐसे समरूप अभियोगों का, जो अभियुक्त–अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए थे, जिनके लिए वह विचारण का सामना कर रहा था, ध्यान से नहीं हटाए जा सकते हैं । '[525] इस आधार पर न्यायालय ने अभियुक्त पर मृत्युदंडादेश अधिरोपित किया।

5.2.44 समान रूप से बी.ए.उमेश बनाम महारजिस्ट्रार कर्नाटक उच्च न्यायालय[526] में, जहां अभियुक्त बलात्संग, हत्या और डकैती का सिद्धदोषी था, वहां उच्चतम न्यायालय ने उसको मृत्युदंड, अन्य बातों के साथ, इस आधार पर दिया कि वह पहले भी समरूप आचरण में लिप्त था और वर्तमान घटना के दो दिन पश्चात् समरूप अपराध का प्रयास करते हुए पकड़ा गया था । न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि 'अपीलार्थी का पूर्ववर्ती और उसका पश्चातवर्ती आचरण यह इंगित करता है कि वह समाज के लिए अभिशाप है और पुनर्वास के अयोग्य है ।'[527] जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने संगीत में स्वयं देखा कि उमेश के अन्य अपराध कर चुकने के अभिकथन कभी साबित नहीं हुए थे या अभिलेख पर नहीं लाए गए थे ।[528] इसके बावजूद इस विनिश्चय के विरूद्ध एक पुनर्विलोकन याचिका न्यायालय द्वारा खारिज की गई थी, जिसमें पुन: इस अभिकथन का निर्देश दिया गया था कि 'कोई पश्चाताप दर्शित करने से दूर, वह इस घटना के दो दिन के भीतर स्थानीय जनता द्वारा शीबा के घर में इसी प्रकार का अपराध करते हुए पकड़ा गया था ।'[529]

5.2.45 इस प्रकार जबकि एक तरफ, एक पंक्ति के मामलों में न्यायालय ने अपराधी के विरुद्ध लंबित (किन्तु विनिश्चय न किए गए) मामलों को ध्यान में रखा है, मामलों की दूसरी पंक्ति में, जिसके अंतर्गत संगीत और मो0 फारूख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य[530] हैं, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि जब तक कोई व्यक्ति किसी मामले में दोषी साबित नहीं हो जाता है तब तक उसे उसके विरुद्ध गुरुतरकारी कारक नहीं माना जाना चाहिए।

---

[521] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85 ; सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338 ; शिवु बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713 । इसे भी देखिए, गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 एससीसी 635 ।

[522] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452 ।

[523] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338।

[524] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 23 पर ।

[525] सुशील मुर्मू बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338, पैरा 23 पर ।

[526] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85 ।

[527] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85, पैरा 84 पर ।

[528] संगीत बनाम झारखंड राज्य, (2013) 2 एससीसी 452 ।

[529] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, पुनर्विलोकन याचिका (दं0) सं0 (एस). 2011 का 135-136, 2011 का अप. अपील सं0 285-286 ।

[530] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641 ।

ड. सुधार की संभावना

5.2.46 बचन सिंह में उच्चतम न्यायालय ने यह अपेक्षा की कि मृत्युदंड केवल उन अपवादात्मक 'विरले मामलों में से विरलतम' में अधिरोपित किया जाना चाहिए जहां 'आनुकलपिक विकल्प निशचित रूप से प्रतिबंधित है।'[531] उच्चतम न्यायालय ने बरियार में इस बात को मान्यता दी कि बचन सिंह विरचना के अधीन जीवन का विकल्प 'निशचित रूप से प्रतिबंधित' है और 'पूर्णरूप से निष्फल है', केवल तब जबकि सुधार के लिए दंड देने का उद्देश्य अप्राप्य होना कहा जा सकता है।'[532]

5.2.47 बचन सिंह ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 235(2) में दंडादेश पूर्व सुनवाई की अपेक्षा पर न्यायालयों के लिए यह अवधारित करने हेतु आवश्यक सूचना देने के लिए भरोसा किया कि मामले में कौन सी कम करने वाली परिस्थितियां, यदि कोई हो, विद्यमान थीं और इसलिए मामले में न्यायालय के अनुसार कौन सा समुचित दंड होगा। न्यायालय के अनुसार :

> धारा 235(2) विभाजित विचारण के लिए उपबंध करती है और विनिर्दिष्ट रूप से अभियुक्त व्यक्ति को दंडादेश पूर्व सुनवाई का अधिकार देती है, जिस प्रक्रम पर वह अभिलेख पर ऐसी सामग्री या साक्ष्य ला सकता है जो जांच के अधीन विशिष्ट अपराध से कठोरत: सुसंगत या संबंधित नहीं हो सकते हैं, तथापि, धारा 354(3) में रेखांकित नीति के अनुसार, दंडादेश के चयन पर प्रभाव रखता है। धारा 354(3) के साथ पठित धारा 235(2) से दृष्टव्य विद्यमान विधायी नीति यह है कि विभिन्न अपराधों के लिए, जिनके अंतर्गत दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध भी है, दंड की मात्रा नियत करने में या उसका चयन करने में, न्यायालयों को अपने विचारण को विशिष्ट अपराध से संबंधित परिस्थितियों तक ही मुख्य रूप से या केवल मात्र रूप से परिसीमित नहीं रखना चाहिए किन्तु अपराधी की परिस्थितियों पर भी सम्यक् विचार करना चाहिए।[533]

5.2.48 इस प्रकार बचन सिंह में 'विरले मामलों में से विरलतम' सूत्र का केंद्र बिन्दु अपराधी का सुधार करने की संभावना का निर्धारण है, जिसका अवधारण सुभिन्न दंडादेश पूर्व कार्यवाही के द्वारा, जहां साक्ष्य इस विवाद्यक पर लाया जा सकता है, किया जाना है।

5.2.49 बचन सिंह द्वारा पृष्ठांकित मानक पर ध्यान खींचते हुए कि राज्य को यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य को आगे लाना है कि सिद्धदोषी का सुधार या पुनर्वास नहीं किया जा सकता है और इस प्रकार वह समाज के लिए बराबर बना रहने वाला खतरा है।[534] बरियार ने अभिनिर्धारित किया कि 'न्यायालय को इस बारे में स्पष्ट साक्ष्य देना होगा कि सिद्धदोषी किसी भी प्रकार की सुधार और

---

[531] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 209 पर।

[532] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 66 पर ; मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2013) 3 एससीसी 294, पैरा 23

[533] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 209 पर। इसे भी देखिए अलाउद्दीन मियां बनाम बिहार राज्य, (1983) 3एससीसी 5, सभी विचारण न्यायालयों को, किसी अपराधी के दोषी होने का निर्णय सुनाने के पश्चात् दंडादेश के परिमाण पर सुनवाई को दूसरे दिन के लिए स्थगित कर देना चाहिए, जिससे कि दोनों अभियुक्त और अभियोजन दंडादेश के परिमाण के समर्थन में सामग्री प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकें।

[534] बचन सिंह में न्यायालय ने निम्नलिखित मानकों का अनुमोदन किया :

> (3) यह संभावना कि अभियुक्त हिंसा के आपराधिक कार्य नहीं करेगा क्योंकि वे समाज के लिए बराबर खतरा बनेंगे।
>
> (4) यह संभावना कि अपराधी का सुधार किया जा सकता है और उसका पुनर्वास किया जा सकता है। राज्य साक्ष्य द्वारा साबित करेगा कि अपराधी उपर्युक्त (3) और (4) की शर्तों का समाधान नहीं करता है।

पुनर्वास स्कीम के लिए क्यों उपयुक्त नहीं हैं।'[535] सुधार करने की संभावना के लिए इस प्रकार का साक्ष्य आधारित लेखा न्यायालय द्वारा दंड देने वाली प्रक्रिया में उद्देश्यपूर्णता का तत्व लाने के लिए आवश्यक समझा गया था।[536]

5.2.50 इस अपेक्षा पर न्यायालय द्वारा शंकर खादे में पुन: जोर दिया गया है कि राज्य को न केवल तर्कों द्वारा, किन्तु साक्ष्य द्वारा यह न्यायोचित ठहराना चाहिए कि मृत्यु का अपवादात्मक दंड मामले में केवल विकल्प है, । तथापि, बरियार को विरल रूप से अपनाया गया है, जो कि स्वयं भारत में मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र की चंचल प्रकृति का साक्षी है।[537] हाल में शंकर खादे, अनिल@एंथोनी अरिकस्वामी जोसेफ बनाम महाराष्ट्र राज्य[538] और बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य[539] में अन्य के साथ न्यायालय ने अपराधी की सुधार की संभावना के साक्ष्य आधारित निर्धारण की आवश्यकता पर जोर दिया है। तथापि, जैसा इन मामलों ने भी देखा है, 'बहुत बार, दंडादेश का अवधारण करते समय न्यायालय, किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों को देखते हुए यह मान लेते हैं कि अपराधी समाज के लिए अभिशाप होगा और सुधार तथा पुनर्वास की कोई संभावना नहीं है..... *'[540]*

5.2.51 एक उदाहरण मो0 मन्नन बनाम राज्य[541] का है, जहां अभियुक्त को बलात्संग और हत्या के लिए सिद्धदोषी ठहराया गया था। इस मामले में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि अपराधी 'समाज के लिए अभिशाप है और ऐसा ही बना रहेगा और उसका सुधार नहीं किया जा सकता है।'[542] संगीत में इस मामले पर ध्यान देते हुए उच्चतम न्यायालय ने यह देखा कि निर्णय किसी ऐसी सामग्री को दर्शित नहीं करता था, जिसके आधार पर न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि 'अपराधी समाज के लिए एक अभिशाप था और ' ऐसा बना रहेगा और उसका सुधार नहीं किया जा सकता'[543] यह मालूम होता था कि केवल एक कारक, जिस पर न्यायालय ने अपने निष्कर्ष को आधारित किया था, वह अपराध की प्रकृति थी। तथापि जैसा कि शंकर खादे में देखा गया था, अन्यथा समरूप तथ्यों में न्यायालय ने इस बात पर भिन्न निष्कर्ष निकाले थे कि क्या अभियुक्त सुधार किए जाने के योग्य था। अत: जबकि एक तरफ सुधार या पुनर्वास की संभावना को, बिना किसी विशेषज्ञ के साक्ष्य के, जयकुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य[544], बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय[545] और मो0 मन्नन बनाम बिहार राज्य[546] में खारिज कर दिया गया था, दूसरी तरफ पुन: बिना किसी विशेषज्ञ के साक्ष्य के, निर्मल सिंह बनाम हरियाण राज्य[547], मो0 चमन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र दिल्ली)[548], राजू बनाम

---

[535] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 66 पर।

[536] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498 ।

[537] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013)5 एससीसी 546, पैरा 46 पर (उन मामलों को सूचीबद्ध करते हुए, जहां इस पर कोई साक्ष्य नहीं दिया गया था कि क्या सुधार की संभावना 'निश्चित रूप से प्रतिबंधित' थी)।

[538] अनिल@एंथोनी अरिकस्वामी जोसेफ बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 69।

[539] बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2014) 3 एससीसी 421।

[540] अनिल@एंथोनी एरिक्स्वामी जोसेफ बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2014) 4 एससीसी 69, पैरा32 पर ; बिरजू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2014) 3 एससीसी 421।

[541] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65।

[542] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65, पैरा 18 पर।

[543] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452, पैरा 38 पर ।

[544] जय कुमार बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 5 एससीसी 1।

[545] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85।

[546] मो0 मन्नन खान बनाम बिहार राज्य, (2011) 8 एससीसी 65।

[547] निर्मल सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (1999) 3 एससीसी 670।

हरियाणा राज्य[549], बंटू बनाम मध्य प्रदेश राज्य[550], सुरेंद्र पाल शिवलकपाल बनाम गुजरात राज्य[551], राहुल बनाम महाराष्ट्र राज्य[552] और अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[553] में इस संभावना का लाभ दिया गया था।

(iii) प्रज्ञा के नियम

5.2.52 उच्चतम न्यायालय ने मो0 फारूख बनाम महाराष्ट्र राज्य[554] में, प्रणाली की भावी दोषिता की चिंताओं को संबोधित करने के लिए मृत्युदंड का अधिनिर्णय करने में अपनाए जाने वाले कतिपय 'प्रज्ञा के नियम' पर विचार-विमर्श किया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :

> इस विशिष्ट दंड में न्यायालय पर प्रक्रिया संबंधी न्यायिक अपेक्षाओं को, जो दोनों पुरानी विधि और परिपाटियों से प्रकट हो रही हैं, पूरा करने का भारी वजन है। प्रज्ञा के नियमों के अनुसार और सिद्धांत को दृष्टि में रखते हुए, न्यायालय ऐसे मामलों में, जो एकल रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हैं या जहां उच्च न्यायालय ने आजीवन कारावास या दोषमुक्ति दे दी है, मृत्युदंड के ऊपर आजीवन कारावास को प्राथमिकता देने का चयन कर सकता है।[555]

5.2.53 मृत्युदंड की सुभिन्न प्रकृति को ध्यान में रखते हुए न्यायालय ने इसलिए सावधान किया कि यह प्रज्ञा पूर्ण होगा कि एक तरफ परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित मामलों में और जहां निचले न्यायालयों ने आजीवन कारावास अधिरोपित किया है या दोषमुक्त कर दिया है, मृत्युदंड अधिरोपित करने से बचा जाए। तथापि, ऊपर विचार-विमर्श किए गए मामलों के समरूप इन प्रज्ञा के नियमों का पालन करने में कम सामंजस्य है।

क. परिस्थितिजन्य साक्ष्य

5.2.54 केवल परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित सिद्धदोषों की भावी भ्रमशीलता से संबंधित और इस तथ्य से अवगत कि मृत्युदंड का उलटा नहीं जा सकता है, न्यायालय ने विभिन्न मामलों में सावधान किया कि मृत्युदंड से साधारणतया बचा जाना चाहिए जबकि दोषसिद्धि एकल रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित हो। इस सिद्धांत का उदाहरण देते हुए कि ''अधिक गंभीर अपराध सबूत की डिग्री उतनी ही कठोर'[556], न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित ऐसे मामले

---

[548] मो0 चमन बनाम राज्य (दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र), (2001) 2 एससीसी 28।

[549] राजू बनाम हरियाणा राज्य, (2001) 9 एससीसी 615।

[550] बंटू बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2001) 9 एससीसी 615।

[551] सुरेन्द्र पाल शिवकुमारपाल बनाम गुजरात राज्य, (2005) 3 एससीसी 127।

[552] राहुल बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2005) 10 एससीसी 322।

[553] अमित बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2012) 4 एससीसी 107।

[554] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641।

[555] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 164 पर।

[556] मौसम सिन्हा राय बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2003) 12 एससीसी 377 ; शरद भिरदीचंद सरदा बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1984) 4 एससीसी 116 ; कशमीरा सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एआईआर 1962 एससी 159।

बाद में उनकी तुलना में, जो सबूत के जोड़े हुए स्रोतों पर आधारित हैं, गलत दोषसिद्ध होने के अधिक अवसर रखते हैं, 'प्रतीत होने वाले निश्चायक परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर' आधारित दोषसिद्धि को सुस्पष्ट घटना के रूप में परिकल्पित नहीं किया जाना चाहिए और यह तथ्य कि वह परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, दंड देने वाले प्रक्रम पर विचार-विमर्शों के दौरान निश्चित कारक होना चाहिए, यह विचार करते हुए कि मृत्युदंड अपनी पूर्ण अप्रतिसंहरणीयता में अद्वितीय है। विचारण की किसी भी ऐसी विशेषता को, जैसे दोषसिद्धि एकमात्र रूप से परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित है, जो आपराधिक गणना में अनिश्चितता के लिए योगदान देता है, हत्या के लिए अधिकतम दंड का विनिश्चय करते समय नकारात्मक ध्यान आकर्षित करना चाहिए।[557]

5.2.55 अत: सहदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[558], शेख ईशाक बनाम बिहार राज्य[559], आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[560], स्वामी श्रद्धानंद (2),[561] और भानु प्रसाद सिन्हा बनाम असम राज्य[562] में न्यायालय ने मृत्युदंड को, अन्य बातों के साथ, इस विचारण पर कि दोषसिद्धि परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित थी, अधिरोपित नहीं किया।

5.2.56 तथापि, इस सावधानी के बावजूद एक विरोधी पंक्ति के मामलों में न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित न करने के लिए आधार के रूप परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर विचार करने से स्पष्ट रूप से इंकार कर दिया है। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने शंकर खादे में, शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य[563], कामता तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य[564] और मोलाई बनाम मध्य प्रदेश राज्य[565] में देखा है, इस न्यायालय ने स्पष्ट रूप से इस विचार को नामंजूर कर दिया कि मृत्युदंड उस मामले में नहीं दिया जा सकता जहां साक्ष्य परिस्थितिजन्य हैं और अभिनिर्धारित किया कि '[गुरुतरकारी और कम करने वाली] परिस्थितियों के तुलनपत्र में, इस तथ्य की कोई भूमिका नहीं है कि मामला परिस्थितिजन्य साक्ष्य पर आधारित था।'[566]

ख. न्यायाधीशों के बीच दोषिता या दंडादेश पर असहमति

5.2.57 विरले मामलों में से विरलतम का सिद्धांत, मृत्युदंड के अधिरोपण के लिए बहुत ही संकीर्ण अंतर का, केवल अत्यधिक अपवादात्मक मामलों तक सीमित, उपबंध करता है। इस अत्यधिक संकीर्ण अपवाद से, यह आशा की जाएगी कि विभिन्न न्यायालयों के न्यायाधीश, जिन्होंने मामले को सुना है, इस बारे में कि मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' प्रवर्ग से संबंधित है या नहीं यह दर्शित

---

[557] कालू खान बनाम राजस्थान राज्य, दांडिक अपील 1891-1892/2014 तारीख 10.03.2015।

[558] सहदेव बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 10 एससीसी 682।

[559] शेख इश्क बनाम बिहार राज्य, (1995) 3 एससीसी 392।

[560] आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2007) 12 एससीसी 230।

[561] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767।

[562] भानु प्रसाद सिन्हा बनाम असम राज्य, (2007 11 एससीसी 467।

[563] शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008), 15 एससीसी 269।

[564] कामता तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 6 एसीसी 250।

[565] मोलाई बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1999) 9 एसीसी 681।

[566] शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008), 15 एससीसी 269, पैरा 27 पर।

करेंगे कि वे किसी मात्रा तक एकमत हैं।[567] आगे मृत्युदंड की उलटा न किए जाने योग्य प्रकृति को देखते हुए, यदि किसी न्यायाधीश को अपराधी की दोषिता के बारे में ही संदेह है, तो वह स्वयं मृत्युदंड न अधिरोपित करने के लिए आधार होना चाहिए।[568]

5.2.58 उच्चतम न्यायालय ने मो0 फारूख में इस दृष्टिकोण का अनुमोदन किया और अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के लागू करने में विषमता दूर करने के लिए और एकरूपता की एक मात्रा लाने के लिए, 'सर्वसम्मति से पहुंच'[569] को अंगीकार किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा मृत्युदंड केवल तब अधिरोपित किया जाना चाहिए यदि न्यायालय प्रणाली की विभिन्न श्रेणियों के बीच शीर्ष से और साथ ही न्यायपीठों के बीच एक स्तर पर सर्वसम्मति हो।

5.2.59 तथापि, जैसा कि पूर्व धाराओं में उल्लिखित मामलों में है, इस मुद्दे पर भी पूर्व निर्णयों में पर्याप्त विविधता विद्यमान है। उदाहरण के लिए एक तरफ उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश[570] का मामला और दूसरी तरफ महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश[571] का मामला लिया जा सकता है, पूर्ववर्ती में अभियुक्त को छह वर्ष की बालिका के साथ बलात्संग और उसकी हत्या के लिए आरोपित किया गया था और विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोषी ठहराया गया था तथा मृत्युदंडादेश दिया गया था किन्तु उच्च न्यायालय ने उसे दोषमुक्त कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय का आदेश प्रत्यावर्तित कर दिया और उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त की दोषिता के बारे में संदेह को ध्यान में रखे बिना अपराध की क्रूर और दुराचार पूर्ण प्रकृति के आधार पर मृत्युदंड अधिरोपित कर दिया। दूसरी तरफ सुरेश में भी 4 वर्ष की आयु की बालिका का बलात्कार और उसकी हत्या अंतर्वलित थी। यहां भी विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित किया था किन्तु उच्च न्यायालय ने उसे दोषमुक्त कर दिया। उच्चतम न्यायालय ने विचारण न्यायालय का दोषसिद्धि का आदेश प्रत्यावर्तित कर दिया और उसका मृत्युदंड अधिरोपित करने की ओर झुकाव था किन्तु उसने अभिनिर्धारित किया कि 'चूंकि अभियुक्त को एक बार उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था अत: हम इस तथ्य के बावजूद कि यह मामला विरले मामलों में से विरलतम के क्षेत्र के खतरनाक रूप से नजदीक है, उस चरम दंड को अधिरोपित करने से विरत रहते हैं।'[572]

5.2.60 समान रूप से जबकि लिक्ष्मा देवी बनाम राजस्थान राज्य[573], उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बाबू राम[574], महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू[575], महाराष्ट्र राज्य बनाम भरत फकीरा धीवर[576], तमिलनाडु राज्य बनाम सुरेश[577] और संतोष कुमार सिंह बनाम राज्य[578] में

---

[567] इस विचार का न्यायमूर्ति थामस द्वारा सुथेंद्र राजा उर्फ सुथेंथिरा राजा उर्फ संथान बनाम राज्य(1999) 9 एससीसी 323 में समर्थन किया गया था।('मेरी राय में यह एक उदाहरण बनाने के लिए ठोस प्रतिपादना होगी कि जब तीन न्यायाधीशों में से एक आजीवन कारावास के दंडादेश के अधिमान में कथित कारणों पर किसी अभियुक्त को मृत्युदंड देने से विरत रहता है तो उस तथ्य को यह मानने के लिए पर्याप्त माना जा सकता है कि वह विरले मामलों में से विरलतम की संकीर्ण परिधि के भीतर, जब आनुकलपिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित है, नहीं आता है')।

[568] इस विचार का, यद्यपि कम स्पष्टत: से मो0 फारूख अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य (2010) 14 एससीसी 641 और लिक्ष्मा देवी बनाम राजस्थान राज्य (1988) 4 एससीसी 456 में अनुमोदन किया गया है। ('जहां दो न्यायालयों द्वारा अभियुक्त की दोषिता के बारे में दो राय हैं, वहां साधारतया उचित दंडादेश मृत्यु नहीं किन्तु आजीवन कारावास होगा')।

[569] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 165 पर।

[570] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतीश, (2005) 3 एससीसी 114।

[571] महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश, (2000) 1 एससीसी 471।

[572] महाराष्ट्र राज्य बनाम सुरेश, (2000) 1 एससीसी 471, पैरा 29 पर।

[573] लिच्छम्मादेवी बनाम राजस्थान राज्य, (1988) 4 एससीसी 456।

[574] उत्तर प्रदेश राज्य बनाम बाबू राम, (2000) 4 एससीसी 515।

[575] महाराष्ट्र राज्य बनाम दामू, (2000) 6 एससीसी 269।

[576] महाराष्ट्र राज्य बनाम भरत फकीरा धीवर, (2002) 1 एससीसी 622।

उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित करने से इंकार कर दिया क्योंकि निचले न्यायालय ने अपराधी को दोषमुक्त कर दिया था; दूसरी तरफ राजस्थान राज्य बनाम खेरज राम[579], देवेंद्र पाल सिंह बनाम राज्य, राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली[580], और कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य[581], में न्यायाधीशों के अपराधी की दोषिता पर असहमत होने के बावजूद, मृत्युदंड दिया गया था। देवेंद्र पाल सिंह बनाम राज्य, राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र दिल्ली[582] में और कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य[583] में दोषिता के प्रश्न पर स्वयं उच्चतम न्यायालय के ज्येष्ठतम न्यायाधीश की असहमति थी।

5.2.61 समान चिंताएं बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय[584], अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य[585], रामदेव चौहान@ राजनाथ चौहान बनाम असम राज्य[586] जैसे मामलों में और कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य[587] में तीन अपीलार्थियों के मामले में उत्पन्न हुई थीं, जहां श्रेणियों और न्यायापीठों से परे न्यायाधीश अपराधियों की दोषिता पर सहमत थे, किन्तु इस पर नहीं थे कि मामला विरले मामलों में से विरलतम प्रवर्ग से संबंधित था। इस असहमति के बावजूद, उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित किया। रामदेव चौहान में, जहां उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश ने स्वयं अपराधी की अत्यधिक तरुण आयु के आधार पर आजीवन कारावास अधिरोपित किया था, बहुमत वाले एक न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह अपराधी के लिए कार्यपालिका से लघुकरण के लिए मांग करने के लिए एक आधार हो सकता है, किन्तु इससे न्यायालय द्वारा मृत्युदंड अधिरोपित किए जाने पर प्रभाव नहीं पड़ेगा। समान रूप से कृष्णा मोची में, जहां न्यायपीठ के ज्येष्ठतम न्यायाधीश ने अपीलार्थी को दोषमुक्त कर दिया था और तीन पर आजीवन कारावास अधिरोपित किया था, सभी चारों को बहुमत द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। इन मामलों के विरोध में मयंकर बलदेव सरदार बनाम महाराष्ट्र राज्य[588] में, जबकि न्यायालय ने यह पाया कि मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' मानक को पूरा करता था, उसने मृत्युदंड अधिरोपित करने से केवल इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि उच्च न्यायालय ने अभियुक्त पर आजीवन कारावास अधिरोपित किया था।

5.2.62 उन मामलों में अतिरिक्त चिंताए उत्पन्न होती हैं, जहां उच्चतम न्यायालय मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए पहला न्यायालय है, 1984 में राष्ट्रसंघ आर्थिक और सामाजिक परिषद् ने उन व्यक्तियों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे थे, अधिकारों के संरक्षण की गारंटी देने वाले कतिपय रक्षोपाय अंगीकार किए थे,[589] जिनका संयुक्त राष्ट्रसंघ महासभा द्वारा सर्वसम्मति से अनुमोदन किया था, इन

---

[577] तमिलनाडु राज्य सुरेश, (1998) 2 एससीसी 372।

[578] संतोष कुमार सिंह बनाम राज्य, (2010) 9 एससीसी 747।

[579] राजस्थान राज्य बनाम खेरज राम, (2003) 8 एससीसी 224।

[580] देवेन्दर पाल सिंह बनाम राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, (2002) 5 एससीसी 234।

[581] कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एससीसी 81।

[582] देवेन्दर पाल सिंह बनाम राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, (2002) 5 एससीसी 234।

[583] कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एससीसी 81।

[584] बी.ए. उमेश बनाम महारजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85।

[585] अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 667।

[586] राम देव चौहान @ राज नाथ चौहान बनाम असम राज्य, (2000) 7 एससीसी 455।

[587] कृष्णा मोची बनाम बिहार राज्य, (2002) 6 एससीसी 81।

[588] (2007) 12 एससीसी 654।

[589] 25 मई, 1984 का संकल्प 1984/50।

रक्षोपायों के अनुसार 'मृत्यु से दंडादिष्ट किसी व्यक्ति को उच्चतर अधिकारिता वाले न्यायालय को अपील करने का अधिकार होगा और यह सुनिश्चित करने के लिए उपाय किए जाने चाहिए कि ऐसी अपीलें आज्ञापक होंगी।'[590]

5.2.63 भारत की अंतरराष्ट्रीय बाध्यताओं के अधीन इसलिए मृत्यु से दंडादिष्ट किसी व्यक्ति को मृत्युदंडादेश के अधिरोपण से अपील करने का अधिकार है और राज्य के लिए यह बाध्यता होगी कि वह ऐसा अपीलीय मंच प्रदान करे। तथापि, जहां मृत्युदंड उच्चतम न्यायालय के स्तर पर पहली बार अधिरोपित किया जाता है, वहां यह अधिकार नकारात्मक हो जाता है। उदाहरण के लिए साइमन बनाम कर्नाटक राज्य[591] ले सकते हैं। इस मामले में 4 व्यक्तियों को मृतयुदंड से दोषसिद्ध किया गया था। इस मामले का विचारण आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप संबंधी न्यायालय द्वारा किया गया था और उसकी पहली और केवल मात्र अपील उच्चतम न्यायालय के समक्ष थी। आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप संबंधी न्यायालय ने अपराधी को दोषसिद्ध ठहराया और उन्हें आजीवन कारावास का दंड दे दिया। दोषसिद्धों ने इस विनिश्चय की उच्चतम न्यायालय को अपील की। राज्य द्वारा या पीड़ितों द्वारा दंडादेश की वृद्धि के लिए कोई अपील फाइल नहीं की गई थी ।तथापि उच्चतम न्यायालय ने स्वप्रेरणा से 4 अपीलार्थियों का दंड बढ़ाकर मृत्यु कर दिया। अत: उच्चतम न्यायालय पहला और केवल न्यायालय था, जिसने मृत्युदंड अधिरोपित किया। अपराधियों के पास विनिश्चय से अपील करने के लिए कोई उपलब्ध मंच नहीं था। इस संबंध में यह देखा गया है कि आयोग ने अपनी 187वीं रिपोर्ट में, यह सिफारिश की थी कि 'जहां उच्चतम न्यायालय किसी मामले में यह समझता है कि दोषमुक्ति गलत है और अभियुक्त को दोषसिद्ध ठहराया जाना चाहिए और मृत्युदंड दिया जाना चाहिए ; या वह समझता है कि किसी अवधि के लिए दंड या आजीवन कारावास का दंड बढ़ाकर मृत्युदंड किया जाना है, तो उच्चतम न्यायालय मामले को माननीय भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के समक्ष कम से कम 5 न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा सुनवाई के लिए रखे जाने के लिए निदेशित कर सकता है। इसमें उच्चतम न्यायालय के नियमों को संशोधित किया जाना भी अपेक्षित है।'[592] तथापि, इस सिफारिश को कार्यान्वित नहीं किया गया है।

5.2.64 समरूप तथ्य वाली स्थितियों में असमान व्यवहार के बारे में दूसरी चिंता उन मामलों में उठती है, जहां सह अभियुक्त, जो अपराध में समान भूमिका करने वाले अभियुक्त है, उनके साथ भिन्न व्यवहार किया जाता है, उदाहरण के लिए एक ही प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में, जो कृष्णा मोची में अभियुक्त की दोषसिद्धि और मृत्युदंड का आधार थीं, ब्यासराम को भी नामित किया गया था और उस पर भी उसी भूमिका का आरोपण किया गया था।[593] उसके मामले पर पृथक् रूप से विचार किया गया था। उच्चतम न्यायालय के समक्ष, न्यायाधीशों ने अपराधी को दोषसिद्ध ठहराने के लिए कृष्णा मोची वाले निर्णय से तथ्यों पर भरोसा किया। तथापि, यह देखते हुए कि कृष्णा मोची में एक अभियुक्त की दोषिता के प्रश्न पर और अन्य तीन अपराधियों को मृत्युदंड दिए जाने की समुचितता के प्रश्न पर विसम्मति थी, न्यायालय ने ब्यासराम में मृत्युदंड अधिरोपित करने से इंकार कर दिया। इसलिए यद्यपि, कृष्णा मोची और उसके दो सह अभियुक्तों को उनके पक्ष में विसम्मत निर्णय के बावजूद मृत्युदंड दिया गया था, ब्यासराम को उसी निर्णय के आधार पर आजीवन कारावास दिया गया था।

5.2.65 ये मामले उस दूसरे मामले को प्रतिध्वनित करते हैं, जिसको न्यायाधीश भगवती द्वारा 'मृत्युदंड अधिरोपित करने में सनकीपन के उदाहरण'[594] के रूप में बचन सिंह में अपनी विसम्मति में महत्वपूर्ण रूप से लिखा गया था। हरवंश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में[595] तीन अभियुक्त –जीता सिंह, कश्मीरा सिंह और हरवंश सिंह सम्मिलित थे। सभी तीनों को इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा चार

---

[590] 25 मई, 1984 का संकल्प 1984/50।

[591] साइमन बनाम कर्नाटक राज्य, (2004) 1 एससीसी 74।

[592] भारत का विधि आयोग, 187वीं रिपोर्ट, 2013 http://lawcommissionofindia.nic.in/reports/187th%20 report.pdf पर उपलब्ध (25.08.2015 को अंतिम बार अवलोकन किया गया)।

[593] व्यास राम बनाम बिहार राज्य, 2013(12) एससीसी 349।

[594] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1982) 3 एससीसी 24, पैरा 71 पर।

[595] हरबंस सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1982) 2 एससीसी 101।

व्यक्तियों के एक परिवार की हत्या में समान भाग लेने के लिए मृत्युदंड दिया गया था। प्रत्येक व्यक्ति ने उच्चतम न्यायालय में पृथक् अपील की। जीता सिंह की विशेष इजाजत याचिका एक न्यायपीठ के समक्ष आई और उसने उसे खारिज कर दिया। उसे फांसी दे दी गई। कश्मीरा सिंह की विशेष इजाजत याचिका एक भिन्न न्यायपीठ के समक्ष रखी गई और उसे इजाजत प्रदान कर दी गई और तत्पश्चात् उसका दंड आजीवन कारावास करके लघुकृत कर दिया गया। हरवंश सिंह की विशेष इजाजत याचिका एक अन्य न्यायपीठ के समक्ष आई। इजाजत नामंजूर कर दी गई और एक पुनर्विलोकन याचिका भी खारिज कर दी गई। हरवंश सिंह को जीता सिंह के साथ फांसी लगायी जानी थी। तथापि उसने उच्चतम न्यायालय के समक्ष रिट याचिका फाइल की और उसकी फांसी पर रोक आदेश दिया गया। जब रिट याचिका सुनी गई, तब न्यायपीठ को कृष्णा सिंह के लघुकरण के बारे में पता लगा।न्यायमूर्ति भगवती के अनुसार बचन सिंह में,

> यह एक विशिष्ट मामला है, जो मृत्युदंड अधिरोपित करने में न्यायिक उच्छृंखलताओं का उदाहरण प्रस्तुत करता है और अपनी सभी क्रूर और दृढ़ वास्तविकताओं में प्रदर्शित करता है कि मृत्युदंड का दिया जाना कैसे न्यायपीठ की विरचना द्वारा प्रभावित होता है..... यह प्रश्न अभियुक्त द्वारा पूछा जा सकता है : मुझे उस तरीके पर निर्भर रहते हुए, जिसमें समय-समय पर न्यायपीठों का गठन किया जाता है, क्या जीवित रहना है या मरना है ? क्या यह स्पष्ट रूप से अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित मूल अधिकारों की प्रत्याभूतियों का अतिक्रमण नहीं है।[596]

[596] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1982) 3 एससीसी 24, पैरा 71 पर।

(iv) मृत्युदंड के अधिरोपण पर आनुभविक आंकड़े

क. मृत्युदंड के अधिरोपण की दरें

5.2.66 राष्ट्रीय परामर्श पर प्रस्तुत किए गए और लोक परामर्श के उत्तर में विधि आयोग को प्रस्तुत किए गए आंकड़े मृत्युदंड के असंगत, मनमाने और न्यायाधीश-केंद्रित रूप से लागू होने के दृश्य को भी सिद्ध करते हैं।

5.2.67 राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो द्वारा मृत्युदंड पर एकत्रित किए गए आंकड़े इंगित करते हैं कि 2000 और 2012 की अवधि में 1,677 मृत्युदंड भारतीय न्यायालयों द्वारा अधिरोपित किए गए थे। जैसा कि राष्ट्रीय परामर्श में कुछ भाग लेने वालों द्वारा उल्लेख किया गया था कि यह इंगित करता है कि भारत प्रतिवर्ष औसतन 129 व्यक्तियों को मृत्यु पंक्ति में भेजता है, या मोटे रूप से प्रति तीसरे दिन एक व्यक्ति को भेजता है। खादे में, उच्चतम न्यायालय ने इन आंकड़ों पर विचार किया और कहा कि यह संख्या खतरनाक रूप से ऊंची थी और यह सुझाव देती प्रतीत होती है कि मृत्युदंड उससे अधिक विस्तृत रूप में लागू किया जा रहा है जो बचन सिंह में परिकलपित था।[597]

5.2.68 उसी समयावधि के दौरान हत्या के लिए समग्र दोषसिद्धियों के संबंध में अधिरोपित मृत्युदंड पर राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़ों का पास में रखना अन्य उपयोगी, यद्यपि सदृश अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।[598] ये आंकड़े प्रदर्शित करते हैं कि 2004 से 2012 की अवधि के दौरान हत्या अंतर्वलित करने वाले 180439 मामलों में न्यायालयों द्वारा दोषसिद्धियां अभिलिखित की गई थीं। उसी अवधि के दौरान मृत्युदंड के 1178 मामलों में, अर्थात् हत्या के लिए दोषसिद्धि अंतर्वलित करने वाले 0.65 प्रतिशत मामलों में मृत्युदंड अधिरोपित किया गया था। पूर्ण संख्याओं में यह एक बड़ा अंक है, जैसा उच्चतम न्यायालय द्वारा खादे में माना गया है। इसके अतिरिक्त मृत्युदंड के अधिरोपण में मनमानेपन और असंगतता को देखते हुए, श्रद्धानंद (2)[599] में उठाया गया प्रश्न पुनरावृतति करता है :

> यदि समान मामलों या अधिक विद्रोही प्रकति के हत्या के मामलों में अपराधी मृत्युदंड से बच गए या कुछ मामलों में आपराधिक न्याय प्रणाली से भी पूर्णत: बचने में समर्थ हो गए, तो वहां सिद्धदोष व्यक्ति का चयन करना और निचले न्यायालयों द्वारा उसे दिए गए मृत्युदंड की पुष्टि करना, केवल इसलिए कि वह न्यायालय के समक्ष आ गया है, अत्यधिक अयुक्तिपूर्ण और अन्यायपूर्ण होगा। किन्तु किसी मामले को इस दृष्टि से देखने के लिए इस न्यायालय के पास तुलना के लिए कोई क्षेत्र नहीं है। यह न्यायालय केवल उन मामलों में से, जो उसके पास विचारण न्यायालय द्वारा दिए गए और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए गए मृत्यु के दंड के साथ आते हैं, मामलों का 'विरले मामलों में से विरलतम' या किसी 'अपवादात्मक मामले' या किसी अत्यधिक गंभीर मामले के रूप में निर्णय करने की स्थिति में होता है। वे सभी मामले, जो 'विरले मामलों में से विरलतम' के रूप में अर्हन हो सकते हैं और जो मृत्युदंड का समर्थन कर सकते हैं किन्तु जिनमें मृत्युदंड विचारण न्यायालय या उच्च न्यायालय द्वारा निर्णय की गलती के कारण वास्तव में नहीं दिया गया है, तुलना के क्षेत्र से स्वत: बाहर हो जाते हैं। अधिक महत्वपूर्ण मामले निकृष्टतम प्रकार के हत्या के मामले हैं और उनकी संख्या किसी भी प्रकार कम

---

[597] दिए गए मृत्युदंडों की संख्या यद्यपि बड़ी है जो यह स्पष्ट बनाती है कि मृत्युदंड वास्तव में विरले मामलों में से विरलतम में ही दिया जा रहा है। शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546।

[598] अपर्णा चन्द्र, मृणाल सतीश, वृंदा भंडारी और राधिका चितकारा, तुला पर लटके हुए : मृत्युदंड के अधिनिर्णयन पर भारत में मनमानापन (1950-2013) (2015 फाइल पर उपलब्ध है)। संख्याएं केवल लगभग अंतर्दृष्टि देती हैं क्योंकि दोषसिद्धि की दरें हत्या के लिए हैं, मृत्युदंड के आंकड़ों में गैर हत्या वाले मृत्यु से दंडनीय अपराधों के लिए अधिरोपित दंडादेश भी लेखे में लिए जा सकते हैं। चूंकि बहुत कम मृत्युदंडादेश ऐसे अपराधों में अधिरोपित किए गए हैं जिनमें हत्या अंतर्वलित नहीं है, हत्या की इन लगभग और वास्तविक संख्या के बीच अंतर मृत्युदंड से संबंधित है, जो उपेक्षणीय होगा।

[599] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767।

नहीं है, जिनमें अपराधी, यद्यपि वह पहचान योग्य है, किसी भी प्रकार से दंड बचने का प्रबंध कर लेता है या बहुत हल्का दंड भुगत कर बाहर निकल आता है। ऐसे मामले उन मामलों के साथ, जिनके बारे में यह न्यायालय मृत्युदंड की पुष्टि करने के लिए विचार कर रहा हो, तुलना के लिए कभी सामने नहीं आते हैं। कहने के लिए यह इस कारण से है क्योंकि आपराधिक न्याय प्रणाली, जिसका न्यायालय एक भाग है, सौ प्रतिशत कुशलता से या उसके आसपास भी, कार्य नहीं करती है। यह कहने के लिए कुछ असाधारण, नया या मौलिक नहीं है। किन्तु विषय बिंदु यह है कि इस न्यायालय को, जो देश का सर्वोच्च न्यायालय होते हुए ऐसी आपराधिक न्याय प्रणाली की अध्यक्षता कर रहा है , जो हत्या के अत्यधिक खतरनाक और विद्रोही किस्म के अपराधियों के भाग जाने की अनुज्ञा दे देती है, मृत्युदंड के बारे में कार्यवाही करते समय अत्यधिक सावधान होना चाहिए।[600]

5.2.69 दूसरे शब्दों में कैसे देश में कोई न्यायालय यह अवधारित कर सकता है कि उसके समक्ष मामले 'विरले मामलों में से विरलतम' हैं। प्रत्येक न्यायाधीश अपने विश्लेषण को उन मामलों तक, जिनमें वह पीठासीन हुआ है या जिन्हें उसने पढ़ा है, सीमित कर सकता है, मामलों की बड़ी संख्या को ध्यान में रखते हुए यह अवधारणा कि एक या दूसरा मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' है, कुछ नहीं किन्तु एक विधिक कल्पना रह जाएगा। क्या कोई विधि, जो विधिक कल्पना के आधार पर जीवन लेने की अनुज्ञा देती है, संविधान के पाठ और आत्मा के अनुरूप है, इसका अन्वेषण किए जाने की आवश्यकता है।

5.2.70 मृत्युदंड के अत्यधिक उपयोग से दूसरे आंकड़े प्रकट होते हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा मृत्युदंड मुकदमेबाजी क्लीनिक, राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली को दिए गए और राष्ट्रीय परामर्श में प्रस्तुत किए गए आंकड़े दर्शित करते हैं कि 2000-2015 के बीच विचारण न्यायालयों ने 1790 व्यक्तियों पर मृत्युदंड अधिरोपित किया है।[601] इनमें से 1512 मामले उच्च न्यायालय द्वारा विनिश्चित किए गए थे। शेष या तो अभी तक लंबित हैं या उनके निर्णय पता नहीं लगे हैं। 1512 मामलों के 62.8 प्रतिशत में अपीलीय न्यायालय ने दंड को लघुकृत कर दिया। अर्थात् यद्यपि अपीलीय न्यायालय विचारण न्यायालय के साथ दोषसिद्धि पर सहमत थे, किन्तु न्यायालयों ने दंड देने वाले अवधारण को नामंजूर कर दिया। दूसरे 28.9 प्रतिशत मामले, जहां विचारण न्यायालय ने मृत्युदंड दिया था या मोटे रूप से एक-तिहाई मामले, जिनमें दोषमुक्ति हुई थी, निचले न्यायालयों में न्यायनिर्णयन की गुणवत्ता से संबंधित इससे भी अधिक गहरी प्रणाली संबंधी समस्या की ओर संकेत करते हैं। समग्र रूप से मृत्युदंड की केवल 4.3 प्रतिशत मामलों में पुष्टि की गई थी। उच्चतम न्यायालय के आंकड़े इस प्रकार दर्शित करते हैं कि 95.7 प्रतिशत मामलों में विचारण न्यायालयों ने गलती से मृत्युदंड अधिरोपित करते हैं।

ख. 'न्यायाधीश – केंद्रित' मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र

5.2.71 प्रो0 ब्लैकशील्ड द्वारा 1970 में की गई मृत्युदंड की आनुभविक परीक्षा विशिष्ट रूप से उन दिनों में मृत्युदंड के लागू करने में न्यायाधीश-केंद्रित प्रकृति का उल्लेख करती है। इस अध्ययन में 1972-1976 के बीच उच्चतम न्यायालय के 70 विनिश्चयों का विश्लेषण किया गया था जहां न्यायालय को आजीवन कारावास या मृत्युदंड के बीच विनिश्चय करना था। लेखक को उस समय न्यायाधीश केंद्रित दंडादेश का साक्ष्य मिला, जब वह यह देख रहा था कि बहुत बड़ी संख्या में मृत्युदंड न्यायमूर्ति वैद्यलिंगम दुआ और अलाइगिरि स्वामी से मिलकर बनी न्यायपीठों द्वारा दिए गए थे और उनकी पुष्टि की गई थी।[602] आगे ब्लैकशील्ड ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विचार में लाए गए कई गुरुतरकारी और कम करने वाले कारकों का भी विश्लेषण किया और उसको लागू करने में

---

[600] स्वामी श्रद्धानंद (2) बनाम कर्नाटक राज्य, (2008) 13 एससीसी 767, पैरा 45 पर।

[601] यह आंकड़ा टाडा मामलों में सम्मिलित नहीं है।

[602] ए.आर. ब्लैकशीड, भारत में मृत्युदंड, 21(2) भारतीय विधि संस्थान का जरनल, 156-158 (अप्रैल-जून, 1979)

न्यायालय के दृष्टिकोण में कोई सामंजस्य नहीं मिला। जबकि दंड दिए जाने के पश्चात् विलंब को 5 मामलों में महत्व दिया गया था, दूसरे 5 में उसे छोड़ दिया गया था। समान रूप से अपराधी की तरुण आयु का दो मामलों में सम्यक् ध्यान रखा गया था किन्तु दूसरे मामले में उसे छोड़ दिया गया था। अपराधी-अपीलार्थी के 'अनैतिक' संबंध को दो मामलों में कम करने वाले कारक के रूप में और एक मामलें में गुरुतरकारी कारक के रूप में माना गया था।[603] ऊपर निर्दिष्ट की गई न्यायमूर्ति भगवती की विसम्मति, प्रो0 ब्लैकशील्ड के अनुसंधान और मृत्युदंड की वर्तमान स्थिति के बीच समानताएं आश्चर्यजनक हैं।

5.2.72 न्यायमूर्ति भगवती की चिंता कि मृत्युदंड मामले के तथ्यों पर नहीं किन्तु न्यायपीठ की विरचना पर निर्भर करता है, उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल में की गई इन स्वीकारोक्तियों में प्रतिध्वनित होती है कि मृत्युदंड का अधिरोपण 'न्यायाधीश-केंद्रित' है।[604] आगे इस चिंता की पुष्टि उस अनुसंधान द्वारा होती है जिसे मृत्युदंड संबंधी मामलों के परिणाम पर न्यायिक चेतना के प्रभाव की परीक्षा करते हुए राष्ट्रीय परामर्श में प्रस्तुत किया गया था। 2000 के पश्चात् उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश ने 30 मामलों में से 14 में (जिनमें से 2 में उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्ति की गई थी, 2 में आजीवन कारावासों को मृत्यु में परिवर्तित कर दिया गया था और 2 में उच्चतम न्यायालय के दूसरे न्यायाधीश द्वारा दोषमुक्त किए जाने के बावजूद मृत्युदंड अधिरोपित किया गया था) मृत्युदंड अधिरोपित किया। प्रसंगानुसार, मृत्युदंड अधिरोपित करने वाले इन 15 मामलों में से 5 उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं अनवधानता से विनिश्चित किए गए घोषित किए गए हैं। एक दूसरे न्यायाधीश ने 18 में से 8 में मृत्युदंड अधिरोपित किया, जबकि 2 अन्य न्यायाधीशों ने क्रमश: 10 और 16 मामलों का अधिनिर्णयन करने में कोई मृत्युदंड अधिरोपित नहीं किया।[605]

5.2.73 ये अध्ययन और उदाहरण भारत में 'सिद्धांतपूर्ण दंड देने' की सीमित संभावना को दर्शित करते हैं, जो कि भारत में मृत्युदंड की संवैधानिकता के लिए निहित परिकल्पना है।

ग. भौगोलिक विभिन्नताएं

5.2.74 ऊपर उद्धत राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो के आंकड़े मृत्युदंड संबंधी न्यायशास्त्र में असमानता की दूसरी धुरी की तरफ संकेत करते हैं। जब राज्य वार उन्हें अलग-अलग किया गया तो 2004-12 की अवधि में हत्या के लिए दोषसिद्धि की दर की प्रतिशतता के रूप में मृत्युदंडों के अधिरोपण की दर राज्य वार महत्वपूर्ण असमानता दर्शित करती है। उदाहरण के लिए केरल में हत्या के सिद्धदोष की मृत्युदंड पाने की संभावना एक साथ रखते हुए देश के शेष भागों से लगभग दुगुनी है ; झारखंड में हत्या के सिद्धदोषी की मृत्युदंड पाने की संभावना देश के शेष भागों की तुलना में 2.4 गुनी है, गुजरात में 2.5 गुनी, पश्चिम बंगाल में 3 गुनी, कर्नाटक में 3.2 गुनी, दिल्ली में 6 गुनी और जम्मू-कश्मीर में 6.8 गुनी है। कर्नाटक में हत्या के सिद्धदोषी की मृत्युदंड पाने की संभावना तमिलनाडु की तुलना में 5.8 गुना है। गुजरात में हत्या के सिद्धदोषी की मृत्युदंड पाने की संभावना राजस्थान में एक सिद्धदोष से 5.8 गुना है। महाराष्ट्र, हत्या के दोषसिद्धों को मध्य प्रदेश से 2.9 गुना अधिक आवृतति में मृत्यु पंक्ति में भेजता है। उत्तर प्रदेश सबसे अधिक संख्या में व्यक्तियों को मृत्यु पंक्ति में भेजता है किन्तु हत्या के लिए दोषसिद्धि की दर के अनुपात के रूप में यह राष्ट्रीय औसत के लगभग बराबर है

[603] ए.आर. ब्लैकशीड, भारत में मृत्युदंड, 21(2) भारतीय विधि संस्थान का जरनल, 156-158 (अप्रैल-जून, 1979)

[604] संगीत बनाम हरियाणा राज्य, (2013) 2 एससीसी 452, पैरा 33 पर ।

[605] राष्ट्रीय परामर्श पर डा0 युग मोहित चौधरी द्वारा तैयार किया गया निरुपण (फाइल पर)।

। कर्नाटक इस अवधि में मृत्यु पंक्ति में भेजने के लिए दूसरा सबसे बड़ा योगदान करने वाला था और उसकी मृत्युदंड दर राष्ट्रीय औसत से 3.2 गुनी थी।[606]

ग. आपराधिक न्याय प्रक्रिया की व्यवस्था संबंधी और विरचना संबंधी चिंताएं

5.3.1 मृत्युदंड के अत्यधिक और मनमाने प्रयोग के संबंध में चिंताओं से पृथक् आंकड़े दर्शित करते हैं कि मृत्युदंड के अधिरोपण में असमानता है, जो व्यवस्था संबंधी और विरचना संबंधी, विशेष रूप से सामाजिक और आर्थिक रूप से हासिए पर व्यक्तियों की असुविधाओं को प्रतिबिंबित करती हैं।

(i) सुधार करने की क्षमता का निर्धारण करना

5.3.2 बचन सिंह सूत्र न्यायाधीशों से केवल तब मृत्युदंड अधिरोपित करने की अपेक्षा करता है जबकि जीवन का विकल्प 'निश्चित रूप से प्रतिबंधित'हो।[607] यहां अवधारण करने के लिए न्यायाधीशों से इस पर विचार करने की अपेक्षा की जाती है कि क्या अपराधी सुधार किए जाने के योग्य है। निश्चित रूप से बचन सिंह ने इस मानक का अनुमोदन किया कि अभियोजन को मुख्य साक्ष्य द्वारा यह साबित करना चाहिए की अपराधी का सुधार नहीं किया जा सकता है।[608]

5.3.3 जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने पश्चातवर्ती देखा कि संदेहों के बजाय मुख्य साक्ष्य के माध्यम से सुधार करने की संभावना का अवधारण करने के लिए इस व्यादेश को बहुत कम अपनाया गया है।[609] बहुधा, न्यायाधीश मूल्यांकन करने के बजाय यह कहते हैं कि क्या किसी व्यक्ति के समाज के लिए बराबर अभिशाप बने रहने की संभावना है ; क्या वह सुधार किए जाने के योग्य है और इसलिए क्या उसके जीवन को बचा देना 'निश्चित रूप से प्रतिबंधित' है।[610] कैसे न्यायाधीश अपराधी की भावी प्रवृततियों को पहले से बता सकते हैं, जब वे विशेष रूप से (यद्यपि केवल यही नहीं) अन्यथा समरूप तथ्य वाली स्थितियों में यह पाते हैं कि एक मामले में अपराधी के समाज के लिए अभिशाप होने की संभावना नहीं थी और दूसरे में थी ? तुलनात्मक अनुभव और निश्चायक रूप से हमारा अपना इतिहास ऐसे निर्धारण करने के बारे में हमें सावधान करता है।

5.3.4 बहुत से अध्ययनों ने, जिन्हें अब अविश्वसनीय माना गया है, यह अवधारित करने का प्रयास किया है कि कतिपय व्यक्तियों या समूहों को उनकी आपराधिक रुचियों या अन्य प्रवृततियों के अनुसार चरित्र, चित्रित और प्रवर्गीकृत किया जा सकता है। इस प्रकार के अध्ययनों ने, उदाहरण के लिए, यह दर्शित करने का प्रयास किया था कि श्वेतों का 'अवर' जातियों जैसे ब्लैकों से बड़ा मस्तिष्क था और इस प्रकार वे अधिक बुद्धिमान थे । तथापि, स्टीफेन जे. गोल्ड ने, जिसने पिछले 150 वर्षों में मस्तिष्क के आकार से बुद्धिमानता को संबंधित करने के कुछ 'वैज्ञानिक' प्रयासों का अध्ययन किया, यह साबित किया कि ये प्रयास असफल थे।[611] कुछ कार्यों में उसने अध्ययन किया कि प्रयोग की गई पद्धतियां गंभीर रूप से दोषपूर्ण थीं। दूसरों में इन वैज्ञानिकों के विद्यमान पूर्वाग्रहों ने इस बात को प्रभावी

---

[606] देखिए अपर्णा चन्द्र, मृणाल सतीश, वृंदा भंडारी और राधिका चितकारा, तुला पर लटके हुए : मृत्युदंड के अधिनिर्णयन पर भारत में मनमानापन (1950-2013) (2015 फाइल पर उपलब्ध है)।

[607] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1980) 2 एससीसी 684, पैरा 209 पर।

[608] ऊपर चर्चा देखिए।

[609] संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498।

[610] ऊपर चर्चा देखिए।

[611] स्टीफेन जेय गाउल्ड, दि मिसमेजर आफ मैन, 56 (1996)।

किया कि कैसे उन्होंने अपने आंकड़ों का चयन और विश्लेषण किया। किन्तु निश्चित रूप से गोल्ड ने इन अध्ययनों में एक प्रवृतति को देखा, जो अमूर्त पूर्वाग्रहों-यहां-यह कि ब्लैक अवर हैं- तथ्यों में संपरिवर्तित करने की थी, जिससे कि कोई जनता के बीच ऐसे प्रभाग बना सके और भिन्नताएं ला सके, जिसका कि हमारी सांस्कृतिक और राजनीतिक प्रणाली आदेश दे।'[612]

5.3.5 भारतीय इतिहास जनता को वर्गीकृत करने के समान समस्यामूलक प्रयासों को प्रतिध्वनित करता है। 1871 में, उदाहरण के लिए ब्रिटिश ने 'क्रिमिनल ट्राइब्स ऐक्ट' पारित किया। इस अधिनियम के पीछे प्रेरक धारणा 'इस जनजाति के सभी सदस्यों को भावी अपराधियों के रूप में मानने की थी'।[613] इस अधिनियम ने नाम से लगभग 150 जनजातियों को सूचीबद्ध किया।[614] यदि किसी व्यक्ति ने इन जनजातियों में से एक में जन्म लिया था, तो वह व्यक्ति जन्म से और परिभाषा से अपराधी होगा। इस विधेयक को, जो कि 1871 का ऐक्ट बना, पुर:स्थापित करते समय, टी.वी. स्टीफेन्स, ब्रिटेन की लॉ और आर्डर कमीशन के सदस्य ने कहा कि ऐसी जनजातियां 'अविस्मरणीय समय से अपराधी थीं.....उनके भाग्य में जाति प्रथा से अपराध करना लिखा हुआ था और उनकी संतानें विधि के विरुद्ध तब तक अपराधी होंगी जब तक कि संपूर्ण जनजाति का उन्मूलन नहीं कर दिया जाता है या उनको ठगों की रीति से किसी के लेखे में सम्मिलित नहीं कर लिया जाता है……मैं करीब-करीब यह कह सकता हूं कि उनका धर्म अपराध करना है।[615] ऐसे व्यक्तियों के बारे में इस प्रकार यह उपधारणा थी कि वे आदतों, व्यसनों या धार्मिक आज्ञाओं के द्वारा अपराध करने के प्रति उन्मुख होते हैं।[616]

5.3.6 यह उपधारणा करते हुए कि किसी व्यक्ति की अंतर्निहित, आनुवंशिक या जन्मजात विशेषताओं पर आधारित आपराधिकता बहुधा विधि में और न्याय की प्रक्रिया में, जिसके अंतर्गत मृत्युदंड भी है, मार्ग निकाल लेती है। यहां तक कि 1996 में टेक्सास को यह कथन करने के लिए अपनी दंड प्रक्रिया संहिता का संशोधन करना पड़ा कि मृत्युदंड संबंधी मामलों में अभियोजन 'यह स्थापित करने के लिए कि प्रतिवादी का कुल या जाति इसकी संभावना बनाते हैं कि प्रतिवादी भावी आपराधिक आचरण में लिप्त होगा', साक्ष्य प्रस्तुत न करे।[617] अर्थात्, 1996 में पश्चातवर्ती, टेक्सस में विधि को यह उपधारणा करने की प्रवृतति का स्पष्ट रूप से प्रतिषेध करना पड़ा कि कुछ व्यक्तियों में अपने कुल या जाति के कारण अपराध के प्रति अंतर्निहित, आनुवंशिक पूर्वानुकूलता होती है। अमरीकन विधिज्ञ परिषद् ने भी यह आग्रह किया है कि विधि 'भावी खतरे' की धारणा को ही समाप्त कर दे।[618] उन्होंने देखा कि यह विचार 'बहुधा

---

[612] स्टीफेन जेय गाउल्ड, दि मिसमेजर आफ मैन, 56 (1996)।

[613] भारत के शिक्षा और सामाजिक कल्याण मंत्रालय का भारत का गजट, (4) 1978, नई दिल्ली।

[614] प्रतिरोध की पहल करने वाला अंतरराष्ट्रीय, ब्रेंडियो में 'जन्म लेने वाले' अपराधी : भारत में निरुद्ध और नोमेडिक जनजातियों के विरुद्ध जाति संबंधी दुर्व्यवहार, भारत की 15 से 19वीं आवधिक रिपोर्टों का पुनर्विलोकन करने में जाति संबंधी विभेद के निरसन पर समिति के विचारण के लिए सूचना, (3 फरवरी, 2007),http://www.2ohchr.org/English/bodies/cerd/docs/noos/resist.pdf पर उपलब्ध है, 23.08.2015 को अवलोकन किया।

[615] दिलीप डिसूजा ने जन्म से अपराधी घोषित किए गए व्यक्तियों की 'अधिसूचना को रद्द किया', (2001), http:www.manushi-india.org/pdfs_issues/PDF%20file%20123/4%Declared%20Criminal%20at%20Birth.pdf, पर उपलब्ध है, 23.08.2015 को देख गया।

[616] दिलीप डिसूजा ने जन्म से अपराधी घोषित किए गए व्यक्तियों की 'अधिसूचना को रद्द किया', (2001), http:www.manushi-india.org/pdfs_issues/PDF%20file%20123/4%Declared%20Criminal%20at%20Birth.pdf, पर उपलब्ध है, 23.08.2015 को देख गया।

[617] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 361 (2015)।

[618] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 361 (2015), अमेरिकन विधिज्ञ परिषद्, राज्य मृत्युदंड प्रणालियों में ऋजुता और शुद्धता का मूल्यांकन करना : टैक्सस मृत्युदंड निर्धारण रिपोर्ट (सितंबर, 2013),

अविश्वसनीय, वैज्ञानिक साक्ष्य की ओर मुड़ जाता है'[619] । दूसरी तरह कहा जाए तो अमरीकन विधिज्ञ परिषद् ने यह माना कि अंतर्निहित रूप में आपराधिक झुकाव जैसी वस्तु का कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है।

5.3.7 कलपित खतरे के बारे में समरूप चिंताएं भारत में भी उठती हैं। पुन: आपराधिक जनजाति अधिनियम का उदाहरण ले सकते हैं, यद्यपि इस विधि को 1952 में निरसित कर दिया गया था (और जनजातियों के संबंध में 'अधिसूचना' को रद्द कर दिया गया था), तथापि उसे आभ्यासिक अपराधी अधिनियम द्वारा कई राज्यों में प्रतिस्थापित किया गया था। रद्द की गई अधिसूचना वाली जातियों से संबंधित व्यक्तियों के बारे में यह धारणा (व्यवहार में, यदि विधि में नहीं तो) बनी हुई है कि वे अपराधी होते हैं और अपराध के प्रति आनुवंशिक रूप से अनुकूल होते हैं।[620] रद्द की गई अधिसूचना से संबंधित जनजातियों के बारे में आपराधिक न्याय कृत्यकारियों के रुझान का, बहुत सी अन्य समरूप समाचार संबंधी रिपोर्टों के बीच, इस प्रकार सारांश बताया जा सकता है :

> आशति के पुलिस मुख्य एसएस गायकवाड़ के अनुसार स्थानीय चोरियों में से एक-चौथाई चोरियां पारधियों द्वारा की जाती हैं। उनके डिप्टी आधे पारधी व्यक्तियों की गणना अपराधियों में करते हैं। श्री गायकवाड़ आपराधिकता की ऊंची दर गरीबी के कारण मानते हैं। किन्तु विश्वास करते है कि संस्कृति भी उसका एक भाग है : 'पारधी व्यक्तियों के विरुद्ध अधिक आपराधिक मामलों के होने का तात्पर्य है उसकी ऊंची प्रास्थिति और इसलिए उसके विवाह का अधिक अच्छा भविष्य।[621]

5.3.8 इस प्रकार की धारणाओं के लिए किसी प्रकार का कोई वैज्ञानिक साक्ष्य नहीं है। फिर भी आभ्यासिक अपराधी अधिनियम संपूर्ण भारत में बना हुआ है। आगे पुलिस मैनुअल आज तक रजिस्ट्रीकृत पूर्व अधिसूचित जनजाति के सदस्यों के लिए 'उनकी सक्रिय आपराधिकता के कारण' इतिवृत्त खोलने का आदेश देती हैं।[622] 'अंतर्निहित आपराधिकता का दाग' राज्य साधित्रों, जिसमें पुलिस सम्मिलित है, के साथ रद्द की गई अधिसूचना वाली जनजातियों के सदस्यों की पारस्परिक क्रिया को आकार दे रहा है। वास्तव में दिल्ली उच्च न्यायालय ने नाज फाउंडेशन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राज्यक्षेत्र दिल्ली)[623] में यह भी देखा कि कैसे आपराधिकता का दाग हिजरा समुदाय जैसे समुदायों के लिए बना हुआ है।[624]

5.3.9 विचारणीय विषय यह है कि ऐसी जनजातियों के सदस्यों के साथ, जिन्हें बहुधा ऐसी प्रतिकूल रीति से देखा जाता है, आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर, विशेष रूप से तब, जबकि उनके 'भविष्य में खतरे' या उनकी 'सुधार करने की संभावना' के प्रश्न का मुद्दा हो, कैसे व्यवहार किया जाएगा। किस सीमा तक, यदि कोई हो, सामाजिक रूप से विरचित और मस्तिष्क में बनी हुई प्रतिकूल धारणाएं व्यक्ति की पहचान के विरुद्ध भूमिका निभाएंगी ? जबकि इसके बारे में निश्चित होना कठिन है, न्यायनिर्णयन का बड़ा संदर्भ, जहां व्यक्तिगत न्यायाधीश बहुधा ऐसी सामाजिक विरचनाओं पर आधारित विधिक निर्धारण करते हैं, किसी उत्तर का संकेतक है। जाति से संबंधित उपधारणाएं बहुधा की गई हैं और उनका भिन्न रूपों में विभिन्न अपराधों के लिए विचारण के लिए उपयोग किया गया है, जो कि इस चिंता को बनाए रखता है कि अन्यथा ऐसे असंगत कारक जैसे किसी व्यक्ति का वर्ग या जाति, आपराधिक न्याय प्रणाली के साथ

---

http://www.americanbar.org/content/dam/aba/administrative/death_peanlty_moratorium/tx_complete_report.authcheckdam.pdf पर उपलब्ध है, 23.08.2015 को देखा गया।

[619] रोजर हुड, केरोलिन होएल, मृत्युदंड : एक विश्वव्यापी दृष्टिकोण, 361 (2015)।

[620] जातिमूलक विभेद के सभी रूपों के निरसन संबंधी अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन,सीईआरडी/सी/आईएनडी/सीओ/19, 3 (70वां सेशन, मार्च 2007)

[621] दि इकोनोमिस्ट, 'यदि वे कुटिल थे, क्या वे अमीर होंगे?', अप्रैल 22, 2010।

[622] मृणाल सतीश, दुष्चरित्र, हिस्ट्रीशीटर, पनपते हुए गुंडे और उद्दंड व्यक्ति' भारत में पुलिस सर्वेक्षण फाइलें और आसूचना आंकड़ा कोष, 23 नेशनल एल. एससीएच, इंडिया आरईवी 133, 138 (2001-12)

[623] नाज फाउंडेशन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली), 2010 डां एल जे 94 (दिल्ली)।

[624] नाज फाउंडेशन बनाम राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली), 2010 डां एल जे 94 (दिल्ली), पैरा 50 पर।

व्यक्ति की परस्पर क्रिया पर प्रभाव डाल सकते हैं।[625] यह कतिपय समूहों के विरुद्ध लगातार बनी हुई सामाजिक प्रतिकूलताओं के बड़े संदर्भ में है कि जहां मृत्युदंड जैसा अंतिम और अप्रतिसंहरणीय दंड क्रियान्वित होता है, जो न केवल पुलिस साधित्र को, अभियोजन तंत्र को, साक्षियों और जनता को, किन्तु न्यायाधीशों को भी प्रभावित कर सकता है।

5.3.10 ये केवल सैद्धांतिक कल्पनाएं मात्र नहीं हैं, जाति, वर्ग और धर्म के विभेदकारी प्रभाव की वास्तविकता को राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली की मृत्युदंड अनुसंधान परियोजना द्वारा आयोग के राष्ट्रीय परामर्श में प्रस्तुत किए गए आंकड़ों द्वारा दर्शाया गया है। ये आंकड़े दर्शित करते हैं कि देश में मृत्यु पंक्ति वाले 373 कैदियों में से, 75 प्रतिशत से अधिक पिछड़े वर्गों और धार्मिक अल्पसंख्यकों से संबंधित होते हैं। आतंकवादी अपराधों के लिए मृत्युदंड दिए गए 93.5 प्रतिशत व्यक्ति धार्मिक अल्पसंख्यकों या दलितों में से हैं।[626] अत:, यह प्रतीत होता है कि मृत्युदंड के विषम और विभेदकारी प्रभाव तक से डरने के लिए बहुत से कारण हैं और साथ ही आनुभविक साक्ष्य है।

(ii) आर्थिक और शैक्षणिक दुर्बलता

5.3.11 सिब्बन लाल सक्सेना, भारत की संविधान सभा के सदस्य ने स्वतंत्रता पूर्व मृत्यु पंक्ति पर दो वर्ष से अधिक व्यतीत किए थे। उस समय उन्होंने कई अन्य कैदियों को फांसी लगते देखा था, जिनमें से ऐसे 7 थे, जिनके बारे में उन्होंने विश्वास किया कि वे निर्दोष थे। संविधान सभा में विचार-विमर्श के दौरान सक्सेना ने कहा:

> मैंने ऐसे व्यक्तियों को देखा है, जो बहुत गरीब हैं, जो अपनी दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील करने में समर्थ नहीं हैं, क्योंकि वे काउन्सेल को फीस नहीं दे सकते हैं। उच्चतम न्यायालय किसी निर्णय से अपील करने के लिए विशेष इजाजत प्रदान कर सकता है किन्तु ऐसा उन व्यक्तियों के लिए होगा, जो धनाड्य हैं, जो आकाश-पाताल एक कर सकते हैं, किन्तु साधारण व्यक्ति, जिनके पास कोई धन नहीं है और जो गरीब हैं, इस प्रकार अपील करने में समर्थ नहीं होंगे।[627]

5.3.12 सक्सेना के कथन का आशय यह था कि सीमित आर्थिक साधनों वाले किसी अपराधी के लिए अपनी प्रतिरक्षा करना उन व्यक्तियों से, जो अमीर कैदी हैं, अधिक कठिन होगा। यदि यह स्पष्ट संप्रेक्षण है जो बोर्ड रखता है, तो यह इस बात का भी संकेतक है कि कोई मृत्युदंड विचारण, अपनी प्रकृति से ही आर्थिक रूप से दुर्बल, विशेष रूप से किसी विरोधात्मक प्रणाली में होने वाले व्यक्तियों के लिए असुविधाजनक होता है। यह इस गंभीर प्रश्न का भी स्मरण कराने वाला है कि प्रत्येक मृत्युदंड विचारण को इस बात का सामना करना होता है : हम यह कैसे सुनिश्चित करें कि अभियुक्त का संपूर्ण लंबी प्रक्रिया के दौरान युक्तियुक्त विधिक प्रतिनिधित्व हुआ है ? बहुधा वह किसी वकील को करने की क्षमता रखने के लिए बहुत गरीब होता है। ऐसे मामलों में सरकार प्रतिरक्षा के लिए वकीलों को नियुक्त करने के लिए बाध्य है। तथापि, इस प्रकार नियुक्त किए गए वकीलों को अयुक्त रूप से कम रकम उनके कार्य के लिए दी जाती है। विधिक सहायता वाले वकीलों को साधारणतया 500-1500 रुपए प्रति विचारण और 1000-3000 रुपए प्रति अपील की श्रेणी में संदाय किया जाता है। दिल्ली एक अपवाद है, जहां विधिक सहायता वाले वकीलों को एक सत्र विचारण के लिए, जहां मृत्युदंड

---

[625] देखिए, उदाहरण के वेल्लापनाई बनाम राज्य, 2001, डां एल.जे. 2772 (एमएडी), पैरा 15 पर, दयाराम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 1992, डां. एल.जे. 3154 (एमपी)।

[626] 11 जुलाई, 2015 को राष्ट्रीय परामर्श पर मृत्युदंड पर तैयार किया गया निरुपण।

[627] भारत की संसदीय सभा, वो0 8, 3 जून, 1949, http:/parliamentofindia.nic.in/ls/debates/vol8p15b.htm पर उपलब्ध है, 25.08.2015 को देखा गया।

एक संभव दंड विकल्प है, 12000 रुपए का संदाय किया जाता है।[628] और फिर भी यह संख्या उस फीस से, जो प्राइवेट अधिवक्ता साधारणतया लेगा, महत्वपूर्ण रूप से कम है।

5.3.13 आनुभविक साक्ष्य यह भी सुझाव देता है कि भारत में मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषियों की बहु संख्या समाज के आर्थिक रूप से दुर्बल अनुभागों में से है। राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय, दिल्ली की मृत्युदंड अनुसंधान परियोजना द्वारा प्रस्तुत आंकड़े प्रदर्शित करते हैं कि लगभग 74 प्रतिशत सिद्धदोषी आर्थिक रूप से दुर्बल थे, (दुर्बलता का निर्णय बड़े भाग में उनकी उपजीविकाओं और भूधृतियों से किया गया है) एकमात्र रोटी कमाने वाले होने के कारण क्लीनिक को 25 प्रतिशत सिद्धदोषियों के बारे में सूचना नहीं मिली। शेष 75 प्रतिशत सिद्धदोषियों में से 63 प्रतिशत एकमात्र रोटी कमाने वाले थे,[629] जो निश्चित रूप से इस बात पर प्रभाव डालेगा कि क्या उनके परिवार विधिक प्रकिया के माध्यम से सक्षम काउन्सेल रखने के लिए सक्षम हो सकते थे। काउन्सेल की सक्षमता संपूर्ण विचारण और अपीलीय प्रक्रिया पर भी प्रभाव डालती है।

5.3.14 अप्रभावी विधिक सहायता के विषय पर, विशेष रूप से मृत्युदंड के मामलों में, विश्व में चारों तरफ बहस होती रही है। यह तर्क दिया गया है कि क्या कोई व्यक्ति मृत्यु पंक्ति में समाप्त कर देता है, इस बात का सामान्यतया निर्धारण अपराध की जघन्यता से नहीं, किन्तु विचारण काउन्सेल की गुणवत्ता से किया जाता है।[630] काउन्सेल की अप्रभावी सहायता की उच्चतर प्रवृतति सदोष दोषसिद्धियों की ओर ले जाने की होती है।[631] उदाहरण के लिए मो0 हुसैन@जुल्फिकार अली बनाम राज्य[632] का मामला ले सकते हैं, जहां अभियुक्त को एक विस्फोट के लिए, जिसमे 4 व्यक्ति मारे गए थे, विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा सिद्धदोषी ठहराया गया था और मृत्युदंड दिया गया था। उच्चतम न्यायालय ने उस मामले को यह देखते हुए पुन: विचारण के लिए प्रतिप्रेषित किया कि अपराधी का प्रभावी विधिक प्रतिनिधित्व न होने के कारण ऋजु विचारण नहीं किया गया था। इस नए सिरे से विचारण में मो0 हुसैन को सभी आरोपों में निर्दोष पाया गया और दोषमुक्त कर दिया गया। वह 15 वर्ष जेल में रहा जिनमें से वह 7 वर्ष 2 महीने के लिए मृत्यु पंक्ति में था।

5.3.15 रोचक बात यह है कि सुरेंद्र कोली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य[633] के हाल के मामले में, जहां सिद्धदोष व्यक्ति ने उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनी दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध एक पुनर्विलोकन याचिका इस आधार पर फाइल की थी उसको विचारण न्यायालय के समक्ष प्रभावी विधिक प्रतिनिधित्व नहीं मिला था, उच्चतम न्यायालय ने याचिकाकर्ता के इस तर्क को नामंजूर कर दिया क्योंकि 'वर्तमान कार्यवाहियों में पुनर्विलोकन के इस विलंबित प्रक्रम पर यह तर्क याचिकाकर्ता को विराम नहीं दे पाएगा, ' किन्तु उसने कहा कि 'विद्वान जिला न्यायाधीश को, प्रतिरक्षा काउन्सेल को समनुदेशित करते समय विशेष रूप से ऐसे मामलों में जहां विधिक सहायता अभियुक्त व्यक्ति द्वारा मांगी गई है, अधिमान रूप से मामले को ऐसे काउंसेल को सौंपना चाहिए जो सत्र विचारण का संचालन करने में विशेषज्ञता रखता हो। मामलों का ऐसा समनुदेशन न केवल अभियुक्त व्यक्तियों के विधिक प्रतिनिधित्व के अधिकार की अधिक अच्छा संरक्षा करेगा किन्तु प्रभावी विचारण कार्यवाहियां सुनिश्चित करने के उद्देश्यों की भी पूर्ति करेगा।'[634]

5.3.16 गलती से संबंधित आनुभविक आंकड़े इस विभेदकारी प्रभाव की पुष्टि करते हैं जो कि निर्धनता और परिणामस्वरूप काउंसेल की संभव अप्रभावी सहायता मृत्युदंड के लिए आरोपित व्यक्तियों पर रखती है। उच्चतम न्यायालय ने 20 व्यक्तियों पर अधिरोपित

---

[628] डा0 युग चौधरी द्वारा आयोग को संबंधित राज्य विधिक सेवा प्राधिकरणों से यथाप्राप्त आंकड़ा उपलब्ध कराया गया (फाइल पर)।

[629] 11 जुलाई, 2015 को विधि आयोग द्वारा राष्ट्रीय परामर्श पर आयोजित मृत्युदंड अनुसंधान परियोजना द्वारा उपलब्ध आंकड़े।

[630] केनेथ विलियम्स, सर्वाधिक योग्य मृत्यु? मृत्युदंड के विधिशास्त्र पर उच्चतम न्यायालय का विश्लेषण 17 (2012)।

[631] केनेथ विलियम्स, सर्वाधिक योग्य मृत्यु? मृत्युदंड के विधिशास्त्र पर उच्चतम न्यायालय का विश्लेषण 18 (2012)।

[632] मो0 हुसैन@जुल्फीकार अली बनाम राज्य, 2012 (8) स्केल 308।

[633] सुरेन्द्र कोली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तारीख 28 अक्तूब, 2014 की पुनर्याचिका (दां) सं0 395।

[634] सुरेन्द्र कोली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, तारीख 28 अक्तूब, 2014 की पुनर्याचिका (दां) सं0 395।

मृत्युदंड अंतर्वलित करने वाले 16 मामलों में गलती को बरियार, संगीत और खादे में अभिस्वीकार किया। बाधा डालने वाले इन मामलों में से आधे से अधिक में, जिनमें न्यायालय को बाद में गलती मिली, अपराधियों का प्रतिनिधित्व न्याय मित्र द्वारा किया गया था। तुला में लटके हुए : भारत में मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन में मनमानापन (1950-2013) नाम अध्ययन से पाए गए आंकड़े दर्शित करते हैं कि 281 व्यक्तियों में से, जिन्हें 2000 और 2013 के बीच कम से कम एक स्तर के न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया गया था और जिनके मामले न्यायिक प्रणाली की सभी श्रेणियों तक गए थे, 128 व्यक्तियों को केवल विचारण न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया गया था।[635] उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय दोनों ने इन मामलों के या तो दंड को लघुकृत किया था या व्यक्ति को दोषमुक्त कर दिया था। इन अभियुक्तों में से 7.03 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व न्याय मित्र द्वारा किया गया था। उसी समयावधि के दौरान 79 व्यक्तियों को विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों के द्वारा मृत्युदंड दिया गया था किन्तु उन्हें या तो उच्चतम न्यायालय द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था या उनके दंडादेश को लघुकृत कर दिया गया था। न्यायमित्र द्वारा इस समूह के प्रतिनिधित्व की प्रतिशतता 22.8 प्रतिशत थी और अंतिम रूप से 69 व्यक्तियों में से, जिन्हें उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं मृत्युदंड दिया गया था, 36.2 प्रतिशत का प्रतिनिधित्व न्याय मित्र द्वारा गया गया था।[636]

5.3.17 गलती और मृत्युदंड के अधिरोपण से संबंधित मामलों में न्यायमित्र का अत्यधिक प्रतिनिधित्व सावधानी के लिए कारण है, बिल्कुल भी नहीं क्योंकि यह मृत्युदंड के अधिरोपण पर विरचना संबंधी और प्रणाली संबंधी पूर्वाग्रहों के प्रभाव का संकेत दे सकता है। केवल इसलिए कि किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उच्चतम न्यायालय के समक्ष न्यायमित्र द्वारा किया गया है, अवश्य ही यह संकेत नहीं मिलता है कि उस व्यक्ति को उच्चतम न्यायालय के समक्ष अच्छा विधिक प्रतिनिधित्व नहीं मिला। तथापि यह तथ्य कि किसी अपराधी का न्यायमित्र द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया है, उस व्यक्ति की आर्थिक परिस्थितियों के प्रति संकेत करता है। विचारण न्यायालयों के समक्ष गुणवत्ता वाले विधिक प्रतिनिधि को फीस देकर रखने की और यह सुनिश्चित करने की सामर्थ्य कि विचारण न्यायालय के स्तर पर किसी ठोस अभिलेख का सृजन किया जाए, संभावना है कि ऐसे उदाहरणों में उसके साथ समझौता हो जाए। गुणवत्ता वाले विधिक प्रतिनिधि तक, विशेष रूप से विचारण प्रक्रम पर, पहुंच की कमी के प्रभाव में संभव है कि मृत्युदंड न्यायशास्त्र में असंगतताओं की विद्यमानता से वृद्धि हो जाए, जिसका परिणाम विधि के किसी असंबद्ध क्षेत्र पर अपर्याप्त रूप से मार्गनिर्देशित न्यायाधीशों के समक्ष अपूर्ण रूप से प्रशिक्षित वकीलों द्वारा तर्क किए जाने में हो।

5.3.18 यह ऐसे मामलों में, जिनमे मृत्युदंड उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए रखा जाता है न्यायमित्र के प्रतिनिधित्व की अधिक उपस्थिति के लिए भागत: उत्तरदायी हो सकता है, ऐसा हो सकता है, जैसा यह आंकड़े दर्शित करते हैं कि ऐसे व्यक्तियों में से, जिन्हें विचारण न्यायालय के स्तर पर मृत्युदंड दिया गया है, उन व्यक्तियों के बारे में, जो अपना स्वयं का विधिक प्रतिनिधि फीस देकर नहीं रख सकते हैं, इस बात की अधिक संभावना है कि उनके मृत्युदंड की उच्च न्यायालय या उच्चतम न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी जाए। वस्तुत: इसे उच्चतम न्यायालय द्वारा मो0 फारूख अब्दुल गफ्फार बनाम महाराष्ट्र राज्य[637] में अभिस्वीकार किया गया था, जहां न्यायालय ने देखा कि आपराधिक न्याय प्रणाली की अंतर्निहित अपूर्णताएं 'दोष और दंडादेश के अवधारण के मुद्दे पर अभियुक्त के लटकते हुए भविष्य का' मार्गदर्शन करती हैं।[638] उसने इस पर भी ध्यान दिया कि 'मृत्युदंड पर प्रमुख टिप्पणकर्ता यह दृष्टिकोण रखते हैं कि इसने अभिन्न रूप से निराश्रित को, जो अत्यधिक दंड भुगतता है, सीमान्त पर कर दिया है।[639]

---

[635] अपर्णा चन्द्रा, मृणाल सतीश, वृंदा भंडारी और राधिका चितकारा, तुला पर लटके हुए : भारत में मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन में मनमानापन (1950-2013), (आगामी 2015) (फाइल पर)।

[636] अपर्णा चन्द्रा, मृणाल सतीश, वृंदा भंडारी और राधिका चितकारा, तुला पर लटके हुए : भारत में मृत्युदंड के न्यायनिर्णयन में मनमानापन (1950-2013), (आगामी 2015) (फाइल पर)।

[637] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641।

[638] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 169 पर।

[639] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 169 पर।

5.3.19 समान भावनाओं को प्रतिध्वनित करते हुए, यद्यपि अमरीका के संदर्भ में, जनहित वकील ब्रायन स्टीवेंशन, समान न्याय पहल[640] के कार्यपालक निदेशक, ने एक बार कहा था 'वास्तविकता यह है कि अमरीका में मृत्युदंड एक लाटरी है। यह एक दंड है जिसे निर्धनता, जाति, भौगोलिक और स्थानीय राजनीति की मजबूरियों द्वारा आकार दिया जाता है।'[641]

5.3.20 समान रूप से बचन सिंह वाले मामले में अपने विसम्मत निर्णय में न्यायमूर्ति पी.एन. भगवती ने लिखा :

> मृत्युदंड कतिपय प्रकार का रंग-ढंग या पूर्वाग्रह रखता है क्योंकि बहुसंख्या में ऐसे गरीब और उत्पीड़ित ही होते हैं, जो इस चरम दंड के पीड़ित होते हैं। हमें कठिनाई से ही ऐसा अमीर या धनाड्य व्यक्ति मिलेगा जिसे फांसी दी जा रही हो। मृत्युदंड, जैसा कि सन्क्वेंटिन स्टेट प्रिजिम बार्डन क्लींटन क्रूमेन डफी द्वारा इंगित किया गया है 'गरीब का विशेषाधिकार' है।[642]

5.3.21 तत्पश्चात् उसने अपने तर्क को निम्नलिखित रूप में और मृत्युदंड के सीधे दोषारोपण के साथ संक्षेप में लिखा :

> इस बारे में कोई संदेह नहीं हो सकता कि अपने वास्तविक प्रवर्तन में मृत्युदंड विभेदकारी है क्योंकि यह अधिकांशत: समाज के गरीब या वंचित अनुभागों के विरुद्ध कार्य करता है और अमीर तथा धनाड्य इसके पंजे से बच जाते हैं। यह परिस्थिति मृत्युदंड की मनमानी और सनकी प्रकृति को भी जोड़ती हैं और इसे अनुच्छेद 14 तथा अनुच्छेद 21 का अतिक्रामक होने के रूप में असंवैधानिक बनाती हैं।[643]

5.3.22 असंवैधानिकता के इस प्रख्यापन का दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने 1995 में पक्ष लिया, जब न्यायपीठ के सभी 11 सदस्य इस बात पर सहमत हो गए कि जाति और निर्धनता मृत्युदंड के मामलों के परिणाम में कारक थे, जैसा कि 'विचारण न्यायाधीश का व्यक्तित्व और मृत्युदंड के प्रति उसकी विशिष्ट प्रवृतति थी।'[644] इन और अन्य आधारों पर उन्होंने आख्यापन किया कि मृत्युदंड ने दक्षिण अफ्रीका के अंतरिम संविधान का अतिक्रमण किया था। उस समय से इसे दक्षिण अफ्रीका में समाप्त कर दिया गया है।[645]

5.3.23 मृत्युदंड के अत्यधिक अनिश्चित और विभेदकारी रूप से लागू होने के संबंध में चिंताओं में संपूर्ण रूप से प्रणाली की भ्रमशीलता से, विशेष रूप से न उलटने योग्य दंड के कारण, वृद्धि हो जाती है।

घ. आपराधिक न्याय प्रणाली की भ्रमशीलता और मृत्युदंड

> मृत्युदंड अप्रतिसंहरणीय है ; इसको वापस नहीं बुलाया जा सकता है। यह हमेशा के लिए जीवन ज्योति बुझा देता है।.....इसकी ठंडी और क्रूर अंतिमता के कारण यह है कि मृत्युदंड दंड के सभी अन्य रूपों से गुणात्मक रूप से भिन्न हैं।

---

[640] समान न्यायिक शुरुआत, www.eji.org पर उपलब्ध है।

[641] ह्यूगो एडम बेडाउ एंड पाल जी. केसैल, मृत्युदंड पर डिबेट :क्या अमरीका में अपराध के लिए मृत्युदंड होना चाहिए? 78(2004)।

[642] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1982) 3 एससीसी 24, पैरा 81 पर।

[643] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1982) 3 एससीसी 24, पैरा 81 पर।

[644] राज्य बनाम मैकवान्येने और अन्य, दक्षिण अफ्रीका का संवैधानिक न्यायालय, सीसीटी/3/94, 6 जून, 1995, पैरा 48 पर।

[645] राज्य बनाम मैकवान्येने और अन्य, दक्षिण अफ्रीका का संवैधानिक न्यायालय, सीसीटी/3/94, 6 जून, 1995।

बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (विसम्मति देने वाले न्यायमूर्ति भगवती)[646]

इस दिन के बाद मैं मृत्यु तंत्र को सुधारने का कार्य नहीं करूंगा। 20 वर्षों से अधिक से मैंने प्रयास किया है - फिर भी मैंने इस न्यायालय की बहुसंख्या के साथ- संघर्ष किया है, ऐसे प्रक्रिया संबंधी और सारभूत नियमों को विकसित करने का, जो मृत्युदंड के लिए ऋजुता के केवल दृष्टिगत होने से अधिक का कार्य करेंगे। न्यायालय के इस भ्रम का आदर बनाए रखने के बजाय कि ऋजुता का वांछित स्तर प्राप्त कर लिया गया है और विनियमन के लिए आवश्यकता समाप्त कर दी गई है, मैं नैतिक रूप से और बौद्धिक रूप से यह मानने के लिए बाध्य समझता हूं कि मृत्युदंड का प्रयोग असफल हो गया है। वस्तुत: यह मुझे अब स्वयं स्पष्ट है कि प्रक्रिया संबंधी नियमों या सारभूत विनियमों का कोई मिश्रण कभी भी मृत्युदंड को उसकी अंतर्निहित संवैधानिक कमियों से नहीं बचा सकता है। आधारभूत प्रश्न – क्या प्रणाली सही रूप से और संगत रूप से यह अवधारित कर सकती है कि कौन से प्रतिवादी मरने के 'योग्य' हैं। इसका उत्तर सकारात्मक रूप में नहीं दिया जा सकता। सादे रूप से यह नहीं है कि इस न्यायालय ने अस्पष्ट गुरुतरकारी परिस्थितियों को नियोजित करने अनुज्ञा दी है, सुसंगत कम करने वाले साक्ष्य को नहीं माना है और विस्तृत न्यायिक पुनर्विलोकन को अवरुद्ध किया है। समस्या यह है कि वास्तविक विधिक और नैतिक गलती की अनिवार्यता हमें ऐसी प्रणाली देती है जिसको हम जानते हैं कि उसे अवश्य कुछ प्रतिवादियों को गलत रूप से मार देना चाहिए, एक प्रणाली, जो संविधान द्वारा अपेक्षित ऋजु, संगत तथा विश्वसनीय मृत्युदंड को प्रदान करने में असफल होती है।

-कालिन्स बनाम कालिन्स (ब्लैकमन, जे, विसम्मति देने वाले)[647]

(i) दोष का अवधारण

5.4.1 मृत्युदंड की अंतिमता के बारे में न्यायमूर्ति भगवती के अनुस्मारक और न्यायमूर्ति ब्लैकमन की उसकी भ्रमशीलता के बारे में दृढ़ विश्वास के कारण मृत्युदंड के बारे में किसी भी विचार-विमर्श में सावधानी बरती जानी चाहिए। इस न उलटने योग्य दंड को बनाए रखने की वांछनीयता की इस आपराधिक न्याय प्रणाली के संदर्भ में, जो कि दोनों है अर्थात् भ्रमशील है और जोड़-तोड़ के लिए खुली है, प्रशंसा की जानी होगी। इसका एक हाल का विलक्षण उदाहरण इस चिंता का विशिष्टता से उल्लेख करता है। 2002 में अक्षरधाम मंदिर के विस्फोटों में 33 लोग मारे गए थे और लगभग 85 घायल हुए थे। आदम भाई , सुलेमानभाई अजमेरी और 5 अन्य इस आक्रमण के लिए गिरफ्तार किए गए थे। उनका विभिन्न अपराधों के लिए, जिसके अंतर्गत आतंकवादी निवारण अधिनियम के अधीन अपराध है, विचारण किया गया था। अपराधियों में से 3 को विचारण न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। उच्च न्यायालय ने उनकी दोषसिद्धि और दंड को बनाए रखा। उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील किए जाने पर न्यायालय ने पाया कि न केवल सभी अपराधी निर्दोष थे और उन्हें दोषमुक्त कर दिया, किन्तु 'उस सक्षमता के बारे में, जिससे अन्वेषण करने वाले अभिकरणों ने इतनी गंभीर प्रकृति के, राष्ट्र की अखंडता और सुरक्षा अंतर्वलित करने वाले, ऐसे मामले का अन्वेषण किया था, गुस्सा' प्रकट की। **इतनी अधिक मूल्यवान जिन्दगियों को लेने के लिए उत्तरदायी वास्तविक अपराधियों पर मुकदमा चलाने के बजाय पुलिस ने निर्दोष व्यक्तियों को पकड़ लिया और उनके विरुद्ध गंभीर आरोपों को अधिरोपित करा दिया। जिसका परिणाम उनकी दोषसिद्धि और पश्चातवर्ती दंड में हुआ।'**[648]

5.4.2 अत: यह अन्वेषण में गलती का मामला नहीं था किन्तु पुलिस द्वारा पूर्णतया गढ़ने का मामला था। इसके बावजूद दो श्रेणियों के न्यायालयों को युक्तियुक्त संदेह के परे इस बात का विश्वास था कि सभी अभियुक्त दोषी थे। दुर्भाग्य से यह एक ऐसा मामला नहीं है,

---

[646] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य,(1982) 3 एससीसी 24, पैरा 23 पर।

[647] केनिंस वर्सस कोलिंस, 510 यूएस 1141 (1994)।

[648] आदमभाई सुलेमानभाई अजमेरी और अन्य बनाम गुजरात राज्य, (2014) 7 एससीसी 716, पैरा 225 पर।

बहुत से मामलों में, उच्चतम न्यायालय ने पाया है कि अभियुक्त व्यक्ति न केवल सिद्धदोषी ठहराए गए थे किन्तु उन्हें छल साधन से किए गए अन्वेषणों के माध्यम से या आपराधिक न्याय प्रणाली में विभिन्न अभिनेताओं की, जिनके अंतर्गत पुलिस अभियोजन और निचले न्यायालय भी है, उपेक्षा या असावधानी से बनाए गए झूठे और गढ़े गए साक्ष्य के आधार पर मृत्युदंड भी दिया गया था। जामिया टीचर्स सोलिडरिटी यूनियन की एक रिपोर्ट गंभीर अभिकथनों के 16 मामलों को सूचीबद्ध करती है, जो सभी आतंक संबंधी ऐसे आरोप अंतर्वलित करने वाले हैं, जो न्यायालयों द्वारा पूर्णरूप से झूठे और गढ़े गए पाए गए थे। इनमें से सभी 16 मामलों का एक पुलिस सेल द्वारा अन्वेषण किया गया था। फिर भी समस्या अधिक व्यापक रूप से फैली हुई है। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने स्वयं माना 'यह सुविदित तथ्य है कि हमारे देश में बहुधा अभियोजन न केवल वास्तविक हमलावरों को, किन्तु निर्दोष व्यक्तियों को भी आलिप्त कर लेता है, जिससे कि जाल को विस्तृत रूप से फैलाया जा सके।[649]

5.4.3 बहुत से मामलों में न्यायालय ने देखा है कि निचले न्यायालयों द्वारा अपराधी का सिद्धदोष (और पारिणामिक मृत्युदंड) गढ़े हुए साक्ष्य पर आधारित था। इसका एक उदाहरण आशीष बथाम बनाम मध्य प्रदेश राज्य[650] है, जहां उच्चतम न्यायालय ने संप्रेक्षण किया कि 'हम अभिलेख पर लिखने से रोक नहीं सके कि अपीलार्थी केवल संदेह के आधार पर आलिप्त किया हुआ प्रतीत होता है और सामने रखी गई सामग्री के आधार पर बनायी गई अभियोजन की कहानी न तो सच और न पूर्ण रूप से सच प्रतीत होती है और नीचे वाले न्यायालयों के निष्कर्ष, यद्यपि समवर्ती प्रतीत होते हैं, किन्तु उन्हें दूषित करने वाली स्पष्ट शिथिलताओं तथा अभिलेख संबंधी स्पष्ट गलतियों का ध्यान रखते हुए वे हमारे हाथों से स्वीकार किए जाने या अनुमोदन किए जाने के योग्य नहीं हैं, जिनका परिणाम अपीलार्थी के लिए गंभीर और चिंताजनक घोर अन्याय में होगा।'[651]

5.4.4 समान रूप से रामपाल पिथवा राहीदास बनाम महाराष्ट्र राज्य[652] में, जहां विचारण न्यायालय ने 8 व्यक्तियों को मृत्युदंड दिया था और उच्च न्यायालय ने उनमें से 5 के विरुद्ध मृत्युदंड की पुष्टि कर दी थी, उच्चतम न्यायालय ने इस आधार पर सभी अपराधियों को दोषमुक्त कर दिया कि उनके विरुद्ध मुख्य साक्ष्य, जो एक इकबाली साक्षी का था, विश्वसनीय नहीं था। न्यायालय ने न केवल साक्ष्य को विश्वास करने योग्य नहीं पाया, बल्कि उसने यह भी निष्कर्ष निकाला कि साक्षी पर पुलिस द्वारा इकबाली साक्षी बनने के लिए दबाव डाला गया था, क्योंकि 'अन्वेषण में कुछ नहीं मिला था और स्वीकार्य रूप से चंद्रपुर की जिला पुलिस पर मीडिया और जनता से लगातार हमले हो रहे थे।' *653*

5.4.5 इसी प्रकार सुभाष चन्द्र आदि बनाम कृष्ण लाल और अन्य[654] में , जहां विचारण न्यायालय ने 4 अभियुक्तों को सिद्धदोष ठहराया था और उनमें से 3 को मृत्युदंड दिया था और उच्च न्यायालय ने सिद्धदोष को बनाए रखा था किन्तु सभी के दंड को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया था, उच्चतम न्यायालय ने सभी अपराधियों को यह संप्रेक्षण करते हुए दोषमुक्त कर दिया कि 'हमने दुख के साथ यह देखा है कि पूर्वोक्त चार अभियुक्त व्यक्तियों को न केवल न्यायालय को भ्रमित करने के लिए किन्तु वास्तविक व्यक्तियों को संरक्षण देने के लिए भी आलिप्त किया गया था, यह निश्चित होते हुए कि अन्ततोगत्वा कोई न्यायालय पूर्वोक्त अभियुक्तों में से किसी को भी सिद्धदोष नहीं ठहरा सकता था और दंड नहीं दे सकता था'।[655] न्यायालय की इस राय के बावजूद कि 'कोई न्यायालय पूर्वोक्त अभियुक्तों को सिद्धदोषी नहीं ठहरा सकता था और दंडादेश नहीं दे सकता था'[656] उनमें से 3 ने लगभग 6 वर्ष मृत्यु पंक्ति में बिताए।

---

[649] मेजर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2006) 10 एससीसी 499, पैरा 15 पर।

[650] आशीष बाथम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 7 एससीसी 317।

[651] आशीष बाथम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 7 एससीसी 317, पैरा 15 पर।

[652] रामपाल पिथवा राहीदास बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1994) 2 एससीसी 685।

[653] आशीष बाथम बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2002) 7 एससीसी 317, पैरा 27 पर।

[654] सुभाष चंद्र बनाम कृष्ण लाल और अन्य (2001) 4 एससीसी 458।

[655] सुभाष चंद्र बनाम कृष्ण लाल और अन्य (2001) 4 एससीसी 458, पैरा 12 पर।

[656] सुभाष चंद्र आदि बनाम कृष्ण लाल और अन्य (2001) 4 एससीसी 458, पैरा 12 पर।

5.4.6 पुन: परमानंद पेगू बनाम असम राज्य[657] में उच्चतम न्यायालय ने यह देखा कि संस्वीकृतियां अस्वैच्छिक थीं और यह कि चिकित्सीय साक्ष्य तथा मृत्यु का कारण की गई संस्वीकृतियों से मेल नहीं खाता था। अभियुक्त ने अपनी संस्वीकृतियां या वापस ले ली थीं और विचारण न्यायालय को उस यंत्रणा के बारे में, जिसे उन्होंने सहा था, सूचित किया, जब उन्होंने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन न्यायालय में अपने कथन किए। उच्चतम न्यायालय ने अपराधी को दोषमुक्त कर दिया और पाया कि तथ्य ये सुझाव दे रहे थे कि पुलिस ने अस्वैच्छिक संस्वीकृति निष्कर्षित की थी। इस बात पर ध्यान दिया जाए कि दोनों निचले न्यायालयों ने अभियुक्त पर मृत्युदंड अधिरोपित किया था।

5.4.7 अन्य कारक, जैसे प्रभावी विधिक प्रतिनिधित्व का वंचन, निर्दोष व्यक्तियों को मृत्यु पंक्ति में भेज सकता है, इसका एक उदाहरण मो0 हुसैन @ जुलफिकार अली बनाम राज्य[658] है, जहां अभियुक्त को दिल्ली में एक बस में विस्फोट करने के लिए, जिसमें 4 व्यक्तियों की मृत्यु हुई थी, सिद्धदोष ठहराया गया था और मृत्युदंड दिया गया था। उसकी दोषसिद्धि और दंड को उच्च न्यायालय द्वारा बनाए रखा गया था।[659] उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक खंड न्यायपीठ ने यह देखा कि अभियुक्त को ऋजु विचारण से, विधिक प्रतिनिधित्व न दिए जाने के कारण, वंचित रखा गया था।[660] विचारण न्यायालय की मृत्युदंड के मामले का संचालन करने में उसकी 'आकस्मिक' रीति के लिए, निन्दा करते हुए, खंडपीठ इस बारे में विभाजित हो गई कि क्या अपराधी को दोषमुक्त किया जाए या मामले को पुन: विचारण के लिए भेजा जाए।[661] मामले को तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया था, जिसने मामले को पुन: विचारण के लिए भेज दिया। जनवरी, 2013 में मो0 हुसैन को निर्दोष पाया गया और उसे सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया । वह 15 वर्ष जेल में रहा, जिसमें से 7 वर्ष और 2 महीने के लिए वह मृत्यु पंक्ति में था।[662]

5.4.8 दूसरा उदाहरण रामदेव चौहान बनाम असम राज्य[663] का मामला है, रामदेव चौहान को एक अपराध के लिए, जो 1992 में हुआ, गिरफ्तार किया गया था। उसे विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा सिद्धदोष ठहराया गया और मृत्युदंड दिया गया। उसकी किशोरावस्था के अभिवाक् को नामंजूर कर दिया गया। उच्चतम न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने 2000 में उसके मृत्युदंड को बनाए रखा।[664] पुनर्विलोकन पर एक न्यायाधीश ने यह तथ्य अभिलिखित किया कि यद्यपि रामदेव अपराध के करने के समय किशोर नहीं था, वह लगभग 16 वर्ष का था और उसकी तरुण आयु कम करने वाला कारक थी। इस कारण से उसने मृत्युदंड अधिरोपित करने से इंकार कर दिया। तथापि, बहुमत के अनुसार, रामदेव चौहान का मृत्युदंड बनाए रखा गया।[665] 2002 में असम के राज्यपाल ने राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग के हस्तक्षेप करने पर उसके मृत्युदंड को लघुकृत कर दिया। तथापि 2009 में मृत व्यक्ति के परिवार के द्वारा फाइल की गई एक रिट में, उच्चतम न्यायालय ने लघुकृत आदेश को अपास्त कर दिया और मृत्युदंड को प्रत्यावर्तित कर दिया।[666] इस विनिश्चय के पुनर्विलोकन में उच्चतम न्यायालय ने रामदेव चौहान से अपराध करने के समय पर उसकी आयु के

---

[657] परमानंद पेगू बनाम असम राज्य, (2004) 7 एससीसी 779।

[658] मो0 हुसैन@ जुलफिकार अली बनाम राज्य, 2012(8) स्केल 308।

[659] राज्य बनाम मो0 हुसैन@ जुलफिकार अली, 140 (2007) डीएलटी 428।

[660] मो0 हुसैन@ जुलफिकार अली बनाम राज्य, 2012(1) स्केल 145।

[661] मो0 हुसैन@ जुलफिकार अली बनाम राज्य, 2012(8) स्केल 308।

[662] राज्य बनाम मो0 हुसैन@ जुलफिकार अली, सेशन केस नं0 79/2012, तारीख 04.01.2013 (दिल्ली)।

[663] रामदेव चौहान @ राजनाथ चौहान बनाम बनी कांत दास, पुनर्याचिका (दां) 1378/009।

[664] रामदेव चौहान @ राजनाथ चौहान बनाम असम राज्य, (2007) 7 एससीसी 455।

[665] रामदेव चौहान @ राजनाथ चौहान बनाम बनी कांत दास, पुनर्याचिका (दां) 1105/2000, 10.05.2001 (एससी)।

[666] बनी कांत दास और अन्य बनाम असम राज्य, रिट याचिका (सिविल) 457/2005 1378/2009, 19.11.2010(एससी)।

अवधारण के लिए समुचित मंच पर पहुंचने के लिए कहा।[667] 2010 में गोवाहाटी उच्च न्यायालय ने अंतिम रूप से अवधारित किया कि रामदेव अपराध करने के समय वास्तव में एक किशोर था। इस समय तक वह कारागार में लगभग 18 वर्ष बिता चुका था, जिसमें से लगभग 6 वर्ष वह मृत्यु पंक्ति में था। उस समय में, उच्चतम न्यायालय की तीन भिन्न न्यायपीठों ने उस पर मृत्युदंड अधिरोपित किया था ।

5.4.9 अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य[668] समरूप उदाहरण हैं, 2006 में अंकुश सिंदे और 5 अन्य को विचारण न्यायालय द्वारा किसी अवयस्क के बलात्कार और हत्या के लिए मृत्युदंड दिया गया था। उच्च न्यायालय ने 3 का मृत्युदंड बनाए रखा और दूसरों का आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया। अपील पर उच्चतम न्यायालय ने सभी 6 पर (रवजी में अनवधानता के कारण दिए गए विनिश्चय पर उसके इस अवधारण के लिए भरोसा करते हुए कि वह मामला 'विरले मामलों में से विरलतम' के प्रवर्ग में आता था), मृत्युदंड अधिरोपित किया। 2012 में, उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के लगभग 3 वर्ष पश्चात् एक विचारण न्यायालय ने अवधारित किया कि अंकुश सिंदे अपराध करने के समय किशोर था।[669] इस समय तक वह कारागार में कुल 9 वर्षों की अवधि में से मृत्यु पंक्ति में 6 वर्ष बिता चुका था।

5.4.10 'तुला में लटके हुए अध्ययन' जिसे ऊपर निर्दिष्ट किया गया है, इंगित करता है कि ऊपर वर्णित मामले पृथककृत उदाहरण नहीं हैं। 2000-2013 की अवधि में 80 व्यक्तियों को, जिन्हें दोनों निचले न्यायालयों द्वारा मृत्युदंड दिया गया था, उच्चतम न्यायालय द्वारा दोष मुक्त कर दिया गया था। अतिरिक्त 67 व्यक्तियों को कम से कम एक न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया गया था और दूसरे द्वारा दोषमुक्त कर दिया गया था। इनमें से उच्चतम न्यायालय ने स्वयं 2 व्यक्तियों पर, जिन्हें उच्च न्यायालय द्वारा दोषमुक्त किया गया था और 2 अन्य व्यक्तियों पर जिन्हें उच्चतम न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा दोषमुक्त किया गया था, मृत्युदंड अधिरोपित किया था। ये आंकड़े और ऊपर वर्णित उदाहरण आपराधिक न्याय प्रक्रिया की मजबूती के बारे में, जो अप्रतिसंहरणीय मृत्युदंड की संक्रिया के लिए संदर्भ और विरचना का उपबंध करती है, गंभीर प्रश्न उठाते हैं। आपराधिक न्याय प्रणाली इस बारे में कि इतनी बड़ी संख्या में व्यक्तियों को, जिन्हें एक न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया जाता है किन्तु अंततोगत्वा उन्हें निर्दोष पाया जाता है, गंभीर चिंताएं उठाती हैं। ऐसी प्रणाली में मृत्यु जैसे न उलटने योग्य दंड की विद्यमानता पर, मृत्युदंड समाप्त किए जाने के बारे में किसी विचार-विमर्श में, अवश्य विचार किया जाना चाहिए।

(ii) मृत्युदंड अधिरोपित करने में स्वीकार की गई गलती

5.4.11 'मृत्युदंड के मामलों में ऊंची उलटने वाली दर और साथ ही विरले मामलों में से विरलतम' सिद्धांत के लागू होने में असंगतताओं के बारे में चिंताओं को संयोजित करते हुए गलती की दर ऊंची है, जिसे उच्चतम न्यायालय द्वारा स्वयं उसके अपने विनिश्चयों में स्वीकार किया गया है। ठीक 3 मामलों : बरियार, संगीत और खादे में न्यायालय ने 20 व्यक्तियों को मृत्युदंडादेश अंतर्वलित करने वाले 16 मामलों में गलती अभिस्वीकार की है। इन व्यक्तियों में से 16 को 2000-2013 के बीच की अवधि में मृत्युदंड दिया गया था, जिसका निहितार्थ है कि उच्चतम न्यायालय ने कुल 69 व्यक्तियों में से, जिन्हें न्यायालय द्वारा इस समयावधि के दौरान मृत्युदंड दिया गया था, 16 व्यक्तियों पर मृत्युदंड अधिरोपित करने में गलती स्वीकार की थी। यह गलती की दर 23.2 प्रतिशत है। अत: उच्चतम न्यायालय ने अभिस्वीकार किया है कि लगभग एक-चौथाई मामले, जिनमें उसने हाल में पिछले दिनों में मृत्युदंड दिया था, मृत्युदंड गलती से अधिरोपित किया गया था।

---

[667] रामदेव चौहान @ राजनाथ चौहान बनाम बनी कांत दास, पुनर्याचिका (दां) 1378/2009, 19.11.2010 (एससी)।

[668] अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 667।

[669] अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, दांडिक एप्लीकेशन 05/2012, 6.07.2012 (सत्र न्यायालय, नासिक।

5.4.12 बरियार में, न्यायालय ने रवजी उर्फ रामचन्द्र बनाम राजस्थान[670] राज्य में विनिश्चय की परीक्षा की थी, जहां उसने यह अभिनिर्धारित किया था कि :

> यह अपराध की, न कि अपराधी की, प्रकृति और गंभीरता है, जो किसी आपराधिक विचारण में समुचित दंड का विचार करने के लिए संगत है.....किसी अपराध के लिए दिया जाने वाला दंड उस नृशंसता और क्रूरता के, जिससे वह अपराध किया गया है, उस अपराध के महापाप के जिसे की लोक घृणा समर्थन करती है, अनुरूप और संगत होना चाहिए और उसे अपराधी के विरुद्ध न्याय के लिए जनता की पुकार का उत्तर देना चाहिए।[671]

5.4.13 बरियार ने अभिनिर्धारित किया कि रवजी में अपराध पर अनन्य संक्रेद्रण ने इस विनिश्चय को अनवधानता से किया गया बना दिया। न्यायालय ने आगे 6 ऐसे मामलों को सूचीबद्ध किया, जहां रवजी का अनुगमन किया गया था और इसलिए उनमें गलत पूर्व निर्णय पर भरोसा किया गया था। 11 में से 2 व्यक्तियों को इस प्रकार दिए गए दंड के अनुसार, जिसके अंतर्ग रवजी स्वयं है, फांसी दी गई थी और शेष 3 अपनी दया याचिका के साथ अभी तक, जिसे पश्चातवर्ती नामंजूर कर दिया गया था, न्यायालय के 6 वर्ष पूर्व अपनी गलती को अभिस्वीकार कर लिए जाने के बावजूद, मृत्यु पंक्ति में हैं। [672]

5.4.14 अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य[673] पर, जिस पर बरियार से दो सप्ताह पूर्व निर्णय परिदत्त किया गया था, और जिसमें रवजी पर भरोसा करते हुए 6 व्यक्तियों को मृत्युदंड दिया था, न्यायालय द्वारा बरियार में ध्यान नहीं दिया गया था। आश्चर्यजनक रूप से बरियार में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किए जाने के पश्चात् भी कि रवजी का विनिश्चय अनवधानता से किया गया था, उस मामले में विनिश्चय का उच्चतम न्यायालय द्वारा कम से कम 3 मामलों में अनुगमन किया गया है। यद्यपि इन मामलों पर उच्चतम न्यायालय ने अभी तक ध्यान नहीं दिया है, कुल मिलाकर अतिरिक्त 9 व्यक्तियों को रवजी पर भरोसा करते हुए मृत्युदंड दिया गया है।[674]

5.4.15 समान रूप से उच्चतम न्यायालय ने शंकर खादे में धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[675] में मृत्युदंड अधिरोपित किए जाने के ठीक होने पर संदेह किया है, जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि किसी दिए गए मामले में दंड का परिमाण अपराध की नृशंसता ; अपराधी के आचरण और पीड़ित की रक्षा रहित और असंरक्षित स्थिति पर निर्भर होना चाहिए। समुचित दंड का

---

[670] रवजी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175।

[671] रवजी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175, पैरा 124 पर। संतोष बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 63, बचन सिंह में अनवधानता हुई।

[672] साइबन्ना और शिवाजी आहत की दया याचिकताएं नामंजूर कर दी गई हैं। समाचार रिपोर्टें दर्शित करती हैं कि गृह मंत्रालय ने मोहन अन्ना चव्हाण द्वारा प्रस्तुत की गई दया याचिका को नामंजूर किए जाने के लिए सिफारिश की है। देखिए दो सिद्धदोषियों की दया याचिकाओं को नामंजूर किया, प्रणव ने कहा, दि हिन्दू, अगस्त 18, 2015 दि हिन्दू, अगस्त 18, 2015, http://www.thehindu.com/news/national/reject-mercy-pleas-of-2-convicts-pranab-told/article7551067.ece

[673] अंकुश मारुति सिंदे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 667।

[674] अजीत सिंह हरनामसिंह गुजराल बनाम महाराष्ट्र, (2011) 14 एससीसी 401; सुन्दर सिंह बनाम उत्तरांचल, (2010) 10 एससीसी 611 ; जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, 2009 (12) स्केल 580। इन मामलों में, न्यायालय ने, तुलनात्मक मामले के रूप में यह कहने के लिए रवजी पर भरोसा किया कि इस मामले के तथ्यों में मृत्युदंड अधिरोपित किया गया था और इस बात का अवधारण करने के लिए इस तथ्य का उपयोग किया कि क्या मृत्युदंड उनकी अपनी तथ्य संबंधी स्थितियों में अधिरोपित किया जाना चाहिए।

[675] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1994) 2 एससीसी 220।

अधिरोपण वह रीति है जिसमें न्यायालय अपराधियों के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर देता है।'[676] खादे में न्यायालय ने यह राय व्यक्त की कि प्रथमदृष्टया निर्णय ने अपराधी से संबंधित कम करने वाली परिस्थितियों का हिसाब नहीं लगाया था। धनन्जय चटर्जी को 2004 में फांसी दी गई थी।

5.4.16 समान रूप से संगीत में, न्यायालय ने ऐसे और 3 मामलों पर ध्यान दिया था, जहां गुरुतरकारी और कम करने वाली दोनों परिस्थितियों पर विचार करने के लिए बचन सिंह के निर्देश को नहीं अपनाया गया था।[677]

सारणी 5.1 : बरियार, संगीत, खादे में संदेह किए गए मामले की सूची

क्र0सं0	**मामला**	**उन व्यक्तियों की संख्या, जिन्हें मृत्युदंड दिया गया**	**मृत्युदंड का अधिरोपण, जिसे प्रकट रूप से[678] निम्नलिखित मामलों में गलत अभिनिर्धारित किया गया**
1.	रवजी उर्फ राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175	1	बरियार
2.	शिवजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, एआईआर 2009 एससी 56	1	बरियार
3.	मोहन अन्ना चह्वाण बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2008) 11 एससीसी 113	1	बरियार
4.	बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2008) 11 एससीसी 113	1	बरियार
5.	दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य, (2003) 9 एससीसी 310	1	बरियार
6.	सुरजा राम बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 6 एससीसी 271	1	बरियार

[676] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1994) 2 एससीसी 220, पैरा 15 पर। इस विनिश्चय के अनन्य केंद्र के अपराध पर न कि अपराधी पर होने के बारे में शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546।

[677] शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी 713, राजेंद्र प्रलहादराव वासनिक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 4 एससीसी 37, मो0 मन्नन बनाम बिहार राज्य,(2011) 5 एससीसी 317।

[678] ऐसे बहुत से मामलों में न्यायालय ने गुरतरकारी और कम करने वाली परिस्थितियों के लागू होने में असंगतताओं की ओर इंगित किया है। निर्णीतानुसार पर आधारित किसी न्यायिक प्रणाली में, विशेष रूप से बचन सिंह में न्यायालय के संदर्भ में, जिसमें स्पष्ट रूप से यह आदेश दिया था कि दंड देने वाले विवेकाधिकार का प्रयोग पूर्व निर्णय की दृष्टि से किया जाएगा, ये असंगतताएं बहुत सारे ऐसे मामलों का निर्णय अनवधानता से किया गया बनाती हैं। तथापि, चूंकि उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से यह अभिस्वीकार नहीं किया है कि ये मामले अनवधानता से किए गए हैं, अत: उन्हें सूची में नहीं जोड़ा गया है। विशेष रूप से संगीत और खादे देखिए।

7.	उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सत्तन, (2009) 4 एससीसी 736	4	बरियार
8.	साईबन्ना बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 4 एससीसी165	1	बरियार
9.	शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय , (2007), 4 एससीसी 713	2	संगीत
10.	राजेन्द्र प्रलहादराव वासनिक बनाम महाराष्ट्र राज्य,(2012) 4 एससीसी 37	1	संगीत
11.	मो0 मन्नन बनाम बिहार राज्य, (2011) 5 एसीसी 317	1	संगीत
12.	बी.ए. उमेश बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2011) 3 एससीसी 85	1	संगीत
13.	सुशील मुरमु बनाम झारखंड राज्य, (2004) 2 एससीसी 338	1	संगीत
14.	गुरमुख सिंह बनाम हरियाणा राज्य, (2009) 15 एससीसी 635	1	संगीत
15.	धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (1994) 2 एससीसी 220	1	संगीत
16.	कामता तिवारी बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (1996) 6 एससीसी 250	1	संगीत

5.4.17 बाधा डालने वाले इन मामलों में से आधे से अधिक में, जिनमें न्यायालय को बाद में गलती मिली, अपराधियों का प्रतिनिधित्व न्याय मित्र द्वारा किया गया था । गलती और मृत्युदंड के अधिरोपण से संबंधित मामलों में न्यायमित्र का अत्यधिक प्रतिनिधित्व सावधानी के लिए कारण हैं, बिल्कुल भी नहीं क्योंकि यह मृत्युदंड के अधिरोपण पर विरचना संबंधी और प्रणाली संबंधी पूर्वाग्रहों के प्रभाव का संकेत दे सकता है।

(iii) समान मामलों में 'विरले मामलों में से विरलतम' विरचना के लागू करने में विभिन्नाएं

5.4.18 मो0 फारूख में उच्चतम न्यायालय ने यह कहा था कि मृत्युदंड के लागू करने में कुछ उद्देश्यपूर्णता और एकरूपता लाने के लिए, 'सर्वसम्मति से पहुंच' को अंगीकार किया जाना चाहिए, जिसके द्वारा मृत्युदंड केवल तब अधिरोपित किया जाना चाहिए जब यदि न्यायालय प्रणाली की विभिन्न श्रेणियों के बीच शीर्ष से और साथ ही न्यायपीठों के बीच एक स्तर पर सर्वसम्मति हो।[679]

[679] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 165 पर।

5.4.19 तथापि तुला में लटके हुए अध्ययन 'सर्वसम्मति से पहुंच' से बारबार विचलन को दर्शित करता है। 'ये आंकड़े दर्शित करते हैं कि 2000-13 में 281 व्यक्तियों के मामले उच्चतम न्यायालय के समक्ष आए, जहां कम से कम एक न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित किया था। इनमें से 205 व्यक्तियों के लिए मृत्युदंड का अधिरोपण न्यायालय के समक्ष विवाद्यक विषय था। इन 205 व्यक्तियों में से उच्चतम न्यायालय ने 69 व्यक्तियों पर (33.7 प्रतिशत) मृत्युदंड अधिरोपित किया था। इस समूह में से, 5.8 प्रतिशत (एन=4) को एक न्यायालय/उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा दोषमुक्त किया गया था। दूसरे 22.2 प्रतिशत (एन=16) को कम से कम एक न्यायालय/उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा जीवन दिया गया था। इस प्रकार समग्र रूप से 29 प्रतिशत मामलों में, जहां उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड को बनाए रखा या अधिरोपित किया, वहां न्यायाधीशों के बीच स्वयं इस बात पर एकरूपता नहीं थी कि क्या अभियुक्त वास्तव में दोषी था,/या कि उसका मामला मृत्युदंड की मांग करने वाले विरले मामलों में से विरलतम प्रवर्ग में आता था।

5.4.20 281 मामलों में से, जहां कम से कम एक न्यायालय ने मृत्युदंड अधिरोपित किया था, वहां उच्चतम न्यायालय ने अभियुक्त को 60 (21.4 प्रतिशत) में दोषमुक्त कर दिया, 142 (50.5 प्रतिशत) में लघुकृत कर दिया या आजीवन कारावास अधिरोपित कर दिया और 8 (2.8 प्रतिशत) मामलों में उच्च न्यायालय या विचारण न्यायालय को मामला वापस प्रत्यावर्तित कर दिया। 60 दोषमुक्त किए गए व्यक्तियों में से, 18 को सभी निचले न्यायालयों द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। 142 में से, जिन्हें अंततोगत्वा आजीवन कारावास दिया गया था, 61 को सभी निचले न्यायालयों द्वारा मृत्युदंड दिया गया था।

5.4.21 अत: 281 मामलों में से 79 (28.1 प्रतिशत) में उच्चतम न्यायालय ने पाया कि समान तथ्यों पर, दोनों निचले न्यायालयों में गलती से मृत्युदंड अधिरोपित किया था।

5.4.22 आगे उच्चतम न्यायालय ने उन 12 व्यक्तियों पर मृत्युदंड अधिरोपित किया, जिन्हें कम से कम एक निचले न्यायालय द्वारा आजीवन कारावास दिया गया था तथा आगे 4 व्यक्तियों पर और किया, जिन्हें उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा स्वयं आजीवन कारावास दिया गया था।

5.4.23 यह देखना महत्वपूर्ण है कि केवल इस कारण से कि मृत्युदंड का अधिरोपण अंतिम रूप से इतनी बड़ी संख्या के मामलों में उलट दिया गया था, यह तात्पर्य नहीं है कि यह प्रणाली ठीक कार्य नहीं कर रही है। ऊपर वर्णित अधिकांश उदाहरणों में, दोनों निचले न्यायालयों ने गलती की है। ऐसी गलतियों को केवल कारागार में लंबी अवधियों के पश्चात्, जिसके अंतर्गत मृत्यु पंक्ति में बढ़ाई गई अवधियां भी हैं, ठीक किया गया है। मृत्युदंड के अधीन होने का आघात, जिसे 'मृत्यु पंक्ति आभास' कहा जाता है, अपने मानसिक और शारीरिक दंड का, उस व्यक्ति को पश्चातवर्ती फांसी न दिए जाने पर भी, भार डालता है।[680] अत: मृत्युदंड के अत्यधिक अधिरोपण के विरुद्ध इस आरोप का कोई उत्तर नहीं है कि इन मामलों को अपीलीय न्यायालयों द्वारा किस प्रकार उलट दिया गया या लघुकृत कर दिया गया। यदि दो न्यायालय, जिनमें अनुभवी न्यायाधीशों के कर्मचारी हैं, दोष या दंडादेश के अवधारण में गलती कर सकते हैं, तो यह सुझाव देने के लिए कुछ नहीं रह जाता है कि वही गलती तीसरी श्रेणी के न्यायाधीश द्वारा नहीं की जा सकती है। दूसरे देशों में, अत्यधिक विशिष्ट रूप में संयुक्त राज्य में, गलत सिद्धदोषियों को, वैज्ञानिक साक्ष्य, जैसे डीएनए के उपयोग द्वारा सही करने के प्रयासों ने ऐसे बहुत से मामलों का मार्गदर्शन किया है, जहां किसी व्यक्ति को, न्यायपालिका के उच्चतम स्तरों तक अपीलों की बहुल परतों और पुनर्विलोकन के बावजूद, सदोष सिद्धदोष ठहराया गया था और मृत्यु तक का दंड दिया गया था।[681] भारत में ऐसे अध्ययनों

---

[680] अगले अध्याय में चर्चा हुई।

[681] देखिए ब्रेनडन एल. गरेट, दि बेनालिटी आफ रांगफुल एजिक्यूशन्स, माइकल एल. रेव. (2014) (डीएनए द्वारा माफी दिए गए अन्य 250 में से 18 मृत्यु पंक्ति वाली मांफियों को सूचीबद्ध किया गया है।) सभी में अभी तक लगभग 155 मृत्यु पंक्ति वाले कैदियों को डीएनए और गैर डीएनए साक्ष्य का उपयोग करते हुए अमरीका में मांफियां दी गई हैं। देखिए निर्दोष सूची, मृत्युदंड सूचना केंद्र, http://www.deathpenaltyinfo.org/innocence-list-

की अनुपस्थिति में, यह अवधारित करना संभव नहीं है कि क्या, और यदि ऐसा है तो ऐसे कितने मामले भारत में विद्यमान हैं। तथापि, ऊपर दिए गए उदाहरण और यहां प्रस्तुत किए गए आंकड़े हमें सावधान करते हैं कि मृत्युदंड के समान न उलटने योग्य दंड, भूल करने वाली प्रणाली में विद्यमान है।

5.4.24 आगे 2000 से उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड के अधिरोपण के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत संबंधी कम से कम 9 याचिकाओं को प्रारंभ में ही खारिज कर दिया है।[682] इतनी ऊंची उलटने वाली दर संबंधी किसी प्रणाली में, उच्चतम न्यायालय ने, जो अंतिम अपीलीय न्यायालय है, स्वयं 'निर्वहन करने के लिए अधिक गंभीर और गहन कर्तव्य' अभिस्वीकार किया है। 'न्यायालय को न केवल यह सुनिश्चित करना है कि मृत्युदंड के दिए जाने में, 'विरले मामलों में से विरलतम' सिद्धांत के प्रकट रूप से विचारण के पश्चात्, धारा 302 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग असावधानी से किया जाने वाला नहीं रह जाता है, किन्तु यह भी कि विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया इस संबंध में लागू प्रक्रिया संबंधी न्याय की विशेष कठिनाइयों से बची रहती है।'[683] इस सिद्धांत की दृष्टि से मृत्युदंड के विरुद्ध अपील करने वाली विशेष इजाजत संबंधी याचिकाओं को प्रारंभ में ही खारिज करने वाले व्यवहार को समाप्त करना चाहिए, जैसी कि आयोग द्वारा अपनी 187वीं रिपोर्ट में सिफारिश की गई थी।

5.4.25 संक्षेप में, मृत्युदंड ऐसी प्रणाली में कार्य करता है जो बहुत अधिक चंचल, जोड़-तोड़ और गलतियों के लिए खुली और प्रकट रूप से भ्रमशील है। तथापि प्रणाली कैसी भी उद्देश्यपूर्ण हो, चूंकि उसमें कर्मचारी मानव होते हैं और इस प्रकार मानवीय क्षमताएं और प्रवृतियां सीमित होती हैं, अत: गलती की संभावना सदैव खुली रहती है। जैसा कि संपूर्ण विश्व में, जिसके अंतर्गत अत्यधिक बड़े स्रोत वाली विधिक प्रणालियां हैं, अभिस्वीकार किया गया है।

5.4.26 जैसा कि ऊपर उद्धत उदाहरण दर्शित करते हैं, अपीलीय प्रक्रियाओं की विद्यमानता गलती के अवसरों को कम कर सकती है, किन्तु उन्हें पूर्णरूप से समाप्त नहीं किया जा सकता। मृत्युदंड की न उलटने योग्य प्रकृति को देखते हुए, यह दंड केवल वहां न्यायोचित ठहराया जा सकता है जहां संपूर्ण प्रणाली सम्यक् प्रक्रिया के सबसे ऊंचे मानकों, निष्पक्ष अन्वेषण और प्रक्रिया, अत्यधिक मजबूत प्रतिरक्षा और अत्यधिक निष्पक्ष तथा निपुण न्यायाधीशों का ध्यान रखते हुए मूर्खता से परे रीति में कार्य करती है। तथापि संपूर्ण विश्व में, भारत सहित, अनुभव यह सुझाव देते हैं कि यह प्रणाली 'एक बेइमान पुलिस अधिकारी, एक अक्षम वकील, एक अत्यधिक उत्साही अभियोजक या एक गलती करने वाले साक्षी के कारण वह सब कुछ ले लेती है और प्रणाली असफल हो जाती है'।[684] कुशल आपराधिक न्याय प्रणाली में मृत्युदंड गलती से मुक्त रूप में अधिरोपित किया जा सकता है। तथापि अभी तक ऐसी किसी प्रणाली को नहीं बनाया गया है। अत: मृत्युदंड अपूर्ण, कमजोर और भ्रमशील प्रणाली में न उलटने योग्य दंड रहता है।

5.4.27 मृत्युदंड की संवैधानिकता का मूल्यांकन पूर्वगामी विचार-विमर्श को दृष्टि में रखते हुए उसके कथित न्यायोचित्यों और ऊपर उठायी गई चिंताओं के आधार पर किया जाना होगा। जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने बरियार में सावधान किया था,

---

those-freed-death-row.(साधारणतया देखिए, दि इनिविटेबिलिटी आफ एरर, दि डेथ पेनल्टी प्रोजेक्ट (2014) (विभिन्न देशों में गलती से दिए गए मृत्युदंडों के उदाहरणों को देखिए)।

[682] लाल चंद@ लालिया बनाम राजस्थान राज्य (20.02.2004 को) ; जफर अली बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (05.04.2006), टोटे दिवान@मान बहादुर दिवान बनाम असम राज्य (08.08.2005), संजय बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (03.07.2006), बंदू बनाम कर्नाटक राज्य (10.07.2006), ध्यानेश्वर बोरकर बनाम महाराष्ट्र राज्य (21.07.2012), जितेंद्र @ जीतू और अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (06.01.2015), बाबासाहेब मारूति काम्बले बनाम महाराष्ट्र राज्य (06.01.2015)।

[683] मो0 फारूक अब्दुल गफूर बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 14 एससीसी 641, पैरा 155 पर।

[684] दि इनिविटेबिलिटी आफ एरर, दि डेथ पेनल्टी प्रोजेक्ट (2014) (विभिन्न देशों में गलती से दिए गए मृत्युदंडों के उदाहरणों को देखिए)।

जीवन का अधिकार सभी अधिकारों में से अत्यधिक मूल है। परिणामस्वरूप कोई दंड, जिसका उद्देश्य जीवन लेना है, सबसे गंभीर दंड है। मृत्युदंड जीवन के मूल अधिकार के आवश्यक तत्व पर इसे असाध्य रूप से निरसित करते हुए सीमा अधिरोपित करता है। हम इस अधिकार की पूर्ण प्रकृति को, इस अर्थ में कि,यह सभी अन्य अधिकारों का स्रोत है, अनुभव करते हैं। अन्य अधिकार सीमित हो सकते हैं और वापस भी लिए जा सकते हैं और उन्हें पुन: प्रदान किया जा सकता है किन्तु उनकी अंतिम सीमा को जीवन के अधिकार के परिरक्षण में पाना होगा। जीवन का अधिकार संविधान के अधीन सभी अधिकारों की आवश्यक अंतर्वस्तु है। यदि जीवन पूर्णतया ले लिया जाता है तो अन्य अधिकार विद्यमान नहीं रह जाते हैं।

5.4.28 समान रूप से शंकर लाल, ग्याराशिलाल दीक्षित बनाम महाराष्ट्र राज्य[685] में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि : 'मृत्युदंड के दिए जाने में न्यायाधीश को बहुत बड़ी चिंता और अपनी उद्विग्नता को, क्योंकि वह ऐसा दंडादेश है जिसे वापस नहीं लाया जा सकता, बाहर लानी चाहिए'।

5.4.29 उच्चतम न्यायालय ने जीवन के अधिकार में मृत्युदंड के अपधारण की मात्रा और दंड की अप्रतिसंहरणीयता को ध्यान में रखते हुए इस बात पर ठीक से जोर दिया है कि :

दंडों के संदर्भ में अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 से प्रकट होने वाले संरक्षणों को कठोरतम संभव शब्दों में लागू किया जाना है। प्रत्येक मृत्युदंड संबंधी मामले में यह अवश्य मस्तिष्क में रहना चाहिए कि 'विरले मामलों में से विरलतम' की सीमा, मृत्युदंड की अंतर्निहित प्रकृति के कारण, अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 द्वारा सूचित की गई है। बचन सिंह (ऊपर) के पश्चात् मृत्युदंड संवैधानिक न्याय निर्णयन के घेरे में आ गया है। यह हमारे संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में दर्शित रक्षोपायों के आधार पर है।[686]

5.4.30 यह सच है कि 1980 में बचन सिंह ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड इस बारे में अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण नहीं करता है।

5.4.31 न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि :

कल्पना के किसी भी विस्तार द्वारा यह नहीं कहा जा सकता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 302 के अधीन मृत्युदंड या तो स्वत: या लटकाने के द्वारा उसके निष्पादन के कारण, अयुक्तियुक्त, क्रूर या असामान्य दंड का गठन करता है। उसी संवैधानिक आधारभूत तत्व के कारण, यह नहीं कहा जा सकता कि संविधान के संरचनाकर्ताओं ने हत्या के लिए मृत्युदंड पर विचार किया या इसके निष्पादन के पारम्परिक तरीके को अपमानजनक दंड के रूप में, जो संविधान की उद्देशिका के चिंतन के भीतर 'व्यक्ति की गरिमा' को दूषित करेगा, विहित करने के लिए विचार किया। कारणों की तुलना पर, यह नहीं कहा जा सकता कि हत्या के अपराध के लिए मृत्युदंड संविधान की आधारी विरचना का अतिक्रमण करता है।'

5.4.32 तथापि उसके विनिश्चय के पश्चात् से 30 वर्ष का समय और उस समय से पर्याप्त रूप से परिवर्तित वैश्विक और संवैधानिक परिदृश्य ऐसे कारक हैं, जिन पर मृत्युदंड की संवैधानिकता के किसी पुनर्मूल्यांकन पर विचार किया जाना है।

5.4.33 मृत्युदंड के मनमाने रूप से और असमान रूप से लागू करने से संबंधित चिंता दूर करने के लिए वर्तमान प्रणाली का सुधार करने के लिए विकल्प सीमित हैं। एक तरफ, जैसा बचन सिंह में है और पश्चातवर्ती मीठू बनाम पंजाब राज्य[687] में अभिनिर्धारित किया

---

[685] (1981) 2 एससीसी 35।

[686] बरियार।

[687] मीठू बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684।

गया है, न्यायिक विवेकाधिकार को दंड देने वाली प्रक्रिया से बाहर नहीं किया जा सकता। बिना विवेकाधिकार के दंड देने वाली प्रक्रिया अधिक संगत हो सकती है किन्तु वह मामलों के बीच सुसंगत अंतर की उपेक्षा करने के लिए समान रूप से मनमानी होगी। ऐसी प्रणाली में यह संभावना है कि दंड का दिया जाना गंभीर रूप से अऋजु होगा और निश्चित रूप से न्यायिक कृत्य नहीं रह जाएगा।

5.4.34 तुलनात्मक अनुभव उस दृष्टिकोण के विरुद्ध भी चेतावनी देते हैं जो मानकीकरण और प्रवर्गीकरण पर ध्यान केंद्रित करता है। इसका एक अनुदेशात्मक उदाहरण यूके है। 1953 में, ब्रिटिश रायल कमीशन ने मृत्युदंड की परीक्षा की और निष्कर्ष निकाला, 'ऐसा कोई सूत्र संभव नहीं है जो उन परिस्थितियों की, जो हत्या के अपराध की गंभीरता पर प्रभाव डाल सकती है, असंख्य किस्मों के लिए एक युक्तियुक्त कसौटी का उपबंध करेगा।'[688] रायल कमीशन हत्या की किसी श्रेणी या मात्रा के किसी रूप को अंगीकार किए जाने के विरुद्ध विशेष रूप से अपराध के नैतिक प्रभाव की विस्तृत विविधता को देखते हुए, हत्या के ऐसे प्रवर्ग का, जो निकृष्टतम से निकृष्टतम का गठन करेगा, अग्रिम रूप से अवधारण करना लगभग असंभव बनाते हुए अपनी सिफारिश में एकमत था। यह ग्रेट ब्रिटेन में मृत्युदंड करने के लिए आयोग की सिफारिश का आधार था। 1957 में यूके सरकार ने होमीसाइड ऐक्ट पुर:स्थापित किया जिसने हत्या के विभिन्न प्रवर्गों के बीच विभाजन करने का प्रयास किया और मृत्युदंड को हत्या के छह वर्गों तक निर्बंधित कर दिया।[689] इनके अंतर्गत चोरी के अनुक्रम में या सहायता में की गई या बंदूक चलाकर या विस्फोट कारित करके, विरोध करने के क्रम या उसके प्रयोजन के लिए, विधिपूर्ण गिरफ्तारी से बचने या उसका निवारण करने या विधिपूर्ण अभिरक्षा से भाग निकलना प्रभावी बनाने या उसमें सहायता करने में की गई हत्या; किसी पुलिस अधिकारी की उसके कर्तव्य के निष्पादन में या उसकी सहायता करने वाले किसी व्यक्ति की या किसी कैदी द्वारा कारागार के अधिकारी की उसके कर्तव्यों के निष्पादन में या उसकी सहायता करने वाले किसी व्यक्ति की हत्या, सम्मिलित है। इसके साथ मृत्युदंड दूसरी पृथक् हत्या करने वाले किसी व्यक्ति पर अधिरोपित किया जा सकता था।[690] अधिनियम ने 'घटते हुए उत्तरदायित्व' की आंशिक प्रतिरक्षा और किसी आत्मघाती समझौते के क्रम में हत्या को भी पुन: स्थापित किया।[691]

5.4.35 इस ऐक्ट की एक बड़ी आलोचना (अधिक सिद्धांतपूर्ण और अपवादात्मक दंड देने का प्रारंभ करने के प्रयास के बावजूद वह बेतरतीब आधार था जिस पर मृत्यु दी जाएगी) - उदाहरण के लिए विष द्वारा पूर्व विचार करके निर्दयतापूर्वक की गई हत्या मृत्युदंड का भाग नहीं होगी किन्तु दुर्घटनावश किसी चोरी के क्रम में किसी व्यक्ति की हत्या मृत्युदंड से दंडनीय होगी। समान रूप से यदि कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को कुल्हाड़ी का उपयोग करके मारता है तो वह मृत्यु से दंडनीय हत्या नहीं होगी ; किन्तु अन्य चीजों के समान होने पर यदि शस्त्र बंदूक था, तो वह होगी।[692] इसने विधि को नैतिक या सिद्धांतपूर्ण आधार से वंचित कर दिया और वह व्यवहार में कार्यकरणीय नहीं रह गई।

5.4.36 इसने 1965 के मर्डर (एबोलिशन आफ डेथ पेनल्टी) ऐक्ट का मार्ग प्रशस्त किया, जिसने हत्या के लिए मृत्युदंड पर 5 वर्ष का अधिस्थगन अधिरोपित किया, जिसकी दिसंबर, 1969 में ब्रिटेन में हत्या के लिए मृत्युदंड को औपचारिक रूप से समाप्त करने

---

[688] मृत्युदंड पर रायल कमीशन की रिपोर्ट, 1949-1953, सीएमडी 8932, 595 पर, मैकगाउथा वर्सस कैलिफोर्निया क्वोट किया, 402 यू.एस. 183, 205 (1971)।

[689] ग्राहम ह्यूज , दि इंग्लिश होमीसाइड ऐक्ट आफ 1957। मृत्युदंड के मामले और हत्या तथा मानवहत्या की विधि में किए गए विभिन्न सुधार, 49 (6) अपराधी विधि और दंडशास्त्र के जरनल 521 (1959) http://scholarlycommonslaw.northwestern.edu/cgi/viewcontentogl?article=4773&context=jcic पर उपलब्ध है, 25.08.2015 को देखा गया।

[690] ब्रिटेन में लटकाने पर समाप्ति,http://www.capitalpunishmentuk.org/abolish.thml पर उपलब्ध, 25.08.2015 को देखा गया।

[691] ला कमीशन, कंसल्टेशन पेपर 177, ए न्यू होमीसाइड ऐक्ट फार इंग्लैंड एंड वेल्स, http://www.law.upenn.edu/of/faculty/ofinkets/workingpapers/Report%20for%British%law20commission%20op177.pdf, पृष्ठ 18 पर उपलब्ध है, 25.08.2015 को देखा गया।

[692] गेरनाल्ड गार्डिनर क्यूसी 'क्रिमिनल ला कैपिटल पनिशमेंट इन ब्रिटेन', 45 एबीए, जरनल 259, 260-261(मार्च 1959)।

के लिए पुन: पुष्टि की गई। मृत्युदंड को यथापूर्व करने के लिए 1994 में एक और मतदान को हाउस आफ कामन्श ने 1994 में विफल किया गया था। तत्पश्चात् मृत्युदंड 1971 में रायल डाकयार्ड में आग लगाने के लिए और 1998 में राजद्रोह और हिंसा के साथ जलदस्युता के लिए समाप्त किया गया था और इस प्रकार यह सभी अपराधों के लिए समाप्त हो गया।[693]

5.4.37 भारत का अपना न्याय शास्त्र और अन्य देशों के अनुभव मृत्युदंड के मनमानेपन के उत्तर के रूप में मानकीकरण और प्रवर्गीकरण के विरुद्ध चेतावनी देते हैं।

5.4.38 अन्य विकल्प ऐसे अन्य मार्गदर्शक सिद्धांतों को बनाना है जो कम कठोर हों और लचीलेपन की अनुज्ञा देते हों किन्तु मृत्युदंड के लागू करने के क्षेत्र को सीमित न करते हों। किन्तु यह निश्चित रूप से वह मार्ग है जो बचन सिंह द्वारा लिया गया है। उस मामले में न्यायालय ने एक बहुत ही संकीर्ण अपवादात्मक प्रवर्ग को बनाना चाहा था। तथापि उदाहरण की अभिवृद्धि के साथ बचन सिंह मार्गनिर्देशक तत्व मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए किसी अर्थपूर्ण निर्बंधन से अधिक विधि संगत हो गए हैं। तुलनीय संदर्भों में जब मृत्युदंड देने में मनमानेपन और असमानता का सामना होता है तो अन्य देश मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में बढ़ गए हैं। दक्षिण अफ्रीका में उदाहरण के लिए, मृत्युदंड न्यायिक रूप से अंत तक आ गया है। मक्वानयाने[694] में दक्षिण अफ्रीका के संवैधानिक न्यायालय ने मृत्युदंड की संवैधानिक विधिमानता को, दंड में अंतर्निहित मनमानेपन और असमानता पर भरोसा करते हुए, विखंडित कर दिया और अभिनिर्धारित किया कि :

> यह नहीं कहा जा सकता कि गरीबी, जाति और अवसर मृत्युदंड संबंधी मामलों के परिणाम में, और अंतिम विनिश्चय में कि किसको जीवित रहना चाहिए और किसको मरना चाहिए, भूमिका निभाते हैं । कभी-कभी यह कहा जाता है कि न्यायाधीशों द्वारा, जहां तक संभव हो यह समझा जाता है और उसे ध्यान में रखा जाता है किन्तु स्वयं में यह मनमानेपन की शिकायत का कोई उत्तर नहीं है ; दूसरी तरफ यह मनमानेपन का एक अतिरिक्त कारक प्रारंभ कर सकता है जिसे भी ध्यान में रखना होगा । कुछ किन्तु सभी अभियुक्त नहीं दोषमुक्त हो सकते हैं क्योंकि ऐसी छूटें दी जाती हैं और दूसरे, जो सिद्धदोष ठहराए जाते हैं, किन्तु सभी नहीं, इसी कारण से मृत्युदंड से बच सकते हैं।[695]

5.4.39 न्यायालय की स्वयं की अभिस्वीकृति को ध्यान में रखते हुए कि मृत्युदंड प्रणाली मनमाने ढंग से कार्य करती है। मृत्युदंड लागू करने की चालू पद्धति को समाप्त होना है। तुलनात्मक अनुभव हमें बताता है कि न्यायमूर्ति भगवती द्वारा बचन सिंह में विशिष्ट रूप से प्रकट की गई और उच्चतम न्यायालय के हाल के निर्णयों में प्रतिध्वनित चिंताओं के, मृत्युदंड के साधित्रों में सुधार करने के प्रयासों के बावजूद, बने रहने की संभावना है।

---

[693] ब्रिटेन में लटकाने पर समाप्ति, http://www.capitalpunishmentuk.org/timeline.html पर उपलब्ध है।

[694] राज्य बनाम मकवान्येने और अन्य, दक्षिण अफ्रीका का संवैधानिक न्यायालय, सीसीटी/3/94, जून 6, 1995।

[695] राज्य बनाम मकवान्येने और अन्य, दक्षिण अफ्रीका का संवैधानिक न्यायालय, सीसीटी/3/94, जून 6, 1995, पैरा 51 पर।

अध्याय 6

क्षमा करने संबंधी शक्तियां और मृत्युदंड का निष्पादन करने से संबंधित सम्यक् प्रक्रिया विवाद्यक

क. प्रस्तावना

6.1 उच्चतम न्यायालय ने शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य[696] ('खादे') को भी मृत्यु संबंधी मामलों में भारत के संविधान के अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन कार्यपालिका द्वारा क्षमा करने संबंधी शक्तियों के प्रशासन के बारे में आयोग को उसके विचारण के लिए निर्दिष्ट किया। यह अध्याय किसी मृत्युदंड का लघुकरण करने के लिए कार्यपालिका की शक्ति की प्रकृति, उसके प्रयोजन और क्षेत्र का वर्णन करता है। यह अध्याय न्यायालयों के उन विनिश्चयों की, जहां इन शक्तियों के प्रयोग के परिणाम को रिट कार्यवाहियों में चुनौती दी गई है, परीक्षा करने के अलावा व्यक्तिगत मामलों में दया संबंधी अधिकारिता के लागू होने का भी विश्लेषण करता है।

ख. क्षमा करने संबंधी शक्तियों की प्रकृति, प्रयोजन और क्षेत्र

6.2.1 राज्य और केंद्रीय सरकारों के पास मृत्युदंडों को उनकी अंतिम न्यायिक पुष्टि के पश्चात् लघुकृत करने की शक्तियां हैं। यह शक्ति, न्यायिक शक्ति से असमान रूप में व्यापक विस्तार की है और सीमाबद्ध नहीं हैं सिवाय इसके की इसका प्रयोग अवश्य ही सद्भावपूर्ण होना चाहिए। बहुधा विधिक न्यायनिर्णयन से अज्ञात और असंगत विवाद्यक--नैतिकता, आचार नीति, सार्वजनिक भलाई और नीति संबंधी धारणाएं-- क्षमा संबंधी शक्तियों के प्रयोग से स्वाभाविक रूप से संबद्ध हैं। ये शक्तियां विद्यमान हैं क्योंकि समुचित मामलों में विधि की कठोर अपेक्षाओं को, सही रूप से न्याय पूर्ण परिणाम तक उसके विस्तृतम अर्थ में पहुंचने के लिए, कम करने और उनसे विरत होने की आवश्यकता होती है। किसी मृत्युदंड को कम करने के लिए कार्यपालिका की शक्तियां, दूसरे शब्दों में विधि के कठोरत: लागू करने में कमियों का सुधार करने के लिए, विद्यमान होती हैं। अत: मृत्युदंड को बनाए रखने वाली अधिकारिताओं में दया संबंधी शक्तियों का प्रयोग उस पर निर्भर मानव जिंदगियों को देखते हुए अत्यधिक महत्व का है। प्रत्येक नागरिक को किसी मृत्युदंड को लघुकृत करने के लिए सरकार को याचिका भेजने का अधिकार है। क्योंकि जीवन लेने की राज्य की शक्ति जनता से ही उत्पन्न होती है और फांसियां उनके नाम में ही लगायी जाती हैं।

6.2.2 किसी अपराधी को या तो क्षमा करने की या दिए गए दंड को कम करने की या उसमें परिवर्तन करने की क्षमा संबंधी शक्तियां[697] समरूप शक्तियों में उद्गम रखती हैं जो कि अविस्मरणीय समय से प्रभुत्व संपन्न में निहित की गई हैं। तथापि आज उनका प्रयोग, आधुनिक प्रजातंत्र राज्यों में, जैसा वह प्राचीन काल में था, दया का कोई निजी कार्य नहीं है किन्तु वह गंभीर संवैधानिक उत्तरदायित्व है।[698]

6.2.3 भारत में क्षमा संबंधी शक्तियां संविधान में प्रतिष्ठापित हैं। अनुच्छेद 72 इन शक्तियों को राष्ट्रपति में निहित करता है और अनुच्छेद 161 समरूप शक्तियों को राज्यों के राज्यपाल में निहित करता है :

> अनुच्छेद 72. क्षमता आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राष्ट्रपति की शक्ति - (1) राष्ट्रपति को, किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की—

---

[696] शंकर किशनराव खादे बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2013) 5 एससीसी 546, पैरा 147-150 पर।

[697] क्षमा, प्रविलंबन, विराम, आदि के अर्थ के लिए देखिए राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली सरकार) बनाम प्रेम राज, (2003) 7 एससीसी 121, पैरा 10 पर।

[698] इपरू सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, (2006) 8 एससीसी 161, पैरा 16, 17 पर।

(क) उन सभी मामलों में, जिनमें दंड या दंडादेश सेना न्यायालय ने दिया है,

(ख) उन सभी मामलों में, जिनमें दंड या दंडादेश ऐसे विषय संबंधी किसी विधि के विरुद्ध अपराध के लिए दिया गया है जिस विषय तक संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है,

(ग) उन सभी मामलों में, जिनमें दंडादेश, मृत्यु दंडादेश है,

शक्ति होगी।

(2) खंड (1) के उपखंड (क) की कोई बात संघ के सशस्त्र बलों के किसी आफिसर की सेना न्यायालय द्वारा पारित दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की विधि द्वारा प्रदत्त शक्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी।

(3) खंड (1) के उपखंड (ग) की कोई बात तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी राज्य के राज्यपाल द्वारा प्रयोक्तव्य मृत्यु दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति पर प्रभाव नहीं डालेगी।

6.2.4 अनुच्छेद 161 कहता है :

अनुच्छेद 161. क्षमा आदि की और कुछ मामलों में दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की राज्यपाल की शक्ति- किसी राज्य के राज्यपाल को उस विषय संबंधी, जिस विषय पर उस राज्य की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार है, किसी विधि के विरुद्ध किसी अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए किसी व्यक्ति के दंड को क्षमा, उसका प्रविलंबन, विराम या परिहार करने की अथवा दंडादेश के निलंबन, परिहार या लघुकरण की शक्ति होगी।

6.2.5 इन शक्तियों में से कोई भी पद के धारक के लिए व्यक्तिगत नहीं हैं किन्तु उसका प्रयोग (क्रमश: अनुच्छेद 74[699], और अनुच्छेद 163[700] के अधीन) मंत्रि परिषद् की सहायता और सलाह पर किया जाना होगा।

---

[699] अनुच्छेद 74. (1) राष्ट्रपति को सहायता और सलाह देने के लिए एक मंत्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान, प्रधानमंत्री होगा और राष्ट्रपति अपने कृत्यों का प्रयोग करने में ऐसी सलाह के अनुसार कार्य करेगा :

परंतु राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद् से ऐसी सलाह पर साधारणतया या अन्यथा पुनर्विचार करने की अपेक्षा कर सकेगा और राष्ट्रपति ऐसे पुनर्विचार के पश्चात् दी गई सलाह के अनुसार कार्य करेगा।

(2) इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राष्ट्रपति को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

[700] अनुच्छेद 163 . (1) जिन बातों में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने कृत्यों या उनमें से किसी को अपने विवेकानुसार करे उन बातों को छोड़कर राज्यपाल को अपने कृत्यों का प्रयोग करने में सहायता और सलाह देने के लिए एक मत्रि-परिषद् होगी जिसका प्रधान, मुख्यमंत्री होगा।

(2) यदि कोई प्रश्न उठता है कि कोई विषय ऐसा है या नहीं जिसके संबंध में इस संविधान द्वारा या इसके अधीन राज्यपाल से यह अपेक्षित है कि वह अपने विवेकानुसार कार्य करे तो राज्यपाल का अपने विवेकानुसार किया गया विनिश्चय अंतिम होगा और राज्यपाल द्वारा की गई किसी बात की विधिमान्यता इस आधार पर प्रश्नगत नहीं की जाएगी कि उसे अपने विवेकानुसार कार्य करना चाहिए था या नहीं।

(3) इस प्रश्न की किसी न्यायालय में जांच नहीं की जाएगी कि क्या मंत्रियों ने राज्यपाल को कोई सलाह दी, और यदि दी तो क्या दी।

6.2.6 क्षमा संबंधी शक्तियां सामान्यता किसी अपराधी की न्यायिक सिद्धदोषिता और उसे दंड दिए जाने के पश्चात् भूमिका निभाती हैं । इन क्षमा संबंधी शक्तियों के प्रयोग में राष्ट्रपति और राज्यपाल मामले के अभिलेख की संवीक्षा करने और दोषिता या दंड के बिंदु पर न्यायिक अधिमत से भिन्न राय रखने के लिए सशक्त है। उस समय भी जब वे इस प्रकार भिन्न राय नहीं रखते हैं, वे उन कारकों को ध्यान में रखते हुए, जो न्यायिक दृष्टि से बाहर और परे हैं, मामले में कठिनाई ठीक करने, गलती सुधारने और पूर्ण न्याय करने के लिए अपनी क्षमा संबंधी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं। वे नए साक्ष्य को भी, जो न्यायालयों के समक्ष नहीं रखा था, देखने के लिए सशक्त हैं। केहर सिंह बनाम भारत संघ ('केहर सिंह')[701] में संवैधानिक न्यायपीठ (पांच न्यायाधीश) ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया था :

> 7.....किसी सभ्य समाज के लिए उसके सदस्यों के जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता से महत्वपूर्ण कोई गुण नहीं हो सकता। यह संविधान के अनुच्छेद 21 को न्यायालयों द्वारा दी गई सर्वोच्च स्थिति से स्पष्ट है। ये दो गुण सभी अन्य राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के गुणों के ऊपर मूल प्रभुता का उपभोग करते हैं और परिणामस्वरूप विधान मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका उनके प्रति दैनिक विद्यमानता के अन्य गुणों से अधिक संवेदनग्राही है। राज्य के कार्य द्वारा व्यक्तिगत स्वतंत्रता का वंचन और वंचन की धमकी को अत्यधिक सभ्य समाजों में गंभीर रूप से लिया जाता है और उनके लिए या तो स्पष्ट संवैधानिक उपबंध के अधीन या विधायी अधिनियमिति के माध्यम से अवलंब लेने के लिए न्यायपालिका के अंग का उपबंध किया गया है। किन्तु अत्यधिक प्रशिक्षित मस्तिष्क में भी, ऐसे मस्तिष्क में जो अनुभवों की खेती से सज्जित है, मानव निर्णय की भ्रमशीलता से इंकार नहीं किया जा सकता, अत: यह समुचित समझा गया है कि जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मामले में, जीवन के धमकी भरे वंचन या व्यक्तिगत स्वतंत्रता के धमकी भरे या लगातार वंचन की विधिमान्यता की संवीक्षा करने के लिए आगे किसी उच्च प्राधिकारी को शक्ति सौंप कर संरक्षण का विस्तार किया जाना चाहिए। इस प्रकार सौंपी गई शक्ति जनता से संबंधित और राज्य के सर्वोच्च पदाधिकारी में विश्वास से रखी गई शक्ति है।.....
>
> .....10. क्षमा करने की शक्ति संवैधानिक स्कीम का भाग है और हमें इस बारे में, अपने मस्तिष्क में कोई संदेह नहीं है कि इसको भारतीय गणतंत्र में इसी प्रकार माना जाना चाहिए। इसे जनता द्वारा संविधान के माध्यम से राज्य के प्रमुख में विश्वासपूर्वक रखा गया है, जो सर्वोच्च स्थिति का उपभोग करता है। यह बड़े महत्व का संवैधानिक उत्तरदायित्व है जिसका जब अवसर आए, संदर्भ द्वारा अनुध्यात विवेकानुसार प्रयोग किया जाना है। हमारा विचार है कि राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 72 द्वारा उसमें निहित शक्ति का आपराधिक मामले के अभिलेख पर साक्ष्य की संवीक्षा करने और उससे, जो न्यायालय द्वारा अभियुक्त की दोषिता के संबंध में और उस पर अधिरोपित दंड के संबंध में अभिलिखित किया गया है, भिन्न निष्कर्ष पर आने के लिए स्वतंत्र है। ऐसा करने में राष्ट्रपति न्यायिक अभिलेख का न तो संशोधन करता है, न उसका उपांतरण करता है और न उसे अधिष्ठित करता है। यह न्यायिक अभिलेख अक्षत और बाधा रहित रहता है । राष्ट्रपति पूर्णरूप से भिन्न सतह पर उससे, जिसमें न्यायालय ने कार्य किया था, कार्य करता है। वह संवैधानिक शक्ति के अधीन, जिसकी प्रकृति न्यायिक शक्ति से पूर्णरूप से भिन्न है और जिसे उसका विस्तार नहीं माना जा सकता, कार्य करता है और ऐसा, इस बात के होते हुए भी है कि राष्ट्रपतीय कार्य का व्यवहारिक प्रभाव अपराधी से दोष के कलंक को हटाना या उस पर अधिरोपित दंड से माफी देना है।
>
> ..... यह स्पष्ट है कि अनुच्छेद 72 के अधीन शक्ति राष्ट्रपति को आपराधिक मामले के साक्ष्य के अभिलेख की परीक्षा करने के लिए और स्वयं के लिए यह अवधारणा करने के लिए कि क्या मामला उस शक्ति के भीतर आने वाले अनुतोष को प्रदान किए जाने के योग्य है, हकदार बनाती है। राष्ट्रपति इस बात के होते हुए भी कि इस न्यायालय द्वारा

---

[701] (1989) 1 एससीसी 204।

उसको दिए गए विचारण की शक्ति द्वारा न्यायिक रूप से निष्कर्ष निकाला गया है, मामले के गुणागुण पर विचार करने का हकदार है।

.....16.....तथापि कोई निश्चित स्पष्ट रूप से परिभाषित और पर्याप्त रूप से रास्ता बनाए गए मार्गनिर्देशक तत्वों को अधिकथित करना संभव नहीं हो सकता है क्योंकि हमको यह अवश्य याद रखना चाहिए कि अनुच्छेद 72 के अधीन शक्ति विस्तृतम विस्तार की है, जो मामला दर मामला विभेदकारी तथ्यों और स्थितियों के साथ मामले की असंख्य किस्मों और प्रवर्गों को अनुध्यात कर सकती है, जिनमें गुणागुण और राज्य के कारणों की विद्यमान अवसर और निकलने वाले समय द्वारा गहन रूप से सहायता की जा सकती है और यह बहुत बड़े महत्व की बात है कि कृत्य स्वयं संवैधानिक स्कीम में ऊंची प्रास्थिति का उपभोग करता है।[702]

6.2.7 इस प्रकार यह देखा जाएगा कि क्षमा संबंधी शक्तियां, जबकि बहुत से विचारणों और अपरिवर्तनशील अवसरों के लिए प्रयोक्तव्य होते हुए , न्यायिक गलती या न्याय की हत्या की संभावना के विरुद्ध अंतिम रक्षोपाय के रूप में भी कृत्य करती हैं। यह इस शक्ति का उपभोग करने वाले पर भारी उत्तरदायित्व डालता है और मस्तिष्क का पूर्ण उपयोजन, न्यायिक अभिलेखों की संवीक्षा और क्षमा संबंधी याचिका का न्यायनिर्णयन करने में विस्तृत प्रकार की जांच, विशेष रूप से न्यायिक रूप से पुष्टि किए गए मृत्युदंडादेश के अधीन कैदी से, जो फांसी दिए जाने के किनारे पर है, करना आवश्यक बनाता है।

6.2.8 भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने मृत्युदंडादेश के कैदियों द्वारा प्रस्तुत की गई दया याचिकाओं के संबंध में कार्रवाई करने के लिए राज्य सरकारों और कारागार प्राधिकारियों का मार्गदर्शन करने के लिए 'मृत्युदंडादेश संबंधी मामलों में दया के लिए याचिका के संबंध में प्रक्रिया' का प्रारूपण किया है। इन नियमों को उच्चतम न्यायालय द्वारा शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ[703] ('शत्रुध्न चौहान') में संक्षेप में दिया गया था :

98. गृह मंत्रालय,भारत सरकार के पास मृत्युदंडादेश संबंधी मामलों में दया के लिए याचिका के संबंध में ब्यौरे वार प्रक्रिया है।

98.1 उक्त प्रक्रिया के अनुसार नियम 1 मृत्युदंड के अधीन सिद्धदोषी को उस दिन से 7 दिन के भीतर और उस दिन का अपवर्जन करके, जिसको जेल का अधीक्षक उच्चतम न्यायालय द्वारा उसकी अपील खारिज किए जाने की या उच्चतम न्यायालय को अपील के लिए की गई विशेष इजाजत के लिए उसका आवेदन खारिज किए जाने की सूचना देता है, दया के लिए याचिका प्रस्तुत करने के लिए समर्थ बनाता है।

98.2 नियम 2 याचिकाओं के प्रस्तुत किए जाने के लिए प्रक्रिया विहित करता है। इस नियम के अनुसार ऐसी याचिकाएं राज्यों के मामले में प्रथमत: राज्य के राज्यपाल को और तत्पश्चात् भारत के राष्ट्रपति को संबोधित की जाएंगी और संघ राज्यक्षेत्रों की दशा में सीधे भारत के राष्ट्रपति को संबोधित की जाएंगी। जैसे ही दया याचिका प्राप्त होती है, दंडादेश का निष्पादन सभी मामलों में उस पर आदेशों की प्राप्ति लंबित होने तक स्थगित कर दिया जाएगा।

98.3 नियम 3 कहता है कि याचिका प्रथमत:, राज्यों की दशा में, संबंधित राज्य को विचारण के लिए और राज्यपाल के आदेशों के लिए भेजी जाएगी। यदि विचारण के पश्चात् उसे नामंजूर कर दिया जाता है तो वह भारत सरकार के गृह मंत्रालय के सचिव को अग्रेषित की जाएगी। यदि यह विनिश्चय किया जाता है कि मृत्युदंड का लघुकरण किया जाए, तो राष्ट्रपति को संबोधित याचिका रोक ली जाएगी और उस आशय की सूचना याचिककर्ता को भेजी जाएगी।

---

[702] केहर सिंह बनाम भारत संघ, (1989) 1 एससीसी 204, पैरा 7, 10 और 16 पर।

[703] (2014) 3 एससीसी 1।

98.4 नियम 5 कथन करता है कि उन सभी मामलों में, जिनमें मृत्युदंड के अधीन किसी सिद्धदोषी की दया याचिका को, यथास्थिति, भारत सरकार के गृह मंत्रालय के सचिव, राज्यपाल/ मुख्य आयुक्त/प्रशासक या संबंधित राज्य सरकार को भेजा जाना है, वहां वह ऐसी याचिका को यथासंभवशीघ्रता से मामले के अभिलेखों और याचिका में दिए गए आधारों में से किसी के संबंध में अपने संप्रेक्षणों के साथ अग्रेषित करेगा।

98.5 नियम 6 आदेश देता है कि राष्ट्रपति के आदेशों की प्राप्ति पर एक अभिस्वीकृति तुरंत विहित रीति से भारत सरकार के गृह मंत्रालय के सचिव को भेजी जाएगी। असम तथा अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों की दशा में सभी आदेश तार द्वारा संसूचित किए जाएंगे और उनकी प्राप्ति की अभिस्वीकृति भी तार द्वारा भेजी जाएगी। अन्य राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों की दशा में, यदि याचिका नामंजूर कर दी जाती है, तो आदेश एक्सप्रेस पत्र द्वारा संसूचित किए जाएंगे और उनकी प्राप्ति की अभिस्वीकृति एक्सप्रेस पत्र द्वारा भेजी जाएगी। मृत्युदंडादेश को लघुकृत करने वाले आदेश दिल्ली की दशा में एक्सप्रेस पत्रों द्वारा भेजे जाएंगे और सभी अन्य मामलों में तार द्वारा संसूचित किए जाएंगे और उनकी प्राप्ति की अभिस्वीकृति, यथास्थिति, एक्सप्रेस पत्र या तार द्वारा भेजी जाएगी।

98.6 नियम 8(क) सिद्धदोषी को समर्थ बनाता है कि यदि परिस्थितियों में कोई परिवर्तन होता है या कोई नई सामग्री उसकी पूर्ववर्ती दया याचिका के नामंजूर किए जाने के संबंध में उपलब्ध होती है, तो वह राष्ट्रपति को पूर्ववर्ती आदेश पर पुनर्विचार करने के लिए नया आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है।

99 मृत्युदंड के अधीन सिद्धदोषियों के लिए या उनकी ओर से दया याचिकाओं के संबंध में जेल के अधीक्षकों के कर्तव्यों से संबंधित विनिर्दिष्ट अनुदेश जारी किए गए हैं।

99.1 नियम 1 आदेश देता है कि उच्च न्यायालय द्वारा मृत्युदंड की पुष्टि किए जाने के परिणामस्वरूप फांसी के वारंट की प्राप्ति पर तुरंत जेल अधीक्षक संबंधित सिद्धदोषी को सूचित करेगा कि यदि वह उच्चतम न्यायालय को अपील करना चाहता है या भारत के संविधान के सुसंगत उपबंधों में से किसी के अधीन उच्चतम न्यायालय को अपील के लिए विशेष इजाजत के लिए आवदेन देना चाहता है, तो उसे ऐसा उच्चतम न्यायालय के नियमों में विहित अवधि के भीतर करना चाहिए।

99.2 नियम 2 यह स्पष्ट करता है कि सिद्धदोषी द्वारा या उसकी ओर से फाइल की गई अपील या अपील करने की विशेष इजाजत के लिए आवेदन के उच्चतम न्यायालय द्वारा खारिज कर दिए जाने की सूचना की प्राप्ति पर, यदि संबंधित सिद्धदोषी ने पहले ही दया के लिए कोई याचिका नहीं भेजी है, तो जेल अधीक्षक तुरंत उसे सूचित करेगा कि यदि वह दया के लिए याचिका भेजने की इच्छा रखता है तो उस याचिका को ऐसी सूचना प्राप्ति की तारीख से 7 दिनों के भीतर प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

99.3 नियम 3 कहता है कि यदि सिद्धदोषी नियम 2 द्वारा विहित 7 दिन की अवधि के भीतर कोई याचिका प्रस्तुत करता है तो वह राज्यों की दशा में, प्रथमत: राज्य के राज्यपाल को और तत्पश्चात् भारत के राष्ट्रपति को और संघ राज्यक्षेत्र की दशा में भारत के राष्ट्रपति को संबोधित की जानी चाहिए। जेल का अधीक्षक तत्काल उसे संबंधित विभाग में राज्य के सचिव को या, यथास्थिति, उप राज्यपाल/मुख्य आयुक्त/प्रशासक को फांसी के लिए नियत की गई तारीख की सूचना देते हुए एक व्याख्या पत्र के साथ भेजेगा और यह प्रमाणित करेगा कि फांसी को याचिका पर सरकार के आदेश प्राप्त किए जाने तक रोक दिया गया है।

99.4 नियम 4 आदेश देता है कि यदि सिद्धदोषी नियम 2 द्वारा विहित अवधि के पश्चात् याचिका भेजता है तो जेल का अधीक्षक, तुरंत, उसे राज्य सरकार को भेजेगा और उसी समय उसके सार को ऐसे आदेशों के लिए अनुरोध करते हुए कि क्या फांसी स्थगित की जानी चाहिए, यह कहते हुए कि उत्तर के लंबित होने तक फांसी नहीं दी जाएगी, तार द्वारा अग्रेषित करेगा।

100. उपर्युक्त नियम यह स्पष्ट करते हैं कि प्रत्येक प्रक्रम पर मामले पर शीघ्रता से कार्रवाई की जानी है और उसमें अधिकारियों के, विशेष रूप से, जेल अधीक्षक के कहने पर, वहां उपयोग किए गए 'तुरंत' शब्द का ध्यान रखते हुए, कोई विलंब नहीं किया जा सकता।

101. दया याचिकाओं के प्रस्तुत किए जाने और उनका निपटारा किए जाने से संबंधित उपर्युक्त नियमों से पृथक् गृहमंत्री द्वारा अनुमोदित किए जाने वाले और भारत के राष्ट्रपति द्वारा समुचित आदेश पारित करने के लिए टिप्पण को तैयार करने के लिए आवश्यक अनुदेश जारी किए गए हैं।

102. दया याचिकाओं के निपटारे के लिए लागू विभिन्न राज्यों की कारागार मैनुअलों से उद्धरण हमारे सामने रखे गए हैं। प्रत्येक राज्य की पृथक् कारागार मैनुअल है, जो शीघ्रतापूर्वक विनिश्चय किए जाने के लिए ब्यौरे वार प्रक्रिया, गृह मंत्री और राष्ट्रपति के अनुमोदन के लिए अपेक्षित सामग्री की प्राप्ति और उसके रखे जाने के बारे में बताती है। नियम दया याचिका की प्राप्ति के पश्चात् जेल के अधीक्षक द्वारा की जाने वाली कार्रवाई और भारत के राष्ट्रपति द्वारा उसके निपटाए जाने के पश्चात्, पश्चातवर्ती कार्रवाई के बारे में भी उपबंध करते हैं। लगभग सभी नियम विहित करते हैं कि मृत्यु सिद्धदोषियों के साथ, भारत के राष्ट्रपति द्वारा अंतिम विनिश्चय किए जाने तक, कैसे व्यवहार किया जाना है।

103. उपरोक्त विस्तृत प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दर्शित करती है कि मृत्युदंड के सिद्धदोषियों के साथ भी भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की दृष्टि से उचित व्यवहार किया जाना है। तथापि, यहां सभी याचिकाकर्ताओं का दावा है कि इन सभी नियमों का कठोरत: पालन नहीं किया गया है और वह दया याचिकाओं के निपटारे में अत्यधिक विलंब के लिए प्राथमिक कारण हैं। उदाहरण के लिए दया याचिका की प्राप्ति पर संबंधित विभाग को सिद्धदोषी से संबंधित सभी अभिलेखों/सामग्रियों को मंगाना होता है। दोषसिद्धि से संबधित सभी सामग्रियों की बजाय टुकड़ों में अभिलेखों का मंगाना निरुत्साहित किया जाना चाहिए। जब मामले को राष्ट्रपति के समक्ष रखा जाता है, तो गृह मंत्रालय के लिए यह अत्यावश्यक है कि वह तुरंत सिद्धदोष से संबंधित सभी सामग्री जैसे विचारण न्यायालय, उच्च न्यायालय और अंतिम न्यायालय अर्थात् उच्चतम न्यायालय के निर्णय और कुछ अन्य सुसंगत सामग्री राष्ट्रपति के समक्ष रखे और अभिलेखों को टुकड़ों में न मंगाए।[704]

ग. दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग की परीक्षा करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन का मानक

6.3.1 उच्चतम न्यायालय ने दया संबंधी उपबंधों (अनुच्छेद 72 और 161) की प्रकृति को संवैधानिक कर्तव्य के रूप में, विशेषाधिकार या अनुग्रह के विषय के बजाय, विशेषीकृत किया है। उच्चतम न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान में निम्नलिखित संप्रेक्षण किया :

संक्षेप में संविधान के अनुच्छेद 72 के अधीन राष्ट्रपति में और अनुच्छेद 161 के अधीन राज्यपाल में निहित शक्ति एक संवैधानिक कर्तव्य है। परिणामस्वरूप न तो यह अनुग्रह का मामला है और न विशेषाधिकार है किन्तु यह जनता द्वारा सर्वाच्च प्राधिकारी में निक्षेप किया गया महत्वपूर्ण संवैधानिक उत्तरदायित्व है। क्षमा करने की शक्ति अनिवार्य रूप से एक कार्यपालिका का कार्य है, जिसका न्याय की सहायता में और न कि उसके विरोध में प्रयोग किए जाने की आवश्यकता है।

[704] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 98-103 पर।

आगे यह अच्छी तरह से परिनिर्धारित है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन शक्ति का प्रयोग मंत्रि परिषद् की सहायता से और उसकी सलाह पर किया जाना है।[705]

6.3.2 उच्चतम न्यायालय ने आगे इपुरु सुधाकर बनाम आन्ध्र प्रदेश राज्य[706] में अभिनिर्धारित किया कि संविधान के अनुच्छेद 72 के अधीन राष्ट्रपति द्वारा और अनुच्छेद 161 राज्यपाल द्वारा शक्ति का प्रयोग न्यायिक पुनर्विलोकन के सीमित रूप के अधीन है।[707] उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन दया के विशेषाधिकार का विधि के नियम के सिद्धांत के अनुसार निर्वहन किया जाना चाहिए, जिसमें ऋजुता और विधिक निश्चितता आवश्यक तत्व हैं।[708] आगे उच्चतम न्यायालय के विभिन्न विनिश्चयों में इन दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग को चुनौती देने के लिए निम्नलिखित आधारों को दिया गया है :[709]

(क) शक्ति का प्रयोग राज्यपाल/राष्ट्रपति द्वारा स्वयं सरकार की सलाह के बिना किया गया है ;

(ख) शक्ति के प्रयोग में राज्यपाल/राष्ट्रपति ने अपनी अधिकारिता का अतिक्रमण किया है ;

(ग) यदि अनुच्छेद 72 या अनुच्छेद 161 के अनुसरण में पारित आदेश प्रकट करता है कि मस्तिष्क का उपयोग नहीं किया गया है या उसका असद्भावपूर्ण आधार है ;

(घ) शक्ति का राजनैतिक विचारण के आधार पर प्रयोग किया गया है ;

(ड.) आदेश मनमानेपन से पीड़ित है ;

(च) शक्ति के प्रयोग की रीति निम्नलिखित त्रुटियों से पीड़ित है :

- बाह्य या पूर्णरूप से असंगत विचारण को ध्यान में रखा गया है ;
- □□□□□□ □□□□□□□ □□ □□□□□□ □□ □□□□ □□□ □□□ □□।

घ. दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग का न्यायिक पुनर्विलोकन करने वाले रिट न्यायालयों का कर्तव्य

6.4 उच्चतम न्यायालय ने मृत्युदंड संबंधी मामलों में कार्यपालिका के प्राधिकारियों द्वारा दया संबंधी अधिकारिता के निर्वहन की परीक्षा करने में संकटमय भूमिका का प्रतिषेध किया है। न्यायालय ने न्याय शास्त्र के इस निकाय को 'दया न्याय शास्त्र'[710] के रूप में माना है और इसे 'शिष्टता के मानक, जो समाज का प्रमाण चिह्न है विकसित करने'[711], से जोड़ दिया है। वास्तव में न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान में संप्रेक्षण किया कि 'न्यायिक हस्तक्षेप संविधान का समादेश है' जब कि कार्यपालिका द्वारा दया संबंधी शक्ति के प्रयोग में

---

[705] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 242 पर।

[706] इपरू सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, (2006) 8 एससीसी 161 पर।

[707] इसे भी देखिए, नारायण दत्त बनाम पंजाब राज्य, (2011) 4 एससीसी 353, पैरा 14-31 पर ; बी.पी. सिंघल बनाम भारत संघ, (2010) 6 एससीसी 331, पैरा 76 पर ; शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 22 पर।

[708] इपरू सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, (2006) 8 एससीसी 161, पैरा 65-67 पर।

[709] देखिए मारु राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107, पैरा 62-65 पर ; इपरू सुधाकर बनाम आंध्र प्रदेश सरकार, (2006) 8 एससीसी 161 पर, पैरा 34-38 ; नारायण दत्त बनाम पंजाब राज्य, (2011) 4 एससीसी 353, पैरा 24 पर ; शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 23-24 पर।

[710] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 242-245 पर।

[711] मारू राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107।

सम्यक् सावधानी बरते जाने का और परिश्रमशीलता का अभाव है और वह स्वच्छंद हो गई है।[712] न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान में इस निमित्त निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :

> 242. पूर्वोक्त समूह के मामलों में हमसे एक विकासशील न्यायशास्त्र पर, जिसकी कि भारत वैश्विक विधिक कार्यक्षेत्र के पुरोभाग में होने के कारण अपनी साख रखता है, विनिश्चय करने के लिए कहा गया है। दया संबंधी न्यायशास्त्र शिष्टता के मानक विकसित करने का, जो कि समाज का प्रमाण चिह्न है, एक भाग है।
>
> 243. निश्चित रूप से इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठों की आवलियों ने दशाब्दियों के समय से भारत में मृत्युदंड की संवैधानिक विधिमान्यता की मर्यादा को बनाए रखा है किन्तु ये निर्णय दंडादेश के निष्पादन में विधि द्वारा स्थापित सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के कर्तव्य का अपहरण नहीं करते हैं। जिस प्रकार कि मृत्युदंड विधिपूर्ण रूप से दिया जाता है, दंडादेश का निष्पादन भी संवैधानिक आदेश के अनुरूप और न कि संवैधानिक सिद्धांतों के अतिक्रमण में, होना चाहिए।
>
> 244. यह सुस्थापित है कि राष्ट्रपति या राज्यपाल द्वारा अनुच्छेद 72/161 के अधीनशक्ति का प्रयोग संवैधानिक बाध्यता है न कि केवल विशेषाधिकार। कार्यालय की ऊंची प्रास्थिति पर विचार करते हुए संविधान के बनाने वालों ने उक्त अनुच्छेदों के अधीन दया याचिकाओं का निपटारा करने के लिए किसी अन्य बाह्य सीमा को अनुबद्ध नहीं किया, जिसका तात्पर्य यह है कि इसका विनिश्चय युक्तियुक्त समय के भीतर होना चाहिए। तथापि, जब दया याचिका के निपटारे में किसी विलंब को अयुक्तियुक्त, स्पष्ट और परिमित रूप में देखा जाता है तो इस न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह विषय को हाथ में ले और इस पहलू पर विचार करे। संविधान के अनुच्छेद 72/161 के अधीन दया मांगने का अधिकार संवैधानिक अधिकार है और वह कार्यपालिका के विवेकाधिकार या मनमौजीपन पर आधारित नहीं है। प्रत्येक संवैधानिक कर्तव्य को सम्यक् सावधानी और परिश्रमशीलता से पूरा किया जाना चाहिए अन्यथा न्यायिक हस्तक्षेप संविधान का, उसके मूल्यों को बनाए रखने के लिए, समादेश है।
>
> 245. याद रखा जाना चाहिए कि प्रतिशोध का हमारे विशाल प्रजातांत्रित देश में कोई मूल्य नहीं है। भारत में एक अपराधी को भी संविधान के अधीन संरक्षण प्राप्त है और यह न्यायालय का कर्तव्य है कि वह उसका परिरक्षण और संरक्षण करे। अत: हम यह स्पष्ट करते हैं कि जब न्यायपालिका ऐसे मामलों में हस्तक्षेप करती है तो वह अनुच्छेद 72/161 के अधीन प्रयोग की गई शक्ति के साथ वास्तव में हस्तक्षेप नहीं करती है किन्तु वह केवल मृत्युदंड के सिद्धदोषी सहित प्रत्येक सिद्धदोषी के लिए संविधान द्वारा दिए गए वास्तविक संरक्षण को बनाए रखती है।[713] (इस पर जोर दिया गया)

ड. राष्ट्रपति द्वारा अनुच्छेद 72 के अधीन शक्ति के प्रयोग में व्यक्तिपरकता

6.5.1 इस पर ध्यान दिया जाना है कि अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन, यथास्थिति, राष्ट्रपति या राज्यपाल को अनुच्छेद 74 और 164 के अधीन मंत्रि परिषद् द्वारा दी गई 'सहायता और सलाह' द्वारा मार्गनिर्देशित और निदेशित होना है। न्यायालय ने ऐसा स्पष्ट शब्दों में मारुराम बनाम भारत संघ[714] में निम्नलिखित पैरा में कहा है :

---

[712] मारू राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107, पैरा 61 पर।

[713] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 242-245 पर।

[714] मारू राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107।

क्योंकि राष्ट्रपति सांकेतिक है, केंद्रीय सरकार वास्तविकता है, जैसे कि राज्यपाल भी कार्यपालिका की शक्ति का औपचारिक प्रमुख और एकमात्र निक्षेपक हैं, किन्तु मंत्रि परिषद् की सलाह पर और उसके अनुसार के सिवाय कार्य करने में असमर्थ है। इसका परिणाम यह है कि राज्य सरकार चाहे राज्यपाल पसंद करे या नहीं, अनुच्छेद 161 के अधीन सलाह दे सकती है और कार्य कर सकती है और राज्यपाल उस सलाह से आबद्ध है। लघुकृत करने और निर्मुक्त करने की कार्रवाई सरकार के विनिश्चय के अनुसरण में हो सकती है और आदेश, राज्यपाल के अनुमोदन के बिना भी, कारबार के नियमों के अधीन और और संवैधानिक शिष्टता के रूप में जारी किया जा सकता है, यह आबद्धकर है कि राज्यपाल के हस्ताक्षर से क्षमा, लघुकरण या निर्मुक्ति को प्राधिकृत किया जाना चाहिए। राष्ट्रपति के संबंध में भी स्थिति सारभूत रूप से समान हैं। राष्ट्रपति या राज्यपाल को स्वतंत्र रूप से विनिश्चय करने या अपने चयन से किसी को निर्मुक्त करने या निर्मुक्त करने से इंकार करने की स्वतंत्रता नहीं है। वेस्टमिनिस्टर प्रणाली के लिए यह मूल है कि कैबिनेट शासन करती है और रानी का आधिपत्य है , जो हमारी प्रणाली में गहरे रूप से समाया हुआ आधारिक है। इस संबंध में कोई गंभीर विरोध विद्वान महा सोलिसिटर द्वारा नहीं किया गया था, जिसके मूल तत्वों की निश्चित समझ ने उसे इस प्रतिपादना को उलटने की अनुज्ञा नहीं दी कि राष्ट्रपति और राज्यपाल पाठ की शब्दावली में कितने ही ऊंचे हों, किन्तु कृत्यकारी मधुर अभिव्यक्ति वाले वे शीघ्रता से मंत्रि परिषद् की सलाह पर और केवल सलाह पर कार्य करते हुए शक्ति का संकीर्ण क्षेत्र रखते हैं। यह विषय अब विवाद से परे है। इस न्यायालय ने प्राधिकार रूप से विधि को शमशेर सिंह मामले में अधिकथित किया है [शमशेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1975)1 एससीआर 814 : (1974)2 एससीसी 831 : 1974 एससीसी (एल एंड एस) 550]। **अत: हम अनुच्छेद 367(1) और साधारण खंड अधिनियम, 1897 के प्रतिनिर्देश किए बिना सहमत हैं कि अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन शक्तियों के प्रयोग के मामले में हमारी संवैधानिक स्कीम में दो उच्चतम पदाधिकारियों को अपने स्वयं के निर्णय से नहीं किन्तु मंत्रियों की सहायता और सलाह के अनुसार कार्य करना चाहिए। अनुच्छेद 74, 42वें संशोधन के पश्चात्, अनुमान को शांत करा देता है और अनुपालन के लिए बाध्य करता है। राज्यपाल अपनी मंत्रि परिषद् की तुलना में राष्ट्रपति से ऊंचा नहीं है सिवाय एक संकीर्ण क्षेत्र में, जो अनुच्छेद 161 को सम्मिलित नहीं करता है। संवैधानिक निष्कर्ष यह है कि राज्यपाल है किन्तु वह राज्य सरकार के लिए एक संक्षिप्त अभिव्यक्ति है और राष्ट्रपति केंद्रीय सरकार के लिए संक्षिप्त रूप है।**[715] (जोर दिया गया)

6.5.2 जबकि भारत का राष्ट्रपति दया याचिका के विचारण में मंत्रि परिषद् द्वारा दी गई सलाह से विचलन न करने के लिए संवैधानिक रूप से बाध्य है, किन्तु ऐसे अवसर रहे हैं जब कि राष्ट्रपति उक्त दया याचिका पर कोई भी विनिश्चय किसी भी तरह का करने से विरत रहा है और इस प्रकार मामले को लंबित रखा है। नीचे दी गई सारणी में आज तक विभिन्न राष्ट्रपतियों द्वारा निपटाई गई दया याचिका के अभिलेख पर विचार-विमर्श किया गया है :[716]

सारणी 6.1. राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित की गई दया याचिकाओं के ब्यौरे

क्र0सं0	राष्ट्रपति का नाम	अवधि	स्वीकार की गई दया याचिकाओं की संख्या	नामंजूर की गई दया याचिकाओं की संख्या	जोड़

[715] मारू राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107, पैरा 61 पर।

[716] यह सारणी पुरालेखीय अनुसंधान और विक्रमजीत बत्रा और अन्य द्वारा संगृहीत सूचना के अधिकार में प्राप्त आंकड़ों पर आधारित है। क्रम सं0 1-9 पर राष्ट्रपतियों द्वारा निपटाई गई दया याचिकाओं के शासकीय आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं और सारणी में आंकड़े अभिलेखागार से किए आनुभविक सत्यापन पर आधारित हैं।

1.	राजेंद्र प्रसाद	26.1.1950-3.5.1962	130	1	181
2.	सर्वपल्ली राधाकृष्णन	13.5.1962-13.5.1967	57	0	57
3.	जाकिर हुसैन	13.5.1967-3.5.1969	22	0	22
4.	वी.वी.गिरि	3.5.1969-20.7.1969; 24.8.1969-24.8.1974	3	0	3
5.	फखरुद्दीन अली अहमद	24.8.1974 – 11.2. 1977			0
6.	एन संजीवा रेड्डी	25.7.1977 – 5.7.1982			0
7.	जैल सिंह	25.7.1982 – 25.7.1987	2	30	32
8.	आर. वेंकटरमन	25.7.1987-25.7.1992	5	45	50
9.	एस.डी. शर्मा	25.7.1992 – 25.7.1997	0	18	18
10.	के. आर. नारायणन	25.7.1997 - 25.7.2002	0	0	0
11.	ए.पी.जे. अब्दुल कलाम	25.7.2002 - 25.7.2007	1	1	2
12.	प्रतिभा पाटिल	25.7.2007-25.7.2012	34	5	39
13.	प्रणब मुखजी	25.7.2012 –	2	31	33
	कुल		**306**	**131**	**437**

6.5.3 1950 -1982 की अवधि के दौरान, जिसमें 6 राष्ट्रपति हुए, मृत्युदंडादेश का आजीवन कारावास में लघुकरण करने के 262 मामलों के विरुद्ध केवल एक दया याचिका को नामंजूर किया गया था। उपलब्ध अभिलेखों के अनुसार राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद ने 180 दया याचिकाओं में से, जिन्हें उन्होंने विनिश्चित किया था, केवल 1 को नामंजूर करते हुए 180 मामलों में मृत्युदंडादेश को लघुकृत किया था। राष्ट्रपति राधाकृष्णन ने उनके द्वारा विनिश्चित की गई सभी 57 दया याचिकाओं में मृत्युदंडादेश को लघुकृत किया था। राष्ट्रपति हुसैन और राष्ट्रपति गिरि ने उनके द्वारा विनिश्चित की गई सभी याचिकाओं में मृत्युदंड को लघुकृत किया था, जबकि राष्ट्रपति अहमद और राष्ट्रपति रेड्डी को अपनी अवधि में किसी दया याचिका के संबंध में कार्रवाई करने का अवसर नहीं मिला।

6.5.4 इस प्रथम स्थिति (1950 -1982) के विरोध में, 1982 और 1997 के बीच 3 राष्ट्रपतियों ने 93 दया याचिकाओं का नामंजूर किया और 7 मृत्यु दंडादेशों को लघुकृत किया। राष्ट्रपति जैल सिंह ने 32 दया याचिकाओं में से, जिनका उन्होंने विनिश्चय किया था, 30 को नामंजूर किया और राष्ट्रपति वेंकटरमन ने 50 दया याचिकाओं में से, जिनका उन्होंने विनिश्चय किया था, 45 को नामंजूर कर दिया। पश्चातवर्ती राष्ट्रपति शर्मा ने उनके समक्ष रखी गई सभी 18 दया याचिकाओं को नामंजूर कर दिया।

6.5.5 जिसे तीसरी स्थिति अर्थात् 1997-2007 कहा जा सकता है, उसमें दो राष्ट्रपतियों ने उनके द्वारा उस दिन की सरकार से उनको प्राप्त लगभग सभी दया याचिकाओं को लंबित रखा और केवल 2 दया याचिकाएं इस अवधि के दौरान विनिश्चित की गई थीं। राष्ट्रपति नारायणन ने उनके समक्ष प्रस्तुत की गई किसी दया याचिका पर कोई विनिश्चय नहीं किया। राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने अपनी अवधि के दौरान केवल दो बार कार्य किया, जिसके परिणामस्वरूप एक को नामंजूर किया गया और दूसरे को लघुकृत किया गया। उनकी 10 वर्षों की सम्मिलित अवधि के दौरान उन्होंने दया याचिकाओं के निपटारे पर ब्रेक लगा दिए।

6.5.6 पश्चातवर्ती राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल ने अपने राष्ट्रपतित्व के दौरान 5 दया याचिकाएं नामंजूर की और 34 मृत्यु दंडादेशों को लघुकृत किया। वर्तमान भारत के राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी ने उनके द्वारा विनिश्चित की गई 33 दया याचिकाओं में से अभी तक 31 को नामंजूर कर दिया है।

6.5.7 राष्ट्रपतियों द्वारा निपटायी गई दया याचिकाओं के चार्ट का अवलोकन सुझाव देता है कि एक मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी का भाग्य जीवन और मृत्यु के मामलों में केवल उस दिन की सरकार की विचारधारा और विचारों पर ही निर्भर नहीं करता है किन्तु राष्ट्रपति के व्यक्तिगत विचारों और विचार प्रणाली पर भी निर्भर करता है।

च. दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग का न्यायिक पुनर्विलोकन

6.6.1 उच्चतम न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान में अभिलिखित किया है कि गृह मंत्रालय दया याचिकाओं का विनिश्चय करते हुए निम्नलिखित कारकों पर विचार करता है :

(क) अभियुक्त का व्यक्तित्व (जैसे आयु, लिंग या मानसिक रूप से कमी) या मामले की परिस्थितियां (जैसे उत्प्रेरण या समरूप न्यायोचित्य) ;

(ख) ऐसे मामले, जिनमें अपीलीय न्यायालय ने साक्ष्य की विश्वसनीयता के बारे में संदेह किया किन्तु कभी भी दोषसिद्धि पर विनिश्चय नहीं किया ;

(ग) ऐसे मामले, जहां यह अभिकथित किया गया है कि नया साक्ष्य मुख्य रूप से यह देखने की दृष्टि से प्राप्य है कि क्या फिर से जांच किया जाना न्यायोचित है ;

(घ) जहां उच्च न्यायालय ने अपील पर दोषमुक्ति को उलट दिया है या अपील में दंडादेश को बढ़ा दिया है ;

(ड.) क्या उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की न्यायपीठ में कोई मत भिन्नता है जो बड़ी न्यायपीठ को निर्देश करना आवश्यक बनाती है ;

(च) सामूहिक हत्या के मामले में उत्तरदायित्व नियत करने में साक्ष्य का विचारण ;

(छ) अन्वेषण और विचारण आदि में लंबे विलंब।[717]

6.6.2 तथापि जब गृह मंत्रालय द्वारा शक्ति के वास्तविक प्रयोग का (जिसकी सिफारिश पर दया याचिकाओं का विनिश्चय किया जाता है) विश्लेषण किया जाता है, यह देखा गया है कि बहुत बार इन मार्गनिर्देशक सिद्धांतों का पालन नहीं किया गया है। अनगिनत मामलों में रिट न्यायालयों ने उस रीति की परीक्षा की है, जिसमें कार्यपालिकाओं ने दया याचिकाओं पर कार्य किया है। वास्तव में उच्चतम न्यायालय ने समूह मामले के भागरूप शत्रुध्न चौहान मामले में 11 रिट याचिकाओं की, जिन्होंने कार्यपालिका द्वारा दया याचिका के नामंजूर किए जाने को चुनौती दी थी, सुनवाई की। इनमें से कुछ विनिश्चयों का निम्लनिखित पृष्ठों में विश्लेषण किया गया है :

(i) दीर्घकालिक मानिसक बीमारी की उपेक्षा की गई : सुन्दर सिंह का मामला[718]

6.6.3 सुन्दर सिंह को अपने 5 संबंधियों को जिन्दा जलाने के लिए मृत्युदंड दिया गया था। उसकी दया याचिका को राज्यपाल द्वारा 21.1.2011 को और तत्पश्चात् राष्ट्रपति द्वारा 31.3.2013 को खारिज कर दिया गया था। यद्यपि उसने अपनी दया याचिका में कहा था कि उसने मानसिक बीमारी के प्रभाव में अपराध किया था। इस दावे की जेल अभिलेखों द्वारा पुष्टि की गई थी, जिनमें दर्शित किया गया था कि उसके असामान्य व्यवहार के कारण उसे अनगिनत चिकित्सीय बोर्डों के सामने प्रस्तुत किया गया था, जिनमें सरकारी मनोवैज्ञानिक थे और जिन्होंने राय दी थी कि वह दीर्घकालिक मनोरोग से पीड़ित था और उसे लंबी अवधि के उपचार की आवश्यकता थी। यह सूचना आवधिक रूप से राज्य सरकार को और भारत सरकार के गृह मंत्रालय को, जिसने फिर भी उसकी दया याचिका को नामंजूर करने का चयन किया, दी गई थी। घटनावश उसे राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किए गए मनोवैज्ञानिकों की टीम द्वारा 'मृत्युदंड दिए जाने के लिए मानसिक रूप से अयोग्य'[719] पाया गया और उसका मृत्युदंड उच्चतम न्यायालय द्वारा लघुकृत कर दिया गया।

---

[717] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 55-56 पर।

[718] सुन्दर सिंह की रिट (रिट याचिका (दां.) सं0 192/2013) पर शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1 के बैच मामले में विचार किया गया। विधि पर चर्चा के लिए पैरा 79-87 देखिए और रिट याचिका (दां.) के परिणाम सं0 192/2013 के परिणाम के लिए पैरा 178-195 देखिए।

[719] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी, पैरा 190 पर।

(ii) अन्वेषण और विचारण में लंबे विलंब अंतर्वलित करने वाले मामले

क. गुरमीत सिंह का मामला[720]

6.6.4 जब मृत्यु पंक्ति में किसी सिद्धदोषी ने पहले ही, उसकी दया याचिका राष्ट्रपति द्वारा विनिश्चित किए जाने के पूर्व, कारागार में पर्याप्त अवधि बिता ली है, तो यह इसका विनिश्चय करने में मजबूत कारक हो जाता है कि क्या ऐसा कैदी अभी तक फांसी का अतिरिक्त दंड दिए जाने के योग्य है या नहीं।

6.6.5 गुरमीत को 16.10.1986 को गिरफ्तार किया गया था, सिद्धदोष ठहराया गया था और 20.07.1992 को विचारण न्यायालय द्वारा मृत्युदंड दिया गया था। उच्च न्यायालय ने 8.3.1996 को (बहुमत के अनुसार), उसके मृत्युदंड की पुष्टि कर दी और उच्चतम न्यायालय ने 28.9.2005 को उसका सिद्धदोष तथा मृत्युदंड बनाए रखा। सिद्धदोषी की दया याचिका का 1.3.2003 को विनिश्चय किया गया था, जिस समय तक वह अभिरक्षा में 27 वर्ष बिता चुका था, जिसमें से लगभग 21 वर्ष उसने मृत्युदंड के अधीन बिताए थे। इन कारकों की उपेक्षा की गई थी और उसकी दया याचिका नामंजूर कर दी गई। उच्चतम न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान में गुरमीत सिंह के मृत्युदंड को, कार्यपालिका द्वारा उसकी दया याचिका निपटाने में अत्यधिक विलंब किए जाने के कारण, लघुकृत कर दिया।

[720] गुरमीत सिंह की रिट (रिट याचिका (दां.) सं0 193/2013) शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1 के बैच मामले में विचार किया गया। रिट याचिका (दा.) सं0 193/2013 के परिणाम के लिए पैरा 148-16 देखिए। गुरमीत सिंह बनाम उत्तर प्रदेश, (2005) 12 एससीसी 107 भी देखिए।

ख. साइमन और अन्य के मामले[721]

6.6.6 साइमन, बिलाबेंद्रन, गगननप्रकाशम और मदिया को 14.7.1993 को गिरफ्तार किया गया था तथा विचारण न्यायालय द्वारा 29.9.2001 को आतंकवादी और विध्वंशकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम के अधीन दोषसिद्ध ठहराया गया था। उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया गया था। राज्य ने उच्चतम न्यायालय से दंड बढ़ाने के लिए अपील की किन्तु उसकी विशेष इजाजत याचिका को विलंब के कारण खारिज कर दिया गया था। जब सिद्धदोषियों द्वारा फाइल की गई आपराधिक अपील की सुनवाई की जा रही थी तब उच्चतम न्यायालय ने स्वप्रेरणा से दंड की वृद्धि के लिए नोटिस जारी कर दिया और तत्पश्चात् सिद्धदोषियों को 29.1.2004 को मृत्युदंड दे दिया। यह पहली बार था, जब सिद्धदोषियों को मृत्युदंड दिया गया था और क्योंकि यह उच्चतम न्यायालय द्वारा किया गया था, अत: उसके पश्चात् कोई अपील संभव नहीं थी। जब सिद्धदोषी के दया अभिवाकों का 9 वर्ष पश्चात् विनिश्चय किया गया, तब तक वे पहले ही कारागार में अभिरक्षा में 19 वर्ष और 7 मास बिता चुके थे। साइमन, बिलाबेंद्रन, गननप्रकाशम और मदिया 50, 55, 60 और 64 वर्षों की आयु के थे, जब उनकी दया याचिकाओं को राष्ट्रपति द्वारा 8.2.2013 को लगभग 9 वर्ष के विलंब के पश्चात् नामंजूर किया गया था। उनकी याचिकाओं को अंतिम रूप से उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुज्ञात किया गया था।

(iii) राष्ट्रपति के लिए तैयार किया गया भागत: और अपूर्ण संक्षेप : महेंद्र नाथ दास का मामला[722]

6.6.7 जब महेंद्र नाथ दास ने राष्ट्रपति द्वारा उसकी दया याचिका के नामंजूर करने को चुनौती दी, तो उच्चतम न्यायालय ने दया याचिका से संबंधित अभिलेखों को समन किया और यह पाया कि इसी मामले में किसी पूर्व राष्ट्रपति द्वारा क्षमा करने संबंधी सिफारिश को राष्ट्रपति प्रतिभा पाटिल के सम्मुख नहीं रखा गया था या उन्हें संसूचित नहीं किया गया था, जब उनसे दया याचिका नामंजूर करने के लिए कहा गया था। उच्चतम न्यायालय ने इसे बहुत गंभीर गलती अभिनिर्धारित किया और दया याचिका के निपटाने में लगाए गए 11 वर्ष के विलंब को मिलाकर कहा कि यह पर्याप्त कारण है कि जिससे दया याचिका की नामंजूरी को अभिखंडित कर दिया जाए और मृत्युदंड का लघुकरण कर दिया जाए।

(iv) मस्तिष्क का अनुपयोजन

क. धनन्जय चटर्जी का मामला[723]

6.6.8 धनन्जय चटर्जी के मामले में जब राज्यपाल को दया याचिका नामंजूर करने की सलाह दी गई थी, उन्हें मामले की कम करने वाली परिस्थितियों के बारे में सूचित नहीं किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने उसे ऐसी गंभीर गलती अभिनिर्धारित किया कि जिसने सिद्धदोषी पर प्रतिकूम प्रभाव डाला था और परिणामस्वरूप दया याचिका की नामंजूरी को अभिखंडित कर दिया। तथापि धनन्जय चटर्जी द्वारा दी गई दया याचिका पश्चातवर्ती कार्यपालिका द्वारा नामंजूर कर दी गई थी और उसे फांसी दे दी गई।

ख. बंडू बाबूराव तिडके का मामला[724]

---

[721] साइमन और अन्य की रिट (रिट याचिका (दां.) सं0 34/2013) शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1 के बैच मामले में विचार किया गया। रिट याचिका (दा.) सं0 34/2013 के परिणाम के लिए पैरा 120-137 देखिए। साइमन बनाम कर्नाटक राज्य, (2004) 2 एससीसी 694 भी देखिए

[722] महेंद्र नाथ दास बनाम भारत संघ, (2013) 6 एससीसी 253।

[723] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (2004) 9 एससीसी 751।

[724] बंधू बाबूराव टिडके बनाम कर्नाटक राज्य (2006 की एसएलपी दं. 3048 में रिपोर्ट न किए गए आदेश) तारीख 10.7.2006।

6.6.9 तिडके की दया याचिका गृह मंत्रालय को 2007 में प्राप्त हुई थी। 2.6.2012 को यह विनिश्चय किया गया था कि उसके मृत्युदंड का लघुकरण किया जाए। तथापि, राष्ट्रपति, गृह मंत्रालय तथा राज्य सरकार के अनजाने में, तिडके की 18.10.2007 को लगभग 5 वर्ष पूर्व कारागार में, जब वह अपनी दया याचिका पर निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा था, मृत्यु हो गई थी। उसकी दया याचिका पर कारागार प्राधिकारियों या राज्य सरकार से अद्यतन जानकारी प्राप्त किए बिना विनिश्चय किया गया था, जो दया याचिका का निर्णय करने में प्रयोग की गई परिश्रमशीलता और प्रक्रिया के बारे में प्रश्न उठाता है।

(v) मामले के सुसंगत अभिलेखों तक पहुंचे बिना नामंजूर की गई दया याचिका :

प्रवीण कुमार का मामला[725]

6.6.10 यद्यपि दया याचिका नियम का नियम 5 विनिर्दिष्ट रूप से अपेक्षा करता है कि राज्य सरकार को, जब वह दया याचिका का विनिश्चय कर रही हो, संपूर्ण अभिलेख भेजा जाए और गृह मंत्रालय द्वारा प्रयोग किए जाने वाले मार्गदर्शक सिद्धांत भी स्पष्ट रूप से अभिलेख की गहन संवीक्षा की अपेक्षा करते हैं। बहुत से मामलों में यह पाया गया है कि केंद्रीय सरकार ने किसी सिद्धदोषी की दया याचिका को बिना पढ़े या विचारण न्यायालय का अभिलेख प्राप्त किए बिना नामंजूर कर दिया है।

6.6.11 उदाहरण के लिए, प्रवीण कुमार के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह पाया कि उसकी दया याचिका को केंद्रीय सरकार और राष्ट्रपति द्वारा विचारण न्यायालय का अभिलेख पढ़े बिना या प्राप्त किए बिना नामंजूर कर दिया गया था। परिणामस्वरूप इस मामले में कम करने वाली परिस्थितियों की ओर या सिद्धदोषी से संबंधित उन परिस्थितियों की ओर जो गृह मंत्रालय के मार्गनिर्देशक सिद्धांतों के अनुसार दया याचिका के न्यायनिर्णयन के लिए आवश्यक है, कोई ध्यान नहीं दिया गया था।

(vi) सदोष फांसी और क्षमा संबंधी प्रक्रिया की असफलता

क. जीता सिंह का मामला[726]

6.6.12 जीता सिंह के मामले पर पूर्व अध्याय में विचार-विमर्श किया गया है किन्तु उसकी सुसंगतता यहां भी है। जीता सिंह , हरवंश सिंह और कशमीरा सिंह को विचारण न्यायालय द्वारा हत्या के एक अपराध में समान भूमिकाओं के लिए मृत्युदंड दिया गया था। उनमें से प्रत्येक ने उच्चतम न्यायालय में पृथक् अपीलें फाइल की, जो विभिन्न न्यायपीठों के समक्ष सुनवाई के लिए आई। जीता की विशेष इजाजत याचिका को 15.4.1976 को खारिज कर दिया गया था। कशमीरा की विशेष इजाजत के लिए याचिका को दंड के प्रश्न पर स्वीकार कर लिया गया था और 10.4.1977 को उसकी अपील मंजूर कर ली गई थी और मृत्युदंड उच्चतम न्यायालय द्वारा लघुकृत कर दिया गया था । हरवंश सिंह की विशेष इजाजत के लिए याचिका को 16.10.1978 को खारिज कर दिया गया था। उसकी पुनर्विलोकन याचिका को 9.5.1980 को खारिज कर दिया गया था और उसकी दया याचिका को राष्ट्रपति द्वारा 22.8.1981 को नामंजूर कर दिया गया था। हरवंश और जीता की दया याचिकाओं को नामंजूर करते समय कार्यपालिका ने यह नहीं देखा कि उच्चतम न्यायालय ने समान रूप से स्थित सह अभियुक्त (कशमीरा सिंह) की अपील को मंजूर कर लिया था और मृत्युदंड को 4 वर्ष से अधिक पूर्व लघुकृत कर दिया था। हरवंश सिंह और जीता सिंह 6.10.1981 को फांसी के लिए अनुसूचित थे। हरवंश सिंह ने एक बार फिर उच्चतम न्यायालय को अनुच्छेद 32 के रूप में अपील की और वह बच गया। जीता नहीं बचा और उसे फांसी पर लटका दिया गया।[727]

---

[725] प्रवीण कुमार की रिट (रिट याचिका (दा.) सं0 187/2013) शत्रुघ्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1 के बैच मामले में विचार किया गया। रिट याचिका (दा.) सं0 187/2013 के परिणाम के लिए पैरा 139-141 देखिए।

[726] हरबंश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1982) 2 एससीसी 101।

[727] हरबंश सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (1982) 2 एससीसी 101। यह भी देखिए, बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (न्यायमूर्ति भगवती का विरोध), (1982) 3 एससीसी 24, पैरा 71 पर, जहां उसने हरवंश सिंह के मामले को 'मृत्युदंड के अधिरोपण में सनकीपन का अत्यधिक ज्वलंत' उदाहरण बताया।

ख. रवजी राव[728] और सुरजा राम[729] के मामले

6.6.13 रवजी राव और सुरजा राम के मामलों पर पूर्व अध्याय में विचार-विमर्श किया गया है । यहां ध्यान इस पर है कि उनकी दया याचिकाओं के बारे में कार्यपालिका द्वारा कैसे कार्यवाही की गई थी।

6.6.14 रवजी @ राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य ('रवजी')[730] में एक मामला, जिसे दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किया गया था, उच्चतम न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया :

> यह अपराध की, न कि अपराधी कि प्रकृति और गंभीरता है जो किसी आपराधिक विचारण में समुचित दंड के विचारण के लिए संगत हैं।[731]

6.6.15 इस प्रकार न्यायालय ने रवजी के मामलें में मृत्युदंड की पुष्टि करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अपराधी से संबंधित परिस्थितियां असंगत हैं और अपराध से संबंधित परिस्थितियों पर अनन्य रूप से ध्यान केंद्रित किया। रवजी के मामले में विनिश्चय का यह पहलू बचन सिंह के विनिर्णय के सीधे विरोध में हैं, जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि सभी मामलों में, जिनमें अत्यधिक क्रूर और जघन्य मामले सम्मिलित हैं, अपराधी से संबंधित परिस्थितियों को पूर्ण वजन दिया जाना चाहिए।[732] जैसा कि पहले अध्याय में देखा गया है। न्यायालय ने संतोष कुमार बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य ('बरियार') में रवजी के मामले और बचन सिंह के बीच विरोध को ध्यान से देखा था और रवजी के विनिश्चय को अनवधानता से किया गया निर्णय पाया था।

6.6.16 यद्यपि रवजी को अनवधानता से किए गए निर्णय के आधार पर मृत्युदंड दिया गया था, उसकी दया याचिका को केवल 8 दिनों में 19.3.1996 को नामंजूर कर दिया गया था और उसे 4.5.1996 को फांसी दी गई थी। समान रूप से सुरजा राम की दया याचिका को, जिसे भी समान कारण से गलत रूप से दंडादिष्ट किया गया था, 7.4.1997 को फांसी दे दी गई थी । उसकी दया याचिका को 14 दिनों में 7.3.1997 को नामंजूर कर दिया गया था।

(vii) पश्चातवर्ती अनवधानता से किए गए घोषित निर्णयों के अधीन मृत्युदंड दिए गए अन्य कैदियों के मामले

6.6.17 उच्चतम न्यायालय ने हाल के वर्षों में बहुत से ऐसे विनिश्चयों को देखा है जिनका परिणाम अनवधानता से मृत्युदंड में हुआ है। इस पहलू पर भी पूर्व अध्याय में कार्रवाई की गई है।[733]

(क) ऐसे मामले, जिन्होंने रवजी के अनवधानता से किए गए विनिश्चय पर भरोसा किया है

6.6.18 बरियार में उच्चतम न्यायालय ने रवजी के मामले में गलती की ओर इंगित करने के पश्चात् ऐसे अन्य 6 मामलों को भी देखा, जिनमें रवजी के मामले का अनुसरण किया गया था और उसने अभिनिर्धारित किया कि ये विनिश्चय भी सदोष किए गए थे :

> शिवाजी बनाम महाराष्ट्र राज्य, मोहन अन्ना चवान बनाम महाराष्ट्र, बंटू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, सुरजा राम बनाम राजस्थान राज्य, दयानिधि बिसोई बनाम उड़ीसा राज्य और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सतान ऐसे विनिश्चय हैं जहां रवजी का अनुसरण किया गया है। यह नहीं मामूल होता है कि इस न्यायालय ने इनमें से अधिकांश मामलों में दंड देने वाली स्थिति में अपराधी से

---

[728] रिजवी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175।

[729] सुरजा राम बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 6 एससीसी 271।

[730] (1996) 2 एससीसी 175

[731] रिजवी इलियास राम चन्द्र बनाम राजस्थान राज्य, (1996) 2 एससीसी 175, पैरा 24 पर।

[732] बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1980) 2 एससीसी 684, पैरा 181 पर।

[733] ऐसे सभी मामलों से, जिन्हें अनवधानता से किया गया माना गया है, कैदियों की व्यापक सूची के लिए सारणी 5.1 के प्रति निर्देश करें।

संबंधित किसी कम करने वाली परिस्थिति या अन्य परिस्थिति पर विचार किया है। यह स्पष्ट है कि रवजी पर न केवल विचार किया गया है किन्तु इस बिंदु पर कि जघन्य अपराधों में अपराधी से संबंधित परिस्थितियां संबद्ध नहीं हैं, उस पर प्राधिकार के रूप में भरोसा भी किया गया है।[734]

6.6.19 न्यायालय ने, बरियार में, यह संप्रेक्षण किया कि यह स्पष्ट है कि इन 6 मामलों में 13 सिद्धदोषियों से संबंधित परिस्थितियों में से कोई भी परिस्थिति अभिलेख पर नहीं लाई गई है और उस पर उच्चतम न्यायालय द्वारा दंड देने वाले विचार-विमर्श के दौरान विचार नहीं किया गया है। ऊपर वर्णित मामले उच्चतम न्यायालय द्वारा बरियार में रवजी का अनुसरण करने के कारण अनवधानता से किए गए विनिश्चय घोषित किए गए हैं। दूसरे मामले, अंकुश मारुति सिंदे और अन्य बनाम महाराष्ट्र राज्य[735] को, जहां 6 व्यक्तियों को रवजी के गलत तर्क का स्पष्ट रूप से अनुसरण करके ऊपर वर्णित जैसे मामलों में, मृत्युदंड दिया गया था, बरियार से कुछ दिन पूर्व विनिश्चित किया गया था और इसलिए उस विनिश्चय में उस पर ध्यान नहीं दिया गया था।

6.6.20 बरियार के पश्चातवर्ती उच्चतम न्यायालय ने पुन: दिलीप तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य[736] में रवजी के मामलें और अन्य ऐसे मामलों में, जिनमें रवजी का अनुसरण किया गया था, की गई गलती के विवाद्यक को उठाया। उच्चतम न्यायालय ने राजेश कुमार बनाम राज्य[737] में एक बार फिर रवजी राव के मामले में और ऐसे अन्य मामलों में, जिन्होंने रवजी के पूर्व निर्णय का अनुसरण किया था, कारित न्याय की हत्या पर जोर दिया। तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य[738] में यह अभिनिर्धारित किया कि रवजी का मामला और उसका अनुसरण करने वाले अन्य मामले दोषपूर्ण रूप से विनिश्चित किए गए हैं।

(ख) साई बन्ना का मामला[739]

6.6.21 उच्चतम न्यायालय ने आलोक नाथ और बरियार में साई बन्ना बनाम कर्नाटक राज्य ('साई बन्ना') में मृत्युदंड के अधिनिर्णय पर संदेह किया है। उस मामले के तथ्य ये हैं कि साई बन्ना ने अपनी पहली पत्नी की हत्या कर दी थी और उसको संदेह था कि वह उसके प्रति बेवफा थी। वह सिद्धदोषी ठहराया गया था और उसे 2.2.1993 को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया गया था। उसने, जबकि वह परोल पर कारागार से बाहर था, पुन: विवाह कर लिया। पश्चातवर्ती 13.9.1994 को जब उसे पुन: परोल पर निर्मुक्त किया गया, उसने अपनी दूसरी पत्नी की भी यह संदेह करते हुए हत्या कर दी कि वह भी उसके प्रति बेवफा थी। 1995 में उस पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 303 के अधीन आरोप लगाए गए थे, जो आज्ञापक मृत्युदंड को विहित करते थे, यद्यपि उस धारा को उच्चतम न्यायालय द्वारा मीठू बनाम पंजाब राज्य ('मीठू')[740] में पहले ही विखंडित किया जा चुका था। उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 303 के अधीन मृत्युदंड की पुष्टि कर दी। उच्चतम न्यायालय ने अपील में निर्णय को बनाए रखा।[741] उस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि साई बन्ना को, जो पहले से ही आजीवन कारावास भुगत रहा है, पुन: आजीवन कारवास का दंड नहीं दिया जा सकता और इसलिए केवल मृत्युदंड ही उपलब्ध दंड था।

---

[734] संतोष कुमार बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 63 पर।

[735] (2009) 6 एससीसी 667, पैरा 28 पर।

[736] दिलीप तिवारी बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2010) 1 एससीसी 775, पैरा 68 पर।

[737] राजेश कुमार बनाम राज्य, (2011) 13 एससीसी 706, पैरा 66 -70 पर।

[738] मोहिन्दर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2013) 3 एससीसी 294, पैरा 37 पर।

[739] साईबन्ना बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 4 एससीसी 165।

[740] मीठू बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 277।

[741] साईबन्ना बनाम कर्नाटक राज्य, (2005) 4 एससीसी 165।

6.6.22 पश्चातवर्ती उच्चतम न्यायालय ने आलोक नाथ दत्ता बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[742] में यह अभिनिर्धारित किया कि अर्जीदार के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण 'संदेहपूर्ण' था। तत्पश्चात् बरियार में, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि साई बन्ना में उसका निर्णय 'मीठू और बचन सिंह से असंगत'[743] था, जिनमें से दोनों संवैधानिक न्यायपीठ के निर्णय हैं। साई बन्ना के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा गलती की यह स्वीकृति भी 14 सेवानिवृत्त न्यायाधीशों द्वारा (जिनमें एक पूर्ववर्ती उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, 5 उच्च न्यायालयों के पूर्ववर्ती मुख्य न्यायामूर्ति और 8 उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती न्यायाधीश सम्मिलित थे), राष्ट्रपति के ध्यान में लाई गई थी । राष्ट्रपति ने साई बन्ना की दया याचिका को 4.1.2013 को नामंजूर कर दिया।

(ग) संगीत और खादे द्वारा अनवधानता से किए गए अभिनिर्धारित विनिश्चय

6.6.23 समान रूप से उच्चतम न्यायालय ने शंकर खादे में धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य[744] में मृत्युदंड के अधिरोपण के सही होने पर संदेह किया, जहां न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि 'किसी प्रस्तुत मामले में दंड का माप अपराध की नृशंसता ; अपराधी के आचरण और पीड़ित के रक्षारहित और असंरक्षित होने की स्थिति पर निर्भर होना चाहिए। समुचित दंड का अधिरोपण वह रीति है, जिसमें न्यायालय अपराधियों के विरुद्ध न्याय के लिए समाज की पुकार का उत्तर देता है।'[745] खादे में न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि प्रथमदृष्टया निर्णय ने अपराधी से संबंधित कम करने वाली परिस्थितियों का लेखा-जोखा नहीं दिया था। धनन्जय चटर्जी को 2004 में फांसी दी गई थी।

6.6.24 समान रूप से, संगीत में न्यायालय ने ऐसे अतिरिक्त 3 मामलों को देखा जहां गुरुतरकारी और कम करने वाली दोनों परिस्थितियों पर विचार करने के लिए बचन सिंह के निर्देश का अनुसरण नहीं किया गया था।[746]

छ. फांसी पूर्व स्थिति में मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषियों पर अधिरोपित दर्द और पीड़ा के संवैधानिक निहितार्थ

6.7.1 भारत में मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी उस समय तक, जब तक वे अपनी आपराधिक अपीलों को नि:शेष करते हैं, बहुत वर्ष बिता चुके होते हैं। एक बार जब उच्चतम न्यायालय द्वारा मृत्युदंड की अंतिम रूप से पुष्टि कर दी जाती है, तब कोई सिद्धदोषी, उसके द्वारा भेजी गई दया याचिका पर राज्यपाल और भारत के राष्ट्रपति से आदेश की प्रतीक्षा में वर्षों बिता देता है। बहुधा मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी को, विचारण न्यायालय द्वारा उसे मृत्युदंड दिए जाने के तुरंत पश्चात् एकांत परिरोध में भेज दिया जाता है और वह बहुल फांसी वारंटों के लिए भी अनावृत्त होता है।

6.7.2 मृत्युदंड के अधीन कैदी फांसी पर लटकाने वाले फंदे के नीचे अपने अस्तित्व को जैसे-तैसे बनाए रखता है और अत्यधिक दर्द, चिंता और सिर पर मंडराती हुई फांसी के कमजोर कर देने वाले डर से पीड़ित रहता है। ऐसी अद्वितीय परिस्थितियों का मिश्रण मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी के लिए घोर यातना वाली शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियां उत्पन्न करता है।[747] इस प्रकार मृत्यु पंक्ति वाले कैदी द्वारा सहे गए इस अनुभव को 'मृत्यु पंक्ति आभास' कहा जाता है।

---

[742] आलोक नाथ दत्त बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2007) 12 एससीसी 230, पैरा 149-50 पर।

[743] संतोष कुमार बरियार बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2009) 6 एससीसी 498, पैरा 49-52 पर।

[744] (1994) 2 एससीसी 220।

[745] धनन्जय चटर्जी बनाम पश्चिम बंगाल राज्य (1994) 2 एससीसी 220, पैरा 15 पर।. इस विनिश्चय का अनन्य केंद्र अपराध पर था और न कि सिद्धदोषी से संबंधित पहलुओं पर था, अत: इस बारे में खादे में प्रश्न उठाए गए थे।

[746] शिवु बनाम महा रजिस्ट्रार, कर्नाटक उच्च न्यायालय, (2007) 4 एससीसी ; राजेंद्र प्रलहादराव वासनिक बनाम महाराष्ट्र राज्य, (2012) 4 एससीसी 37 ; मो0 मन्नन बनाम बिहार राज्य,(2011) 5 एससीसी 317।

[747] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 61 पर।

6.7.3 मृत्यु पंक्ति आभास के मुख्य संघटकों में से एक मृत्युदंड के अधीन जीवित रहने के अद्वितीय दबाव से, जिसके अंतर्गत सिर पर मडराती फांसी का पूर्वावधारण करने की मानसिक व्यथा है, संबंधित है। प्रत्येक क्षण का निकलना भी सिद्धदोषी के लिए आशा का भावी दृश्य उपस्थित करता है जो आवर्त में इस बारे में कि वह घटनात्मक रूप से जीवित रहेगा या नहीं, लगातार मानसिक संघर्ष उत्पन्न करता है ।

6.7.4 आगे मृत्यु पंक्ति आभास में सिद्धदोषी पर अधिरोपित कारावास की दशाओं के, जिनके अंतर्गत एकांत परिरोध और विद्यमान कठोर कारागार की दशाएं भी हैं, अपमानजनक प्रभाव के मिल जाने से और वृद्धि हो जाती है ।

6.7.5 संवैधानिक रूप से यह प्रश्न, ऐसे परिदृश्य से उत्पन्न होने वाले निहितार्थों से संबंधित है, जहां मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी को, उसके मृत्युदंड के निष्पादन के पूर्व, लंबी अवधि के लिए कारावास में रखा जाता है जहां वह व्यथा, दर्द के बढ़ने वाले स्तरों से और फांसी के फंदे की सदैव विद्यमान छाया में जीवित रहने से उत्पन्न दबाव से पीड़ित रहता है। प्रश्न यह है कि क्या सिद्धदोषी द्वारा सहन किया जाने वाला यह मानवता छीन लेने वाला और अपमानकारी अनुभव किसी ऐसी विधिक दशा का गठन करता है, जो पश्चातवर्ती मृत्युदंड के निष्पादन को अननुज्ञेय बनाने वाले का प्रभाव रख सकता है।

6.7.6 उच्चतम न्यायालय ने टी.वी. वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य[748] में और तत्पश्चात् शेरसिंह बनाम पंजाब राज्य[749] में ('शेरसिंह') और त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य[750] ('त्रिवेनीबेन') में मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी द्वारा उसके मृत्युदंड के निष्पादन में लंबे विलंब के कारण उसके द्वारा सहन की जाने वाली पीड़ा की अपमानजनक और मानवता छीन लेने वाली प्रकृति को मान्यता दी है। न्यायालय ने लंबे विलंब को 'अकस्मात आ पड़ने वाली परिस्थिति' के रूप में माना है, जो मृत्युदंड को अनिष्पादनीय बनाने का प्रभाव रखता है।

6.7.7 वर्षों से इस तथ्य के बारे में एक अंतरराष्ट्रीय सहमति प्रकट हुई है कि मृत्यु पंक्ति की कठोर दशाओं के अधीन ऐसे विलंब के पश्चात् जिससे बचा जा सकता है, फांसी क्रूर और अत्यधिक दंड देने वाली होगी।[751]

(i) मृत्यु पंक्ति में सहनशील लंबे वर्ष

6.7.8 उच्चतम न्यायालय, टी वी वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य ('वाथीस्वरन')[752] में अन्यथा विधिमान्य मृत्युदंड के अधिरोपण के पश्चात् फांसी लगाने की अनुज्ञा दिए जाने के लिए सम्यक् प्रक्रिया रोध को बहुत ऊंचा स्थान देता है। न्यायालय ने वाथीस्वरन में पहली बार फांसी लगने के लिए प्रतीक्षा करने वाली मृत्यु पंक्ति में किसी सिद्धदोषी के फांसी-पूर्व कारागार में निहित पीड़ा और दर्द की अद्वितीय प्रकृति से निकलने वाले संवैधानिक निहितार्थों को मान्यता दी। उच्चतम न्यायालय ने वाथीस्वरन में अपने विश्लेषण को इस तथ्य पर आधारित किया कि अनुच्छेद 21 किसी कैदी में उसकी अंतिम श्वास तक और तब तक भी जब तक कि उसकी गर्दन के चारों ओर फंदा कसा जाता है, निहित करता है। न्यायालय ने यह भी संप्रेक्षण किया कि पीड़ा के ढेर से भिन्न कैदी को मृत्युदंड की छाया में वर्षों तक जीवित रहने के कारण भी सहन करना पड़ता है, जिससे बचा जा सकता है और जो मृत्युदंड के निष्पादन की प्रक्रिया को अऋजु, अयुक्तियुक्त, मनमाना और सनकी बनाता है और इसके कारण वह अनुच्छेद 21, अनुच्छेद 14 और

---

[748] (1983) 2 एससीसी 68।

[749] (1983) 2 एससीसी 344।

[750] (1983) 1 एससीसी 678।

[751] सोरिंग वर्सस यूनाइटेड किंगडम, 161इयूआर.सीटी. एच.आर., 154 (1989) पर ; फ्रांसिस वर्सस जमैका (नं0 606/1994). यूएन डीओसी. सीसीपीआर/सी/54/डी/606/1995 (1995) ; प्राट वर्सस अटार्नी जनरल, जमैका, प्रिवी काउंसेल अपील नं0 10, 12 (1993)। प्राट में प्रिवी काउंसेल (1994) 2 ए.सी. 33 में यह अभिनिर्धारित किया कि 'किसी व्यक्ति को मृत्यु पंक्ति में निलंबित जीवन्तता की स्थिति में रखा जाना यह जानते हुए कि किसी भी दिन प्राधिकारी जानबूझकर जीवन समाप्त करने के सुनाए गए अपने निर्णय के आशय को कार्यान्वित कर सकते हैं, मृत्यु से भी अधिक क्रूरतापूर्ण था'।

[752] (1983) 2 एससीसी 68।

अनुच्छेद 19 के अधीन प्रतिष्ठापित सम्यक् प्रक्रिया गारंटियों का अतिक्रामक है।[753] न्यायालय बाथीस्वरन में सिद्धदोषी के अनुच्छेद 21 के अधिकारों को की गई क्षति को भी निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त करता है :

> 11. जब कि हम मृत्युदंड के पश्चात् लंबे विलंब के मानवता छीन लेने वाले प्रभाव के बारे में लार्ड स्कारमेन और लार्ड ब्राइटमेन से पूर्णतया सहमत हैं। हम एक छोटा से कैविएट डालते हैं किन्तु केवल वही, फिर हम आगे जा सकते हैं। हम समझते हैं कि विलंब महत्वहीन है जब दंडादेश मृत्यु है। विलंब के लिए कारण हो सकता है, अपील के लिए आवश्यक समय या प्रविलंबन का विचारण या कोई अन्य कारण, जिसके लिए अपराधी स्वयं उत्तरदायी हो सकता है, किन्तु इससे विलंब के मानवता छीन लेने वाले स्वरूप में परिवर्तन नहीं होगा।
>
> 12. मृत्युदंड के निष्पादन में लंबे विलंब के मानवता छीन लेने वाले तत्व के संवैधानिक निहितार्थ क्या हैं? हमें तुरंत संविधान के अनुच्छेद 21 की ओर लौटना चाहिए क्योंकि यह वह अनुच्छेद है जिसकी ओर हमें संरक्षण के लिए, जब कभी जीवन या स्वतंत्रता खतरे में हो, प्रथम देखना चाहिए। अनुच्छेद 21 कहता है : "किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।" अनुच्छेद 21 की विमाओ का, जिन्हें एक बार ए.के.गोपालन बनाम मद्रास राज्य (एआईआर1950 एससी 27) द्वारा संकुचित किया गया प्रतीत होता था, वास्तव में मेनका गांधी बनाम भारत संघ [(1978)1एससीसी 248] और सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन [(1978) 4 एससीसी 494] द्वारा विस्तार किया गया है।[754] (जोर दिया गया)

6.7.9 न्यायालय ने, नोयल रिले वर्सेस एटार्नी जनरल[755] में प्रिवि काउंसेल के लार्ड स्कारमेन और लार्ड ब्राइटमेन की विसम्मत राय का पक्ष लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के निष्पादन में लंबा विलंब उस विलंब के कारण और प्रकृति की ओर उदासीन रहते हुए, सिद्धदोषी के अधिकारों, अनुच्छेद 21 का उल्लंघन करता है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के निष्पादन में दो वर्ष से अधिक के विलंब को मृत्युदंड के अधीन व्यक्ति को अनुच्छेद 21 का आह्वान करने और मृत्युदंड अभिखंडित करने की मांग करने के लिए हकदार बनाने के लिए पर्याप्त समझा जाना चाहिए।'[756] दूसरे शब्दों में वाथीस्वरन में दो वर्षों की सीमा ने न्यायिक विलंब को क्षमा संबंधी विलंब से भिन्न रूप में नहीं माना अर्थात् न्यायालय ने वाथीस्वरन में इस संरक्षण का विस्तार विचारण और अपील के दौरान कारित विलंबों तक भी कर दिया। वाथीस्वरन के इस पहलू पर शेरसिंह की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा संदेह किया गया।[757] न्यायालय ने शेरसिंह में कहा कि अपीलीय न्यायालय सामान्य क्रम में अपीलों में प्रक्रिया करने के लिए 4 या 5 वर्ष तक लेते हैं, उस समय से पृथक्, जो दया याचिकाओं पर विचार करने के लिए अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन संवैधानिक प्राधिकारियों द्वारा लिया जाता है। अत: न्यायालय ने शेरसिंह में वाथीस्वरन न्यायालय द्वारा प्रतिपादित की गई अनुभव पर आधारित नियम की पहुंच (दो वर्ष की) से विचलन किया और अभिनिर्धारित किया कि विलंब की किसी पूर्व अवधारित अवधि को मृत्युदंड की निराशा की गारंटी देने वाला अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता।

6.7.10 उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ ने त्रिवेनीबेन[758] में न्यायालय द्वारा शेरसिंह में निकाले गए निष्कर्षों का भी पक्ष लिया। त्रिवेनीबेन में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कोई भी मृत्यु पंक्ति सिद्धदोषी, अपीलीय जीवन चक्र में विचारण के लिए ली जाने वाली अपनी अपील के लिए प्रतीक्षा करते समय, अपने पक्ष में न्यायिक आदेश पाने के लिए 'आशा की किरण' रखता है।

---

[753] टी.वी. वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1983) 2 एससीसी 68, पैरा 20 पर ; शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 644, पैरा 23 पर ; जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2009) 9 एससीसी 495, पैरा 48-49 पर।

[754] टी.वी. वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1983) 2 एससीसी 68, पैरा 11-12 पर।

[755] 1982 दंड विधि पुनर्विलोकन 679।

[756] टी.वी. वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य, (1983) 2 एससीसी 68, पैरा 21 पर।

[757] शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 344।

[758] त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 678।

न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसी परिस्थितियों में, जहां अपील अभी तक लंबित है सिद्धदोषी आकस्मिक फांसी की प्रतीक्षा करने की मानसिक यंत्रणा से पीड़ित नहीं होता है क्योंकि मृत्युदंड अभी तक निश्चित रूप से निश्चित नहीं हुआ है । त्रिवेनीबेन में न्यायालय ने निश्चित शब्दों में अभिनिर्धारित किया कि सिद्धदोषी द्वारा अनुच्छेद 21 के प्रयोजन के लिए किया गया विलंब का दावा केवल उसे सक्रिय करने वाला कहा जा सकता है जब एक बार न्यायिक प्रक्रिया उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज कर दिए जाने के पश्चात् समाप्त हो जाती है।[759]

6.7.11 उच्च न्यायालय ने शेरसिंह में यह भी अभिनिर्धारित किया कि अनुच्छेद 32 की ऐसी याचिकाओं में किसी मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी को उस विलंब का लाभ उठाने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती, जो फांसी में विलंब करने के लिए उसके द्वारा फाइल की गई कार्यवाहियों के कारण कारित है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी ऐसे मामले में लघुकरण के लिए कैदी के अभिवाक् का साम्यतापूर्ण आधार पर समझौता हो जाता है यदि उसने किसी प्रकार अपनी दया याचिका के निपटारे में कारित विलंब के लिए योगदान दिया है।[760]

क. प्राट में विलंब का पुनरीक्षित मानक

6.7.12 उच्चतम न्यायालय ने शेरसिंह में और उसके पश्चात् त्रिवेनीबेन में विलंब की गणना से बाहर अपीली कार्यवाहियों में लिए गए समय को आगे बढ़ाकर निष्पादन में परिहार्य विलंब के कारण अपमानजनक दंड पर विधि को तात्पर्यित रूप से सुव्यवस्थित किया है। वह सिद्धदोषी का उसके द्वारा की गई कार्यवाहियों के कारण कारित विलंब के लिए लाभ का दावा करने के लिए भी प्रतिषेध करता है। इस पर ध्यान दिया जाना है कि उच्चतम न्यायालय ने शेरसिंह में उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपीलों के निपटारे का सामान्य अनुभव इस कारण से 4 या 5 वर्ष होने का उद्धत किया। तथापि, इस कारण अंतरराष्ट्रीय संननियमों में तब से परिवर्तन हुआ है।

6.7.13 नोएल रिले वर्सस एटार्नी जनरल[761] में विनिश्चय किए जाने के एक दशक पश्चात् प्रिवी कांउसेल ने प्राट एंड अदर्स वर्सस एजी आफ जमाएका ('प्राट')[762] में अपने विनिश्चय को, भारतीय उच्चतम न्यायालय के वाथीस्वरन, शेरसिंह और त्रिवेनीबेन में विनिश्चय का उद्धरण देते हुए, उलट दिया और यह माना कि लंबा विलंब मृत्युदंड को निष्पादित किए जाने के लिए अमानवीय और अपमानजनक बनाता है। किन्तु ऐसा करने में प्रिवी काउंसेल ने विलंब की एक स्वस्थ समझ प्रस्तुत की। प्रिवी काउंसेल आज मृत्यु पंक्ति में कैदी के लिए प्रतीक्षा के लंबे वर्षों के दमनात्मक प्रभाव पर विचार करते समय विलंब की प्रकृति और विलंब के कारणों के आधार पर सुभिन्नता नहीं करती है। प्रिवी काउंसेल का ध्यान केवल विलंबित फांसी से निकलने वाले मानव अधिकार संबंधी निहितार्थों पर है। प्रिवी काउंसेल ने प्राट में देखा कि भारतीय विधि में अपमानजनक दंड का गठन करने वाले विलंब की परिभाषा के पहलू पर वाथीस्वरन से त्रिवेनीबेन तक विचलन हुआ है और उसने पूर्ववर्ती का पक्ष लिया। प्रिवी काउंसेल ने अभिनिर्धारित किया :

> भारत में जहां मृत्युदंड आज्ञापक नहीं है वहां अपील न्यायालय विलंब को यह विनिश्चय करते हुए ध्यान में रखते हैं कि क्या मृत्युदंड अधिरोपित किया जाना चाहिए। वाथीस्वरन बनाम तमिलनाडु राज्य में न्यायाधीश चिन्नप्पा रेड्डी ने पृष्ठ 353 पर कहा :
>
> > .....न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मृत्युदंड के निष्पादन में दो वर्ष से अधिक का विलंब मृत्युदंड के अधीन किसी व्यक्ति को अपने दंड को विखंडित करने की इस आधार पर मांग करने के लिए हकदार

---

[759] शेर सिंह बनाम पंजाब राज्य, (1983) 2 एससीसी 344, पैरा 18-19 पर ; त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 678, पैरा 16 पर ; त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 678, पैरा 16 पर ; त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1988) 4 एससीसी 574, पैरा 2 पर।

[760] त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एससीसी 17, 23 पर ; शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 48 पर।

[761] नोएल रिले वर्सस अटार्नी जनरल, 1982 दंड विधि पुनर्विलोकन 679।

[762] (1994) 2 एसी 1।

बनाने के लिए पर्याप्त होना चाहिए कि उसने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 का अतिवर्तन किया है, जो उपबंध करता है, ''किसी व्यक्ति को, उसके प्राण या दैहिक स्वतंत्रता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही वंचित किया जाएगा, अन्यथा नहीं।''।

शेरसिंह और अन्य बनाम पंजाब राज्य में न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

'मृत्युदंड के निष्पादन में लंबा विलंब निश्चित रूप से यह अवधारण करने के लिए महत्वपूर्ण विचारण है कि क्या दंड को निष्पादित किए जाने की अनुज्ञा दी जानी चाहिए । किन्तु कोई भी पक्का नियम नहीं है कि मृत्युदंड के निष्पादन में दो वर्ष से अधिक विलंब को मृत्युदंड के अधीन व्यक्ति को अनुच्छेद 21 का आह्वान करने और मृत्युदंड को विखंडित करने की मांग करने के लिए हकदार बनाने के लिए पर्याप्त समझा जाना चाहिए' अधिकथित किया जा सकता है जैसा कि वाथीस्वरन में किया गया है''।

न्यायालय ने इंगित किया कि दो वर्ष की कठोर समय सीमा अधिरोपित करना कैदी को तुच्छ और अमान्य कार्यवाहियों की आवलियों को करके न्याय के उद्देश्य को विफल करने में समर्थ बनाएगा।

श्रीमती त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य (1989) 1एससीजे 383 में भारत के उच्चतम न्यायालय ने शेरसिंह बनाम पंजाब राज्य में निर्णय का अनुमोदन किया और अभिनिर्धारित किया कि 'सर्वोच्च न्यायालय' द्वारा अधिरोपित मृत्युदंड, जिसने मृत्युदंड अधिरोपित करते समय स्वयं विलंब का ध्यान रखा है, उस तारीख के पश्चात् होने वाले विलंब के आधार पर उच्चतम न्यायालय को प्रस्तुत की गई याचिका पर उसके पश्चात् ही अपास्त किया जा सकता है। न्यायाधीश ओजा ने पृष्ठ 410 पर कहा :

यदि, इसलिए निष्पादन में अत्यधिक विलंब है, तो सिद्धदोष कैदी न्यायालय आकर यह अनुरोध करने का हकदार है कि न्यायालय यह परीक्षा करे कि क्या यह न्याय संगत और ऋजु है कि मृत्युदंड को निष्पादित किए जाने के लिए अनुज्ञा दी जाए।'

न्यायाधीशों के विचार में किसी ऐसे राज्य को, जो मृत्युदंड बनाए रखने की इच्छा रखता है, यह सुनिश्चित करने का उत्तरदायित्व अवश्य स्वीकार करना चाहिए कि फांसी, अपील और क्षमा के विचारण के लिए युक्तियुक्त समय की अनुज्ञा देते हुए, यथासाध्यशीघ्र दंड के पश्चात् होनी चाहिए। यह मानव दशा का भाग है कि कोई सिद्धदोष व्यक्ति अपील प्रक्रिया के उपयोग के माध्यम से अपना जीवन बचाने के लिए प्रत्येक अवसर लेगा। यदि अपील प्रक्रिया कैदी को अपीली सुनवाइयां वर्षों तक लंबा करने में समर्थ बनाती हैं तो त्रुटि उस अपील प्रणाली की होगी जो ऐसे विलंब की अनुज्ञा देती है और न कि कैदी की, जो इसका लाभ उठाता है। अपीली प्रक्रियाएं, जिनमे वर्षों निकल जाते है, मृत्युदंड से संगत नहीं है। मृत्यु पंक्ति आभास हमारे न्याय शास्त्र के भागरूप में स्थापित नहीं होना चाहिए। (जोर दिया गया)

6.7.14 उच्चतम न्यायालय द्वारा वाथीस्वरन में स्थापित दो वर्ष का मानक न तो दया याचिकाओं के विचारण में कार्यपालिका के विलंब और न्यायिक विलंबों के बीच विभाजन के प्रति संवेदनग्राही था और न उस विलंब के प्रति, जो कैदी के मुकदमेबाजी संबंधी प्रयासों के कारण कारित होती है। उच्चतम न्यायालय ने वाथीस्वरन में, जैसा कि अब प्रिवी काउंसेल ने प्राट में किया है, मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषी पर ऐसे विलंब के, जिससे बचा जा सकता है, परिणामों और प्रभाव पर सिद्धांतपूर्ण स्थिति बनायी। तथापि, वाथीस्वरन वाला विनिश्चय, जिसने प्राट में प्रिवी काउंसेल के विनिश्चय के लिए सकारात्मक पूर्व निर्णय के रूप में कार्य किया था, आज उलट दिया गया है। त्रिवेनीबेन में आकार दिए गए रूप में विधि लंबित अपीलों को मृत्यु पंक्ति आभास के अनुसार अनुयोज्य विलंब के रूप में नहीं मानती है।

ख. विलंबित निष्पादन किसी दंड संबंधी प्रयोजन की पूर्ति नहीं करता है और इसीलिए अत्यधिक है

6.7.15 उच्चतम न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया है कि मृत्युदंड का विलंबित निष्पादन, उस समय जब न्यायालय ने सिद्धदोषी पर उसकी पुष्टि की थी, मूल रूप से आशा किए गए दांडिक प्रयोजनों में से किसी की पूर्ति नहीं करता है। विलंबित मृत्युदंड उस सीमा तक केवल मस्तिष्क रहित और मध्यकाल की प्रतिशोधात्मक क्वालिटी के, जो दंड के वर्तमान सभ्यता संबंधी संननियमों का उल्लंघन करती है, दर्शित करता है उच्चतम न्यायालय ने जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य[763] में संयुक्त राज्य के संविधान के 8वें संशोधन में क्रूर और असामान्य दंड के विरुद्ध यह नियम बनाने के लिए निषेधाज्ञा का आह्वान किया कि विलंबित फांसियां मृत्युदंड के प्रतिशोधात्मक और भयपरतिकारी दोनों तर्कों की पूर्ति करने में असफल रहती हैं। न्यायालय ने कहा :

> 43.....दंडशास्त्री और चिकित्सा विशेषज्ञ सहमत थे कि मृत्यु का निर्णय निष्पादित करने की प्रक्रिया बहुधा मानव भावना के लिए इतनी अपमानजनक और क्रूर होती है, कि जिससे मनोवैज्ञानिक यंत्रणा मिलती है। काल्मन वर्सस बाल्कोम [68 एल ईडी 2 डी 334 :451 यू एस 949 (1981)] यूएस पृष्ठ 952 पर न्यायालय ने संप्रेक्षण किया कि 'अनिश्चितता की उस अवधि के दौरान कारागार के भयपरतिकारी मूल्य की तुलना स्वयं अंतिम कदम के परिणाम के साथ की जा सकती है' और जब मृत्युदंड 'इन प्रयोजनों को आगे बढ़ाने के लिए वास्वतिक रूप से नहीं रह जाता है, तो उसका अधिरोपण किसी विचारणीय सामाजिक या लोक प्रयोजनों के लिए केवल हाशिए में लिखे योगदान के साथ बिना किसी प्रयोजन के और अनावश्यक रूप से जीवन को समाप्त करना होगा। राज्य के लिए ऐसे उपेक्षणीय लाभ के साथ दंड स्पष्ट रूप से अत्यधिक और क्रूर तथा असामान्य दंड होगा, जो 8 वें संशोधन का अतिक्रामक होगा' तथापि न्यायालयों ने एक सुभिन्नता की है जिसके द्वारा अपराधी स्वयं न्यायिक प्रक्रिया के दुरुपयोग द्वारा विलंब के लिए उत्तरदायी रहा है। किन्तु विधिक और संविधान संबंधी उपचारों को करने में अपराधी द्वारा लिए गए समय को उसके विरुद्ध उससे नहीं लिया जा सकता।
>
> 44. इस पर बार-बार जोर दिया गया है कि मृत्युदंड के नीचे रेखांकित दो सिद्धांत हैं :
>
> (1) वह प्रतिशोधात्मक होना चाहिए और
>
> (2) उसे भयपरतिकारक के रूप में कार्य करना चाहिए।
>
> और चूंकि विलंब का पूर्वोक्त दोनों कारकों को मिटा डालने का प्रभाव होता है, अत: अधिक विलंब के पश्चात् किसी कैदी को फांसी देने का कोई औचित्य नहीं हो सकता। कुछ अत्यधिक सुसंगत संप्रेक्षण ऊपर काल्मन वर्सस बाल्कोम [68 एल ईडी 2 डी 334 :451 यू एस 949 (1981)] यूएस पृष्ठ 952 से उद्धत किए गए हैं।
>
> 45. संयुक्त राज्य के संविधान के 8वें संशोधन की पृष्ठभूमि में, जो उपबंध करता है कि :
>
> > 'अत्यधिक जमानत अपेक्षित नहीं होनी चाहिए, न अत्यधिक जुर्माना अधिरोपित किया जाना चाहिए, न क्रूर और असामान्य दंड दिया जाना चाहिए'
>
> मामले की जांच करते समय यह देखा गया है कि यद्यपि मृत्युदंड अनुज्ञेय था किन्तु उसका प्रभाव विलंब की दशा में खो गया था। [ग्रेग वर्सस जार्जिया 49 एल ईडी 2डी 859 : 428 यूएस 153 (1976)][764]

ii. निरोध की अवैध एकांत दशाएं

6.7.16 उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन ('बत्रा')[765] में 1978 में एकांत परिरोध की पद्धति को विधि बाह्य कर दिया। एकांत परिरोध को उच्चतम न्यायालय ने अन्य कैदियों से पृथक् किसी एकल सेल में किसी अपराधी के परिरोध के रूप

---

[763] (2009) 9 एससीसी 495।

[764] जगदीश बनाम मध्य प्रदेश राज्य, (2009) 9 एससीसी 495, पैरा 43-45 पर।

में परिभाषित किया।[766] उच्चतम न्यायालय ने सुनील बत्रा में यह संप्रेक्षण किया कि एकांत परिरोध, विशेष न्यायिक आदेश के अभाव में, केवल तब अधिरोपित किया जा सकता है जब कोई कैदी मृत्यु के निष्पादनीय दंड के अधीन हो, अर्थात् उसकी दया याचिका राष्ट्रपति द्वारा नामंजूर कर दी गई हो और उसके पश्चात् भी गंभीर निर्बंधनों और उपांतरणों के अधीन न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया :

> 118. यह अनुसरण करता है कि किसी राज्य के राज्यपाल या भारत के राष्ट्रपति के समक्ष दया याचिका के लंबित होने के दौरान मृत्युदंड निष्पादित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार इन दो उच्च अधिकारियों द्वारा क्षमा प्रस्ताव के नामंजूर किए जाने तक यह पहले से कहना संभव नहीं है कि वहां कोई स्वयं निष्पादनीय मृत्युदंड है। अत: कोई कैदी स्वयं कार्य करने वाले मृत्युदंड का विषय विधिक रूप से केवल तभी होता है जब कैदी का क्षमा आवेदन नामंजूर हो जाता है। नि:संदेह उसके पश्चात् कारागार अधिनियम की धारा 30(2) आकर्षित होती है। दया के लिए एक दूसरा या कोई तीसरा, चौथा या और आगे आवेदन उसे उस प्रवर्ग से तब तक बाहर नहीं ले जाता है जब तक सक्षम प्राधिकारी द्वारा मृत्युदंड के निष्पादन को रोकने वाला कोई विनिर्दिष्ट आदेश न हो।[767]

6.7.17 जबकि एकांत परिरोध की अवैधता को उच्चतम न्यायालय द्वारा एक विनिश्चय से अधिक में बहुत स्पष्ट किया गया है। वह पद्धति मृत्यु पंक्ति में कैदियों के लिए विशेष रूप से अभी तक व्याप्त है। शत्रुध्न चौहान में, सुनील बत्रा के विनिश्चय पर भरोसा करते हुए उच्चतम न्यायालय ने मृत्यु पंक्ति वाले कैदियों के लिए एकांत परिरोध के व्यापक प्रयोग की विद्यमानता के बारे में शोक व्यक्त किया है और कारगार प्राधिकारियों से सुनील बत्रा विनिश्चय को उसके वास्तविक अभिप्राय के अनुसार कार्यान्वित करने का आग्रह किया है। उच्चतम न्यायालय ने कहा :

> 91. त्रिवेनीबेन [त्रिवेनीबेन बनाम गुजरात राज्य, (1989) 1 एसीसीसी 678 : 1989 एससीसी (दांडिक) 246] में इस न्यायालय ने यह कहा कि किसी कैदी को एकांत परिरोध में रखना सुनील बत्रा (सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एसीसीसी 494 : 1979 एससीसी (दांडिक)155] में विनिर्णय के विरुद्ध है और यह 'अतिरिक्त और पृथक्' दंड, जो विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं किया गया है, देने के बराबर होगा। यह पूर्ण रूप से दुर्भाग्यपूर्ण है कि न्यायिक पक्ष से चिर स्थायी आख्यापनों के बावजूद, इन उपबंधों का वास्तविक कार्यान्वयन वास्तविकता से दूर है। हम इस अवसर का उपयोग जेल प्राधिकारियों से यह आग्रह करने के लिए करते हैं कि वे सुनील बत्रा (सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन (1978) 4 एसीसीसी 494 : 1979 एससीसी (दांडिक)155] में अधिमत के वास्तविक आशय को समाविष्ट और कार्यान्वित करे।[768] (जोर दिया गया)

6.7.18 उच्चतम न्यायालय ने अजय कुमार पाल बनाम भारत संघ[769] में यह देखा कि सिद्धदोषी को एकांत परिरोध में, जब वह मृत्यु पंक्ति में था, रखा गया था, न्यायालय ने कार्यपालिका प्राधिकारियों द्वारा दया याचिका के निपटारे में विलंब और एकांत परिरोध के अधिरोपण के कारण, मृत्युदंड को आजीवन कारावास में लघुकृत कर दिया।

6.7.19 इसी प्रकार एकांत परिरोध पर पीपुल्स यूनियन आफ डेमोक्रेटिक राइट्स बनाम भारत संघ और अन्य[770] के मामले में सुसंगत अकस्मात आ पड़ने वाली परिस्थिति के रूप में विचार किया गया था।

ज. निष्कर्ष

---

[765] (1978) 4 एससीसी 494।

[766] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, (1978) 4 एससीसी 494, पैरा 91-92 पर।

[767] सुनील बत्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, (1978) 4 एससीसी 494, पैरा 118 पर।

[768] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 91 पर।

[769] (2014) 13 स्केल 762।

[770] 2015 (2) एडीजे 398।

6.8.1 कार्यपालिका की दया संबंधी शक्तियां मनमाने और गलत मृत्युदंडों की त्रुटियों को ठीक करती हैं और न्याय की हत्या के विरुद्ध अतिरिक्त प्राचीर का उपबंध करती हैं। अत: दया के लिए अयोग्य पाए गए मामले मृत्युदंड के पात्र होते हैं। इसलिए दया संबंधी शक्तियां इस प्रकार मृत्युदंड के लिए रक्षोपाय और आवश्यक पूर्व शर्त हैं।

6.8.2 जब रिट न्यायालय न्यायिक पुनर्विलोकन शक्तियों के अनुसरण में, तुलनात्मक नियमित आधार पर, कार्यपालिका के दया याचिकाओं के नामंजूर करने के विनिश्चयों को प्रक्रिया संबंधी अतिक्रमणों, मनमानेपन और मस्तिष्क का उपयोग न करने के कारण दूषित पाते हैं, तो दया संबंधी शक्तियों के रक्षोपाय बहुत अच्छी तरह कार्य करते प्रतीत नहीं होते हैं।

6.8.3 यह देखना भी पीड़ादायक है कि मृत्यु पंक्ति वाले कैदियों को कारागार की अत्याचारपूर्ण दशाओं और विचारण, अपील तथा तत्पश्चात् कार्यपालिका की क्षमा में होने वाले लंबे विलंबों से उत्पन्न होने वाली अतिदुखदायी और शारीरिक पीड़ाओं की असाधारण मिली-जुली परिस्थितियों में रहना होता है । कार्यपालिका प्राधिकारियों द्वारा दांडिक उल्लंघनों के कारण लघुकरण प्राप्त करने के लिए न्यायिक पुनर्विलोकन उपचारों का आह्वान करने हेतु मृत्यु पंक्ति वाले कैदियों द्वारा किए गए बार-बार प्रयासों के बावजूद एकांत परिरोध की पद्धति और लंबे विलंब बिना रुके हुए बने रहने वाले प्रतीत होते हैं। आयोग का यह विचार है कि मृत्यु पंक्ति आभास भारत में मृत्युदंड साधित्र का दुर्भाग्यपूर्ण और सुभिन्न लक्षण बन गया है।

6.8.4 आगे मृत्युदंड वाले कैदियों पर अतिरिक्त असमर्थित और न्यायिक रूप से मंजूरी न प्राप्त पीड़ाओं का दिया जाना अपमानजनक और अत्यधिक दंड के विरुद्ध अनुच्छेद 21 की रोध को भंग करता है । इस पीड़ा की चिरकालीन प्रकृति के कारण, जैसे ही कोई न्यायालय किसी कैदी को मृत्युदंड देता है, प्रतिक्रिया का सिलसिला शुरु हो जाता है और इसलिए उसका विस्तार ऐसे कैदियों की, जो उच्चतम न्यायालय में और दया याचिका वाली स्थिति में विफल हो जाने के पश्चात् फांसी के समीप आ जाते हैं, सीमित संख्या से परे हो जाता है।

6.8.5 मृत्युदंड उद्योग, जैसा वह भारत में कार्य करता है, अन्यथा विधि बाह्य दंड संबंधी पद्धतियों से, जो ऐसा दर्द, पीड़ा और यंत्रणा, जो कि बहुधा अनुच्छेद 21 द्वारा अनुज्ञात अधिकतम पीड़ा से परे है, देता है। कैदियों पर अधिरोपित इस जटिल आभास के कमजोर बना देने वाले प्रभाव ऐसे होते हैं जिन्हें केवल जीवित मृत्यु कहा जा सकता है।

6.8.6 जब कि किसी विशिष्ट मामले में मृत्यु पंक्ति आभास से संबंधित अवैधताओं को मृत्युदंड लघुकृत करने वाले रिट न्यायालयों द्वारा संबोधित किया जा सकता है, किन्तु वह अवैध पीड़ा, जिसे सिद्धदोषी मृत्यु पंक्ति में विद्यमान होते हुए सहते हैं, देश में दांडिक न्याय के प्रशासन पर एक लंबी छाया डालती है।

अध्याय 7

निष्कर्ष और सिफारिशें

क. निष्कर्ष

7.1. 1 मृत्युदंड आजीवन कारावास से अधिक भयपरतिकारिता के दंड शास्त्र संबंधी उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता है। आगे भारतीय विधि के अधीन आजीवन कारवास से संपूर्ण जीवन के लिए कारावास अभिप्रेत है, जो ऐसी न्यायपूर्ण छूटों के अधीन रहते हुए होता है जिन्हें बहुत से राज्यों में गंभीर अपराधों के मामलों में बहुत वर्षों के कारावास के पश्चात्, जो 30-60 वर्षों के विस्तार में होता है, दिया जाता है।[771]

7.1.2 प्रतिशोध की दंड में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तथापि उसे प्रतिहिंसा तक नीचे नहीं लाया जा सकता है।'एक आंख के लिए एक आंख, दांत के लिए दांत' की धारणा का हमारे संवैधानिक रूप से मध्यस्थता की गई आपराधिक न्याय प्रणाली में कोई स्थान नहीं है। मृत्युदंड संवैधानिक रूप से विधिमान्य दंड शास्त्र संबंधी उद्देश्यों की पूर्ति करने में असफल होता है।

7.1.3 पीड़ितों के लिए न्याय में अंतिम अध्युपाय के रूप में मृत्युदंड के ऊपर ध्यान केंद्रित करने से न्याय के पुन:स्थापन और पुनर्वास करने संबंधी पहलू दृष्टि से ओझल हो जाते हैं। मृत्युदंड पर भरोसे से बीमार आपराधिक न्याय प्रणाली की अन्य समस्याओं जैसे घटिया अन्वेषण, अपराध निवारण और अपराध के पीड़ितों के अधिकार, से ध्यान हट जाता है। यह अनिवार्य है कि राज्य अपराध के पीड़ितों का पुनर्वास करने के लिए प्रभावी पीड़ित प्रतिकर स्कीमें स्थापित करे। इसी समय यह भी आवश्यक है कि न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधीन यथोचित मामलों में पीड़ितों को समुचित प्रतिकर देने के लिए उनको दी गई शक्ति का प्रयोग करे। पीड़ितों और साक्षियों की आवाजें बहुधा शक्तिशाली अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा दी गई धमकियों और नियोजित की गई अन्य उत्पीड़क तकनीकों द्वारा शांत कर दी जाती हैं। अत: यह आवश्यक है कि साक्षी संरक्षण स्कीम को स्थापित किया जाए। अधिक अच्छे और अधिक प्रभावी अन्वेषण और अभियोजन के लिए पुलिस सुधारों की आवश्यकता सार्वभौमिक रूप से कुछ समय से अनुभव की गई है और उसके बारे में पूर्विकता के आधार पर उपाय किए जाने की आवश्यकता है।

7.1.4 पिछले दशक में उच्चतम न्यायालय ने अनगिनत अवसरों पर मृत्युदंड संबंधी मामलों में मनमाने रूप से दंड देने के बारे में चिंता प्रकट की है। न्यायालय ने यह देखा है कि ऐसे मामलों को, जहां मृत्युदंड अधिरोपित किया गया है , उन मामलों से, जहां आजीवन कारावास के विकल्प को लागू किया गया है, भिन्न करना कठित है। न्यायालय के अपने शब्दों में 'बचन सिंह के अत्यधिक असमान रूप से लागू किए जाने ने मृत्युदंड देने संबंधी विधि में अनिश्चितता की स्थिति को उत्पन्न किया है, जो स्पष्ट रूप से संवैधानिक सम्यक् प्रक्रिया और समानता के सिद्धांत के विरुद्ध है'। न्यायालय ने बचन सिंह के मार्गदर्शक सिद्धांतों के उल्लंघन में मृत्युदंड के गलती से अधिरोपण को भी अभिस्वीकार किया है। अत: मृत्युदंड का संवैधानिक विनियमन, जिसका बचन सिंह में प्रयास किया गया था, मृत्युदंड का 'मनमाने रूप से और सनकीपन से अधिरोपित किए जाने का' का निवारण करने में असफल रहा है।

7.1.5 मृत्युदंड से ऐसे मनमानेपन को हटाने के लिए कोई सिद्धांतपूर्ण पद्धति नहीं है। अपराधों का कठोर, मानकीकरण या प्रवर्गीकरण, जो मामलों के बीच अंतर को ध्यान में नहीं रखता है, मनमाना है और ये भिन्न मामलों के साथ एक ही धरातल पर व्यवहार करता है। कम प्रवर्गीकरण वाला कोई मामला, जैसे बचन सिंह विरचना स्वयं, प्रदर्शनीय रूप में और स्वीकार्य रूप में असफल रहा है।

---

[771] गोपाल विनायक गोडसे बनाम महाराष्ट्र, एआईआर 1961 एससी.600 ; मारु राम बनाम भारत संघ, (1981) 1 एससीसी 107। माफी के नियमों के उदाहरण के लिए, देखिए महाराष्ट्र के 'समयपूर्व निर्मुक्ति के लिए मार्गनिर्देशक तत्व' में प्रवर्ग 6, तारीख 15.3.2010।

7.1.6 अनगिनत समिति की रिपोर्टों ने और उच्चतम न्यायालय के निर्णयों ने यह माना है कि देश में आपराधिक न्याय का प्रशासन गहरे संकट में है। स्रोतों की कमी, अन्वेषण के पुराने तरीके, अधिक काम में लगा हुआ पुलिस बल, अप्रभावी अभियोजन और कम विधिक सहायता कुछ ऐसी समस्याएं हैं जो प्रणाली को घेरे हुए हैं। मृत्युदंड इस संदर्भ के भीतर कार्य करता है और इसलिए उसी संरचनात्मक और व्यवस्था संबंधी बाधाओं से पीड़ित है। इसलिए मृत्युदंड का प्रशासन इस प्रकार भूल करने वाला और दुरुपयोजन के प्रति प्रहार्य है। प्रणाली की उच्श्रृंखलताएं भी ऐसे सामाजिक और आर्थिक रूप से हासिए पर व्यक्तियों के विरुद्ध अननुपातिक रूप से कार्य करती हैं, जिनके पास विरोधी आपराधिक न्याय प्रणाली के भीतर अपने अधिकारों की प्रभावी रूप से वकालत करने के लिए स्रोतों की कमी है।

7.1.7 क्षमा संबंधी शक्तियां सामान्यता किसी अपराधी की न्यायिक दोषसिद्धि और उसे दंड दिए जाने के पश्चात् भूमिका निभाती हैं। इन क्षमा संबंधी शक्तियों के प्रयोग में राष्ट्रपति और राज्यपाल मामले के अभिलेख की संवीक्षा करने और दोषिता या दंड के बिंदु पर न्यायिक अधिमत से भिन्न राय रखने के लिए सशक्त है। उस समय भी जब वे इस प्रकार भिन्न राय नहीं रखते हैं, वे उन कारकों को ध्यान में रखते हुए, जो न्यायिक दृष्टि से बाहर और परे हैं, मामले में कठिनाई ठीक करने, गलती सुधारने और पूर्ण न्याय करने के लिए अपनी क्षमा संबंधी शक्तियों का प्रयोग करने के लिए सशक्त हैं।[772] क्षमा संबंधी शक्तियां जबकि बहुत से विचारणों और अपरिवर्तनशील अवसरों के लिए प्रयोक्तव्य होते हुए , न्यायिक गलती या न्याय की हत्या की संभावना के विरुद्ध अंतिम रक्षोपाय के रूप में भी कृत्य करती हैं। यह इस शक्ति का उपभोग करने वाले पर भारी उत्तरदायित्व डालती हैं और मस्तिष्क के पूर्ण उपयोजन, न्यायिक अभिलेखों की संवीक्षा और क्षमा संबंधी याचिका का न्यायनिर्णयन करने में विस्तृत प्रकार की जांच, विशेष रूप से न्यायिक रूप से पुष्टि किए गए मृत्युदंडादेश के अधीन कैदी से, जो फांसी दिए जाने के किनारे पर है, करने को आवश्यक बनाती है। आगे उच्चतम न्यायालय ने शत्रुध्न चौहान[773] में ऐसे विभिन्न सुसंगत विचारणों को अभिलिखित किया है, जिनको दया याचिकाओं का विनिश्चय करने में गृह मंत्रालय द्वारा ध्यान में रखा जाता है ।

7.1.8 अनुच्छेद 72 और अनुच्छेद 161 के अधीन दया संबंधी शक्तियों का प्रयोग मृत्युदंड के अधिरोपण में न्याय की हत्या के विरुद्ध अंतिम रक्षोपाय के रूप में कार्य करने में असफल हुआ है। उच्चतम न्यायालय ने बार-बार इस बारे में अंतरालों और अवैधताओं की तरफ इंगित किया है कि कैसे कार्यपालिका ने अपनी दया संबंधी शक्तियों का निर्वहन किया है। जब दया संबंधी शक्तियों के प्रयोग कभी – कभी घोर प्रक्रिया संबंधी अतिक्रमणों और मस्तिष्क का प्रयोग न किए जाने के कारण दूषित हो जाता है तब मृत्युदंड अरक्षणीय हो जाता है।

7.1.9 विधि में रक्षोपाय इस अप्रतिसंहरणीय दंड के प्रशासन के लिए संवैधानिक रूप से सुरक्षित वातावरण को देने में असफल हुए हैं। मृत्युदंड के निष्पादन को संवैधानिक रूप से नियमित करने के न्यायालयों के प्रयास हमेशा लाभप्रद नहीं रहे हैं।

7.1.10 मृत्यु पंक्ति वाले कैदी विचारणों, अपीलों और तत्पश्चात् कार्यपालिका की क्षमा में होने वाले विलंबों का बराबर सामना कर रहे हैं। इस समय के दौरान, मृत्यु पंक्ति वाला कैदी घोर व्यथा, चिंता, सननिकट फिर भी अनिश्चित फांसी से उत्पन्न होने वाले कमजोर कर देने वाले डर से पीड़ित रहता है। उच्चतम न्यायालय ने अभिस्वीकार किया है कि ऐसी अद्वितीय परिस्थितियों का समामेलन मृत्यु पंक्ति वाले सिद्धदोषियों के लिए यातना झेलने वाली शारीरिक और मनोवैज्ञानिक दशाएं उत्पन्न करता है।[774] आगे मृत्यु पंक्ति आभास दोषसिद्धि पर अधिरोपित कारावास की दशाओं, जिनके अंतर्गत एकांत परिरोध भी है और विद्यमान कठोर कारागार की दशाओं के अपमानजनक और अत्याचारपूर्ण प्रभावों से बहुगुणित हो जाता है। मृत्यु पंक्ति आभास भारत में मृत्युदंड साधित्र का एक दुर्भाग्यपूर्ण और

---

[772] केहर सिंह बनाम भारत संघ, (1989) 1 एससीसी 204, पैरा 7, 10 और 16 पर।

[773] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 55-56 पर।

[774] शत्रुध्न चौहान बनाम भारत संघ, (2014) 3 एससीसी 1, पैरा 61 पर।

विशिष्ट लक्षण है। आगे मृत्युदंड के कैदियों को अतिरिक्त, अवांछित और न्यायिक रूप से मंजूर न की गई पीड़ाओं को पहुंचाना अपमानकारी और अत्यधिक दंड के विरुद्ध अनुच्छेद 21 की रोध का अतिक्रमण करता है।

7.1.11 मृत्युदंड को बनाए रखने में और इसे व्यवहार में लाने में भारत छोटे और हमेशा प्रतिष्ठा कम होने वाले राष्ट्रों के समूह का भाग है। 140 देश अब विधि में या व्यवहार में मृत्युदंड समाप्त करने वाले बन गए हैं। वे प्रदर्शित करते हैं कि मानव गरिमा और शिष्टता के विकासशील मानक मृत्युदंड का समर्थन नहीं करते हैं। सफलतापूर्वक और लगातार मृत्युदंड का समाप्त किया जाना भी इस बात की पुष्टि करता है कि मृत्युदंड को बनाए रखना राज्य प्रतिरोध, आतंक या हिंसात्मक अपराध का प्रभावी रूप से उत्तर देने के लिए आवश्यक नहीं है ।

ख. सिफारिश

7.2.1 आयोग सिफारिश करता है कि ऊपर पैरा 7.1.3 में सुझाव दिए गए उपाय, जिनके अंतर्गत पुलिस सुधारों, साक्षी संरक्षण स्कीम और पीड़ित प्रतिकर स्कीम के लिए उपबंध हैं, यथाशीघ्र सरकार द्वारा किए जाने चाहिए।

7.2.2 हमारे अपने न्यायशास्त्र का आगे बढ़ना- 1955 में मृत्यु की बजाय आजीवन कारावास अधिरोपित करने के लिए विशेष कारण देने की अपेक्षा हटाना; 1973 में मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए विशेष कारणों की अपेक्षा करना ; 1980 तक, जब मृत्युदंड को उच्चतम न्यायालय द्वारा 'विरले मामलों में से विरलतम' तक निर्बंधित किया गया था – उस दिशा को दर्शित करता है, जिसमें हमें आगे जाना है। जीवन के अधिकार की विस्तार की गई और गहरी अंतर्वस्तुओं द्वारा अवगत अनुभव से और राज्य तथा व्यक्तिके बीच पारस्परिक क्रियाओं में सुदृढ़ की गई सम्यक् प्रक्रिया अपेक्षाओं, विद्यमान संवैधानिक नैतिकता और मानव गरिमा के मानकों द्वारा प्राप्त जानकारी के संदर्भ में आयोग अनुभव करता है कि भारत के लिए मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में आगे बढ़ने का समय आ गया है।

7.2.3 यद्यपि, आतंकवाद को अन्य अपराधों से भिन्न रूप में मानने के लिए कोई विधिमान्य दंड संबंधी न्यायोचित्य नहीं हैं, तथापि इस बारे में बहुधा चिंता उठाई गई है कि आतंकवाद से संबंधित अपराधों और युद्ध करने के लिए मृत्युदंड को समाप्त करने से राष्ट्रीय सुरक्षा पर प्रभाव पड़ेगा। तथापि विधि बनाने वालों द्वारा उठाई गई चिंताओं को देखते हुए आयोग आतंकवाद संबंधी अपराधों से भिन्न सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त करने की दिशा में पहला कदम उठाने के लिए और प्रतीक्षा करने का कोई कारण नहीं देखता है।

7.2.4 यह आयोग तदनुसार सिफारिश करता है कि मृत्युदंड आतंकवाद संबंधी अपराधों और युद्ध करने के लिए अपराध से भिन्न सभी अपराधों के लिए समाप्त कर दिया जाए।

7.2.5 यह आयोग विश्वास करता है कि यह रिपोर्ट सभी अपराधों के लिए मृत्युदंड समाप्त किए जाने पर अधिक तार्किक सिद्धांतपूर्ण और जागरूक विचार-विमर्श के लिए योगदान देगी।

7.2.6 आगे यह आयोग शुद्ध हृदय से आशा करता है कि मृत्युदंड को पूर्णरूप से समाप्त करने की दिशा में गति तीव्र और अपरिवर्तनीय होगी।

[न्यायमूर्ति ए. पी. शहा]
अध्यक्ष

[न्यायमूर्ति एस. एन. कपूर]	**[प्रो0 (डा0) मूल चन्द शर्मा]**	**[न्यायमूर्ति ऊषा मेहरा]**
सदस्य	**सदस्य**	**सदस्य**

[पी.के.मल्होत्रा]
पदेन सदस्य

[डा0 संजय सिंह]
पदेन सदस्य

[डा0 जी. नारायण राजू]
सदस्य –सचिव

[आर. वेंकटरमानी]
सदस्य (अंशकालिक)

[प्रो0 (डा0) गुरजीत सिंह]
सदस्य (अंशकालिक)

[डा0 बी.एन. मणि]
सदस्य (अंशकालिक)

उपाबंध I

भाग लेने वालों की सूची

I. भारत का विधि आयोग

1. न्यायमूर्ति ए पी शहा
   अध्यक्ष

2. न्यायमूर्ति एस एन कपूर
   सदस्य

3. न्यायमूर्ति ऊषा मेहरा
   सदस्य

4. प्रो0 (डा0) मूल चन्द शर्मा
   सदस्य

5. डा0 जी नारायण राजू
   सदस्य - सचिव

6. पी.के. मल्होत्रा
   विधि सचिव (पदेन सदस्य)

7. प्रो (डा0) योगेश त्यागी
   सदस्य (अंशकालिक)

8. आर वेंकटरमानी
   सदस्य (अंशकालिक)

9. डा0 (श्रीमती) पवन शर्मा
संयुक्त सचिव और विधि अधिकारी

10. ए.के. उपाध्याय,
अपर विधि अधिकारी

11. डा0 वी.के. सिंह
उप विधि अधिकारी

II. मुख्य अतिथि

1. गोपाल कृष्ण गांधी
भूतपूर्व राज्यपाल, पश्चिम बंगाल

III. अन्य वक्ता

1. न्यायमूर्ति प्रभा श्रीदेवन, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, मद्रास उच्च न्यायालय
2. न्यायमूर्ति हसबेट सुरेश, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, मुम्बई उच्च न्यायालय
3. मनीष तिवारी, भूतपूर्व सूचना और प्रसारण मंत्री
4. न्यायमूर्ति बिलाल नजकी, अध्यक्ष, बी.एच.आर.सी.
5. युग चौधरी, अधिवक्ता, मुम्बई
6. आशीश खेतान, प्रवक्ता, एएपी
7. प्रो0 डा0 सी राजकुमार, उप कुलपति, ओ.पी. जिन्दल ग्लोबल युनिवर्सिटी, सोनीपत, हरियाणा
8. प्रो0 रणबीर सिंह, उप कुलपति, रा.वि.वि., दिल्ली
9. जूलियो रिबेरियो, सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी
10. मजीद मेमन, संसद् सदस्य और वरिष्ठ अधिवक्ता
11. बृंदा कारत, महासचिव, सीपीआई(एम)
12. शंकर सेन, भूतपूर्व महानिदेशक, दिल्ली पुलिस/राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
13. न्यायमूर्ति के. चंद्रू, भूतपूर्व न्यायाधीश, मद्रास उच्च न्यायालय
14. प्रो0 एन आर माधव मेनन, भूतपूर्व उप कुलपति, नेशनल जूरिडिकल स्कूल, कोलकाता
15. न्यायमूर्ति राजिन्दर सच्छर, भूतपूर्व न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
16. शशि थरूर, भूतपूर्व केंद्रीय मंत्री
17. कानिमोझी, संसद् सदस्य, डीएमके

18. प्रो0 रोजर हुड, सेंटर आफ क्रिमिनोलोजी, यूनिवर्सिटी आफ आक्सफोर्ड
19. दुष्यंत दवे, वरिष्ठ अधिवक्ता
20. टीआर अंध्यारुजिना, वरिष्ठ अधिवक्ता
21. प्रो0 मोहन गोपाल, अध्यक्ष राष्ट्रीय न्यायालय प्रबंध प्रणाली, उच्चतम न्यायालय
22. आनन्द ग्रोवर, वरिष्ठ अधिवक्ता
23. वजाहत हबीबुल्ला, भूतपूर्व, मुख्य सूचना आयुक्त, भारत सरकार
24. डी आर कार्तिकेयन, भूतपूर्व महानिदेशक, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग
25. वरुण गांधी, संसद् सदस्य लोक सभा
26. संजय हेगडे, अधिवक्ता
27. चमन लाल, सेवानिवृत्त वरिष्ठ पुलिस अधिकारी

IV. अन्य आमंत्रिती/भाग लेने वाले

1. कुसुमजीत सिंधू, सचिव, न्याय विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार
2. नवाज कोतवाल, परामर्शी, न्याय विभाग
3. जी.एस. बाजपेई, रजिस्ट्रार, रा.वि.वि., दिल्ली
4. कोलिन गोनसाल्वेस, एचआरएलएन
5. नित्या रामकृष्णन, वरिष्ठ अधिवक्ता
6. जवाहर राजा, अधिवक्ता
7. रानी शंकरदास, पीआरएजेए
8. अमन लेखी, वरिष्ठ अधिवक्ता
9. डा0 वाईएसआर मूर्ति, अध्यक्ष, ओ.पी.जिन्दल गोपाल विश्वविद्यालय, हरियाणा
10. न्यायमूर्ति एस.बी. सिंहा, सेवानिवृत्त न्यायाधीश, दिल्ली उच्च न्यायालय
11. डी नागासेला, पीयूसीएल
12. वृंदा ग्रोवर, वरिष्ठ अधिवक्ता
13. संहिता अंबष्ट, अधिवक्ता
14. अरघ्या सेनगुप्ता, विधि सेंटर आफ लीगल पालिसी, नई दिल्ली
15. पीएम नायर, सेवानिवृत्त पुलिस अधिकारी
16. मीरन सी बोरवंकर, अपर महानिदेशक, महाराष्ट्र (कारागार)

17. त्रिदीप पायस, अधिवक्ता

18. शालिनी गेरा, जग लग

19. रवि नायर, एसएएचआरडीसी

20. वृंदा भंडारी, अधिवक्ता

21. सुहास चकमा, एसीएचआर

22. ऊषा रामचंद्रन, सामाजिक कार्यकर्ता

23. शारिब अली, दि क्विल फाउंडेशन

24. अनिल गुलाटी, संयुक्त सचिव, न्याय विभाग, विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार

25. निमेश देसाई, निदेशक, इहबास

26. डा0 अनूप सुरेंद्रनाथ, निदेशक, मृत्युदंड परियोजना, रा.वि.वि., दिल्ली

27. वेंकटेश, सीएचआरआई

28. मनोज मिट्ट, वरिष्ठ संवाददाता

29. वी वेंकटेशन, वरिष्ठ संवाददाता

30. प्रवीण स्वामी, वरिष्ठ संवाददाता

31. डा0 अपर्णा चन्द्रा, सहायक प्रोफेसर, रा.वि.वि., दिल्ली

32. डा0 मृणाल सतीश, एसोशिएट प्रोफेसर, रा.वि.वि., दिल्ली

परिशिष्ट क

सेवा में

अध्यक्ष,

भारत का विधि आयोग,

नई दिल्ली

महोदय,

मैं सादर विनम्रतापूर्वक कहती हूं कि मृत्युदंड की समाप्ति के बारे में आपके द्वारा की गई सिफारिशों का मैं समर्थन नहीं करती हूं। अत: मैं मृत्युदंड बनाए रखने के लिए अपने कुछ विचारों को लिख रही हूं ;

1. मृत्युदंड भारतीय दंड संहिता के विभिन्न उपबंधों में उदाहरण के लिए धारा 376ड., 364क, 302 आदि में, अन्य के अतिरिक्त, आया है। ये उपबंध मृत्युदंड या आजीवन कारावास के अधिरोपण के लिए उपबंध करते हैं। क्या जीवन या मृत्यु उचित दंड होगा, यह उस न्यायालय के विवेकाधिकार पर है, जिससे उस मामले के तथ्यों और अपराध की गंभीरता और उसकी उग्रता या बर्बरता का ध्यान रखते हुए बुद्धिमततापूर्वक उसका प्रयोग करने की आशा की जाती है।

2. यह कहना कि मामले का विनिश्चय करते समय और मृत्युदंड अधिरोपित करते समय निर्णय में गलती हुई है या वह विभेदकारी है, वह मेरी समझ में बहुत साधारण कथन है। इसके अतिरिक्त गलती करना मानवीय है। ईश्वर ही केवल पूर्ण न्याय करने वाला है । उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश, मानवीय गलती की परिसीमा के अधीन रहते हुए अपने सर्वोत्तम रूप से कार्य करते हैं। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मृत्युदंड का उपबंध सभी मामलों में, उनकी गंभीरता और जघन्यता का ध्यान रखे बिना, समाप्त किया जाना चाहिए। अन्यथा भी उस समय तक, जब तक मामला उच्चतम न्यायालय पहुंचता है, वह उच्च न्यायालय की संवीक्षा से निकलता है, जो सत्र न्यायालयों द्वारा किए गए निर्देश पर मृत्यु की पुष्टि करता है।

3. फिरौती के लिए, जनता के बीच आतंक फैलाने और अपने सहयुक्तों तथा काडरों को मुक्त कराने के लिए आतंकवादियों द्वारा व्यपहरण ने गंभीर विमाओं को प्राप्त कर लिया है। फिरौती के लिए व्यपहरण और अपहरण की विभीषिका में वृद्धि हो रही है। अत: अपनी बुद्धि के अनुसार मृत्युदंड कानूनी पुस्तक में होना ही चाहिए।

4. कहने के लिए कि मानव मस्तिष्कों का, जो ऐसे दंडों का नियंत्रण, प्रबंध और प्रशासन करते हैं, स्वाभाविक झुकाव, जो उन्हें अपरिहार्य रूप से मनमाना बना देता है, सही नहीं है। क्या हम 'कसाब' 'अफजल गुरु' जैसे मामलों को दृष्टि से ओझल कर सकते हैं, वे समाज की सुरक्षा, रक्षा और शांति के लिए खतरा प्रस्तुत करते हैं। बहुत से निर्दोषों का जीवन समाप्त हो जाता है। ऐसे मामलों में 'विरले मामलों में से विरलतम' के सिद्धांत पर दिया गया अत्यधिक दंड मनमाना या विभेदकारी नहीं कहा जा सकता। वास्तव में रिपोर्ट में मृत्युदंड के अधीन व्यक्तियों के मानव अधिकार संबंधी सिद्धांत पर, यद्यपि उसी समय निर्दोष पीड़ितों के मानव अधिकारों को भुलाते हुए, बहुत अधिक जोर दिया गया है।

5. जैसा कि मेरे द्वारा पहले ही इंगित किया गया है, गलती की संभावना मृत्युदंड समाप्त करने के लिए कारण नहीं होनी चाहिए। उच्चतम न्यायालय ने बचन सिंह के मामले में 'विरले मामलों में से विरलतम' के सिद्धांत की व्याख्या की थी, जिस सिद्धांत पे समय के परीक्षण का सामना किया है, यह न तो असफल हुआ है और न डगमगाया है। 'निठारी' को दूसरा कौन सा दंड दिया जा सकता था। ऐसे जघन्य अपराध के मामलों में अत्यधिक अध्युपाय समाज की रक्षा और सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए, उन्हें कठोर दंड देने के लिए अपेक्षित हैं।

6. हाल में उच्चतम न्यायालय ने विक्रम सिंह @विकी और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य के मामले में, जो उसने 25.8.2015 को विनिश्चित किया था, यह कहा कि 'हमारे जैसे संसदीय प्रजातंत्र में विधियां संसद् या राज्य विधान मंडलों द्वारा संविधान के अधीन विनिर्दष्ट उनके अपने-अपने विधायी क्षेत्रों के भीतर अधिनियमित की जाती हैं। इन विधियों से संबंधित उपधारणा यह है कि वह समाज संबंधी मांगों को पूरा करने के लिए और समय की चुनौती को स्वीकार करने के लिए तात्पर्यित हैं, विधान मंडल के लिए यह उपधारणा की जाती है कि वे सर्वोच्च रूप से परम बुद्धिमान और ऐसी आवश्यकताओं तथा चुनौतियों के प्रति जागरूक हैं' । यूएसए के सुप्रीम कोर्ट ने भी विनिश्चयों के संक्षिप्त विवरण पर आधारित रोनल्ड एलन हार्मेलिंन वर्सस मिशिगन 501 यूएस 957 में हाल के मामले में ऐसी स्थिति को, जो आनुपातिकता की सीमाओं की परीक्षा की अपेक्षा करती थी, लागू कुछ सामान्य सिद्धांतों को बनाया। न्यायालय द्वारा प्रख्यापित पूर्व विनिश्चय से निकाला गया पहला सिद्धांत यह था कि अपराधों के लिए विहित दंड विधान मंडल के पास है, कि न न्यायालयों के पास और यह कि न्यायालयों को विधान मंडल की बुद्धिमत्ता को सम्मान देना चाहिए।

7. मनुराम बनाम भारत संघ (1981)1 एससीसी 107 में न्यायालय ने कहा कि 'ऊपर वर्णित परिस्थितियों के विचारण पर निष्कर्ष ऐसा है, जिससे बचा नहीं जा सकता कि संसद् ने धारा 433क को अधिनियमित करके हमारे देश में विद्यमान दशाओं को दृष्टि में रखते हुए तत्समय उसके द्वारा अनुध्यात अपराधों के संबंध में दंड के सुधारात्मक

स्वरूप को नामंजूर कर दिया है। यह सुस्थिर है कि विधान मंडल अपनी जनता की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं को न्यायालयों से बहुत अधिक अच्छे रूप में समझता है। भारत सरकार ने मृत्युदंड पर अधिस्थगन की मांग करने वाले संयुक्त राष्ट्र महासभा के संकल्प के विरुद्ध मतदान किया है। नवम्बर, 2012 में, भारत ने मृत्युदंड पर अपनी स्थिति को, मृत्युदंड का वर्जन करने की मांग करने वाले संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रारूप संकल्प के विरुद्ध मतदान करके, पुन: बनाए रखा। यह हमारे देश में विद्यमान दशाओं के अतिरिक्त अपनी जनता की आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के बारे में विधान मंडल की समझ को दर्शित करता है।

8. मध्य प्रदेश राज्य बनाम बाला उर्फ बुलाराम (2005) 8 एससीसी 1 के मामले में न्यायालय ने कहा 'दंड संहिता द्वारा विहित दंड सामाजिक आवश्यकताओं की विधायी मान्यता, संबंधित अपराध की गंभीरता, समाज पर उसके प्रभाव और किसी विशिष्ट अपराध के लिए उपयुक्त दंड के रूप में विधान मंडल क्या समझता है, उसको प्रतिबिंबित करता है'।

9. विक्रम सिंह (ऊपर) के मामले में अपीलार्थी ने भारतीय दंड संहिता की धारा 364क की विधिमान्यता पर आक्षेप किया था, जब कि न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता की धारा 364क की संवैधानिक विधिमान्तया को बनाए रखते हुए कहा कि धारा 364क कानूनी पुस्तक में प्रारंभ में 1993 में आई थी, केवल इस कारण नहीं की फिरौती के लिए अपहरण और व्यपहरण में वृद्धि हो रही थी और विधि आयोग ने सिफारिश की थी कि उसे दंडनीय बनाए जाने वाला एक पृथक् उपबंध निगमित किया जाए, किन्तु इसलिए भी कि आतंकवादी संगठनों की गतिविधियों का भीषण रूप में विस्तार हो गया था और जो ऐसी फिरौती वाली स्थितियों का निवारण करने के लिए और उनके लिए उत्तरदायी व्यक्तियों को दंड देने के लिए प्रभावी विधिक विरचना की मांग करता था।

10. न्यायालय ने आगे कहा कि 'आंकड़ों में आगे यह देखा गया है कि फिरौती के लिए अपहरण लाभकर हो गया है और वह संपूर्ण देश में समृद्ध उद्योग बन गया है, जिसके बारे में कठोरतम संभव रीति से कार्रवाई की जानी चाहिए और उसके लिए न्यायालयों पर भी दायित्व है। न्यायालयों को उस दिशा में सहायतापूर्ण हाथ बढ़ाना चाहिए'।

11. हमें इस बात को महत्व देना चाहिए कि जब फिरौती के लिए अपहरण और हत्या के अपराध होते हैं तब ऐसे अपराधों के साथ जघन्य अपराध के रूप में व्यवहार किया जाना चाहिए और इनके लिए मृत्युदंड को ध्यान में रखना अननुपातिक नहीं हैं। कैसे 'आतंकवादी को सुधारा जा सकता है, जिसका मुख्य उद्देश्य समाज की शांति को, यदि समाज को उसी रूप में नहीं, नष्ट करना है।

12. उच्चतम न्यायालय ने विक्रम सिंह मामले को यह कहकर समाप्त किया कि 'फिरौती के लिए अपहरण और व्यपहरण, न केवल धनीय लाभ के लिए साधारण अपराधियों द्वारा या आर्थिक लाभ के लिए संगठित क्रियाकलाप के रूप में आतंकवादी संगठनों द्वारा भी दी गई चुनौतियों के क्रमिक विकास ने, भारतीय दंड संहिता की धारा364क के निगमन को और ऐसी कार्यवाहियों में लगने वाले व्यक्तियों के लिए कठोरतम दंड को आवश्यक बनाया है। उस पृष्ठभूमि को देखते हुए, जिसमें विधि अधिनियमित की गई थी और संसद् द्वारा नागरिकों की रक्षा और सुरक्षा, देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए दर्शित चिंता को देखते हुए धारा 364क के विरोध में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए विहित दंड को अपराध की प्रकृति से इतने अधिक अननुपातिक के रूप में काटा-छांटा नहीं जा सकता, जिससे कि उसे असंवैधानिक घोषित किया जाए .....ठीक इसलिए कि मृत्यु का दंड एक संभव दंड है, जिसे समुचित मामलों में दिया जा सकता है, इसे स्वत: अमानवीय या बर्बरतापूर्ण नहीं बनाया जा सकता। साधारण क्रम में और ऐसे मामलों में, जो विरले मामलों में से विरलतम कहलाए जाने के योग्य हैं, मृत्यु केवल वहीं दी जा सकती है जहां अपहरण या व्यपहरण के परिणामस्वरूप अपराध के किए जाने के क्रम में पीड़ित या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। ऐसी वास्तविक स्थितियां, जहां वह कार्य, जिससे अपराधी को आरोपित किया गया है, हमारे संघीय, पंथ निरपेक्ष और

प्रजातांत्रिक विरचना के मर्म को धमकी देने वाला आतंकी कार्य साबित हो जाता है, केवल अन्य संभवतया ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जहां न्यायालय चरम दंड देने पर विचार कर सकते हैं' ।

13. मैंने अपने पूर्ववर्ती टिप्पण में भी यह उल्लेख किया था कि मृत्युदंड की सामान्य समाप्ति या जघन्य अपराधों में मृत्युदंड पर अधिस्थगन, विशेष रूप से हमारे देश में विद्यमान परिस्थितियों को देखते हुए, समुचित अनुक्रम नहीं हैं।

न्यायमूर्ति ऊषा मेहरा

मृत्युदंड पर टिप्पण

प्रारंभ में मैं यह बताना चाहूंगा कि भारत सरकार ने मृत्युदंड पर अधिस्थगन की मांग करने वाले संयुक्त राष्ट्र महासभा के संकल्प के विरुद्ध मतदान किया है। नवम्बर, 2012 में, भारत ने मृत्युदंड पर अपनी स्थिति को, मृत्युदंड का वर्जन करने की मांग करने वाले संयुक्त राष्ट्र महासभा के प्रारूप संकल्प के विरुद्ध मतदान करके, पुन: बनाए रखा।

वास्तव में न्याय की कोई भी प्रणाली ऐसे परिणाम नहीं दे सकती जो सौ प्रतिशत सभी समयों पर निश्चित हों। गलतियां किसी भी ऐसी प्रणाली में की जाएंगी जो सबूत के लिए परिसाक्ष्य पर निर्भर करती है। हमें ऐसी गलतियों को अनावृत्त करने और उनसे बचने के लिए जागरूक रहना चाहिए। हमारे न्याय की प्रणाली सही रूप से मृत्युदंड मामले के लिए ऊंचे मानकों की मांग करती है। मृत्युदंड के मामलों में लागू की गई असाधारण सम्यक् प्रक्रिया से गलती करने का खतरा बहुत कम है। यह दर्शित करने के लिए कोई विश्वसनीय साक्ष्य नहीं है कि निर्दोष व्यक्तियों को फांसी दी गई है।

मृत्युदंड संबंधी एमनेस्टी इंटरनेशनल के आंकड़े यद्यपि उपलब्ध हैं किन्तु कोई शासकीय आंकड़े अभी तक प्रकाशित नहीं किए गए हैं। विचारण न्यायालय द्वारा 1617 कैदियों को दिए गए मृत्युदंड की दोषसिद्धि के विरुद्ध मृत्युदंड की पुष्टि केवल 71 मामलों में की गई थी। 71 मामलों में से भी पिछले 40 वर्षों के दौरान केवल 4 व्यक्तियों को फांसी पर लटकाया गया है। 2 आतंकवादी अर्थात् कसाब और अफजल गुरु थे और दूसरे दो अल्पसंख्यक या दलित वर्ग से संबंधित नहीं हैं। अत: यह कहना सही नहीं होगा कि हमारी प्रणाली ने निर्धनता, अल्पसंख्यकता, जाति या दलित होने के कारण किसी भी रीति से विभेद किया है। याकूब मेनन गरीब व्यक्ति नहीं था और वह सर्वोत्तम विधिक सहायता ले सकता था। वास्तव में मृत्युदंड की सामान्य समाप्ति उन परिस्थितियों के लिए सहायक नहीं होगी, जिसमें भारत है।

स्टीवन ओ. स्टीवार्ड, जेडी, क्लार्क काउंटी के लिए प्रेजेंटिंग अटर्नी ने कहा 'घातक नष्ट पोत रखने के खतरे से अधिक किसी गलती की अपरिहार्यता हो, तो नौका को अवैध बना देना चाहिए'।

मृत्युदंड की समाप्ति से अंतरराष्ट्रीय आतंकवादी संगठनों से मिलने वाले खतरे और आधुनिक राज्य की संप्रभुता और राज्यक्षेत्रीय अखंडता के लिए राजद्रोह आदि जैसे आंतरिक विक्षोभ और भी बढ़ सकते हैं। मृत्युदंड की समाप्ति से देश की सुरक्षा पर प्रभाव पड़ सकता है।

मृत्युदंड की साधारण समाप्ति नहीं होनी चाहिए और इस प्रणाली के उचित रूप से कार्य करने के लिए हमें विधिक सहायता सेवाओं को अभियुक्त को उपलब्ध कराने के लिए सुदृढ़ बनाना चाहिए। मृत्युदंड ऋजु और उचित विचारण के पश्चात् विरले मामलों में से विरलतम में ही दिया जाता है, अत: इसे केवल योग्य मामलों में ही दिया जाना चाहिए।

परिशिष्ट ख

डा0 संजय सिंह
सचिव

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
विधि और न्याय मंत्रालय
विधायी विभाग

तारीख 28 अगस्त, 2015

माननीय अध्यक्ष महोदय,

कृपया मृत्युदंड से संबंधित प्रारूप रिपोर्ट देखें, उस पर और विचार-विमर्श किए जाने की आवश्यकता है। इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि मृत्युदंड अविस्मरणीय समय से दंड का एक तरीका रहा है और इसके पक्ष में तथा इसके विरुद्ध तर्कों में, इन वर्षों में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सभ्यता की प्रगति के साथ मृत्युदंड के तरीकों में मानवीय आधारों पर महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे गए हैं।

2. भारत में इस विवाद्यक पर बहुत अधिक विचार-विमर्श किया गया है कि क्या मृत्युदंड को बनाए रखा जाए या समाप्त किया जाए। हमारे देश में भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) में ऐसे बहुत से उपबंध हैं जहां मृत्युदंड का दंड विद्यमान है, अर्थात् धारा 121 (भारत सरकार के विरुद्ध युद्ध करना आदि), धारा 132 (सशस्त्र बल के किसी सदस्य द्वारा विद्रोह का उपशमन), धारा 194 (मिथ्या साक्ष्य के कारण निर्दोष व्यक्ति को दोषसिद्ध ठहराना और उसको फांसी), धारा 302 (हत्या), धारा 303 (आजीवन कारावास के दंडादेश के अधीन किसी व्यक्ति द्वारा हत्या), धारा 305 (शिशु या उन्मत्त व्यक्ति की आत्महत्या का दुष्प्रेरण), धारा 307 (आजीवन सिद्धदोषी द्वारा हत्या का प्रयास, यदि उपहति कारित हुई है), 364क (फिरौती आदि के लिए व्यपहरण) और धारा 396 (हत्या सहित डकैती)। कतिपय अन्य विधियों जैसे स्वापक ओषधि और मन:प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (धारा 31क), विधि विरुद्ध क्रियाकलाप निवारण अधिनियम, 1967 (धारा 10 और धारा 16), नौसेना अधिनियम,1957 आदि में भी मृत्युदंड देने के लिए उपबंध हैं।

3. मृत्युदंड के विषय ने संयुक्त राष्ट्रसंघ का ध्यान 1957 के अंत में आकर्षित किया था। जब 12वीं संयुक्त राष्ट्र संघ महासभा की तीसरी समिति ने सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा के प्रारूप के अनुच्छेद 6 पर विचार-विमर्श आरंभ किया था और उसे उपांतरणों सहित अंगीकार किया था। 1979 में भारत ने अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा को मान लिया। अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा का अनुच्छेद 6(2) कहता है कि ऐसे देशों में, जिन्होंने मृत्युदंड समाप्त नहीं किया है, मृत्युदंड केवल अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जा सकता है।

4. मृत्युदंड से संबंधित अंतरराष्ट्रीय विधियां और मानक इस विषय पर स्पष्ट हैं और कथन करते हैं कि मृत्युदंड केवल विधिक मानकों का कड़ाई से पालन करने के पश्चात् अधिरोपित किया जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद् द्वारा 1984 में अंगीकार किए गए (ईसीओएसओसी संकल्प 50/1984) 'उनके अधिकारों के, जो मृत्युदंड का सामना कर रहे हैं, संरक्षण की गारंटी देने वाले रक्षोपाय' का रक्षोपाय 5 कथन करता है कि मृत्युदंड केवल ऐसी विधिक प्रक्रिया के पश्चात्, जो ऋजु विचारण सुनिश्चित करने के लिए सभी संभव रक्षोपाय, कम से कम उनके समान, जो अंतरराष्ट्रीय सिविल और राजनीतिक अधिकारों संबंधी प्रसंविदा के अनुच्छेद 14 में अंतर्विष्ट हैं, किसी कार्यवाहियों के सभी प्रक्रमों पर पर्याप्त विधिक सहायता देने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति के अधिकार भी सम्मिलित हैं, जिस पर किसी ऐसे अपराध के लिए, जिसके लिए मृत्युदंड अधिरोपित किया जा सकता है, संदेह किया गया है या उससे उसे आरोपित किया गया है, किसी सक्षम न्यायालय द्वारा दिए गए अंतिम निर्णय के अनुसरण में ही दिया जा सकता है।

5. आगे सूक्ष्मता से संयुक्त राष्ट्र आर्थिक और सामाजिक परिषद् द्वारा 1984 में अंगीकार किए गए रक्षोपायों में से रक्षोपाय 1 में कहा गया है कि 'ऐसे देशों में, जिन्होंने मृत्युदंड समाप्त नहीं किया है, मृत्युदंड अत्यधिक गंभीर अपराधों के लिए अधिरोपित किया जा सकता है, यह समझा जाता है कि उनका क्षेत्र घातक शस्त्र से किए गए साशय अपराधों या अन्य अत्यधिक गंभीर परिणामों वाले अपराधों से परे नहीं जाना चाहिए ।

6. भारत के विधि आयोग ने इस विषय की विस्तार से परीक्षा की है और अपनी 35वीं रिपोर्ट यह निष्कर्ष निकालते हुए प्रस्तुत की है कि 'यह सुझाव कि मृत्युदंड एक प्रयोग के रूप में समाप्त किया जा सकता है (जिससे कि उसे समाप्ति के पश्चात् पुन: प्रारंभ किया जा सके) एक तर्क है जिस पर हमने ध्यानपूर्वक विचार किया है ; किन्तु हमें कतिपय संभावनाओं का ध्यान रखना होगा। समाप्ति और पुन: प्रारंभ के बीच हिंसा का एक युग हस्तक्षेप कर सकता है - हम यह नहीं कहते कि यह निश्चित परिणाम है – किन्तु यह संभावना है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, उस स्थिति में असाध्य हानि न केवल ऐसी हिंसा के पीड़ितों को किन्तु समाज की सुरक्षा के सामान्य हेतुक को भी हो चुकी होगी। एक बार यदि विधि विरुद्धता की शक्तियों को ढीला छोड़ दिया जाता है तो मृत्युदंड के पुन: प्रारंभ करने से भी विधि और व्यवस्था को तुरंत प्रत्यावर्तित करने का वांछित प्रभाव नहीं हो सकता है। आगे संसद् सभी समय पर सत्र में नहीं हो सकती है और वह अंतराल, जो विधि के पुन: वास्तव में संशोधित किए जाने के पूर्व व्यपगत हो सकता है, सर्वनाशकर होगा। सभी अंतर्वलित विवाद्यकों पर विचार करने के पश्चात् हमारी यह राय है कि मृत्युदंड को देश की वर्तमान दशा में बनाए रखा जाना चाहिए'

7. 1973 में उच्चतम न्यायालय ने पहली बार जगमोहन सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य (एआईआर 1973 एससी 947) के मामले में मृत्युदंड की संवैधानिकता को बनाए रखा था। उसी वर्ष में दंड प्रक्रिया संहिता 1973 (1974 का 1) को अधिनियमित किया गया था। संहिता ने न्यायाधीशों से यह अपेक्षा की कि वे मृत्युदंड अधिरोपित करते समय विशेष कारणों को लिखें और उसने अपेक्षा की कि विचारण न्यायालय में आज्ञापक दंडादेश- पूर्व सुनवाई की जाए। ऐसी सुनवाई की अपेक्षा स्पष्ट थी क्योंकि वह न्यायाधीश का यह निष्कर्ष निकालने में सहायता करेगी कि क्या तथ्यों ने मृत्युदंड अधिरोपित करने के लिए किसी विशेष कारण की ओर इंगित किया है।

8. 1980 में उच्चतम न्यायालय ने पुन: बचन सिंह बनाम पंजाब राज्य (एआईआर 1980 एससी 898) के महत्वपूर्ण मामलें में मृत्युदंड की संवैधानिकता को बनाए रखा। उसमें यह संप्रेक्षण किया गया कि मानव जीवन की गरिमा के लिए वास्तविक और स्थायी चिंता विधि के माध्यम से जीवन लेने के विरोध की उपधारणा करती है। ऐसा विरले मामलों में से विरलतम के सिवाय, जब आनुकल्पिक विकल्प निश्चित रूप से प्रतिबंधित हो, नहीं किया जाना चाहिए।

9. 1991 में उच्चतम न्यायालय की संवैधानिक न्यायपीठ ने मृत्युदंड की संवैधानिकता को श्रीमती शशि नायर बनाम भारत संघ और अन्य (एआईआर 1992 एसीसी 395) में पुन: बनाए रखा। न्यायालय ने इस विवाद्यक पर पूर्व विनिर्णयों को उद्धत करते हुए और यह तर्क देते हुए कि देश में विधि और व्यवस्था की स्थिति और खराब हो गई है, इसलिए अब ऐसा अवसर नहीं है कि जब मृत्युदंड को समाप्त किया जाए, यह अभिनिर्धारित किया की कि भारत में मृत्युदंड के निष्पादन की पद्धति वैज्ञानिक और चिकित्सीय न्यायशास्त्र के अधीन कम से कम पीड़ादायक होते हुए, संविधान के अनुच्छेद 21 की अतिक्रामक नहीं है ।

10. मृत्युदंड भयपरतिकारी के रूप में कार्य करता है। यदि मृत्युदंड समाप्त कर दिया जाता है तो वह डर, जो जघन्य अपराधों को करते समय जनता के मार्ग में आता है, हट जाएगा, जिसका परिणाम अधिक बर्बर अपराधों में होगा। सभी दंडादेश समाज की सुरक्षा और संरक्षण के लिए तथा जनता के शांतिपूर्वक रहने के लिए दिए जाते हैं। जो कोई अत्यधिक नृशंस रीति से पूर्व चिंतन करके जघन्य अपराध करता है, उसको आजीवन कारावास या मानवीय आधार पर कम दंड दिए जाने की अनुज्ञा नहीं मिलनी चाहिए। क्योंकि वह उसके योग्य नहीं है।

11. तथापि मृत्युदंड पर स्थगन की मांग करने वाले संयुक्त राष्ट्र संघ के संकल्प की दृष्टि से , जिसे संयुक्त राष्ट्र महासभा की तीसरी समिति द्वारा अंगीकार किया गया है और जिसे विभिन्न यूरोपियन राष्ट्रों द्वारा अंगीकार किया गया है, यद्यपि भारत ने उक्त संकल्प के विरुद्ध मतदान किया है, सुधारात्मक उपाय के रूप में, यह समुचित हो सकता है कि माननीय उच्चतम न्यायालय के विनिर्णयों के समकक्ष

इस बारे में मार्गदर्शक सिद्धांत बनाए जाएं कि 'विरले मामलों में से विरलतम' का, जो भारतीय विधियों के अधीन मृत्युदंड का समर्थन करता है, गठन कैसे किया जाए।

12. ऊपर स्पष्ट की गई स्थिति को ध्यान में रखते हुए इस बारे में मामले की परीक्षा कराया जाना न्यायसंगत और उचित होगा कि मृत्युदंड से दंडनीय अपराधों की दोषसिद्धि की दशा में मृत्युदंड दिए जाने के लिए 'विरले मामलों में से विरलतम' का गठन कैसे होगा। उपर्युक्त की दृष्टि से यह रिपोर्ट किसी ऐसे बात की सिफारिश नहीं कर सकती, जो राज्य को भारत की संप्रभुता और अखंडता के हित में विधि बनाने से रोकने का प्रभाव रखती हो। दूसरे शब्दों में राज्य का हित सर्वोपरि महत्व का है और इस संबंध में की गई किसी सिफारिश को देश के हित का संरक्षण करने के लिए आवश्यक राज्य की शक्तियों पर निर्बंधन अधिरोपित करने के रूप में समझा जा सकता है।

13. आयोग, यदि समुचित समझे तो, मृत्युदंड पर अपनी रिपोर्ट में उपर्युक्त विचारों को सम्मिलित कर सकता है।

सादर,

भवदीय,

(डा0 संजय सिंह)

माननीय श्री न्यायमूर्ति ए.पी.शहा,

अध्यक्ष,

भारत का विधि आयोग,

नई दिल्ली

परिशिष्ट ग

प्रेम कुमार मल्होत्रा

सचिव

सत्यमेव जयते

भारत सरकार
विधि और न्याय मंत्रालय
विधि कार्य विभाग

अगस्त 31, 2015

अ.शा.सं0 31/08/2015-एलएस

माननीय अध्यक्ष महोदय,

यह उस विचार-विमर्श के अगले क्रम में है जो मैंने 27 अगस्त, 2015 को 'मृत्युदंड' संबंधी प्रारूप रिपोर्ट पर किया था। उसका अंतिम पाठ मुझे 29 अगस्त, 2015 की संध्या को प्राप्त हुआ था।

जैसा कि मैं दृढ़तापूर्वक अनुभव करता हूं कि हमारे देश में अभी मृत्युदंड की समाप्ति के लिए समय परिपक्व नहीं हुआ है। मैं इस विषय पर अपने विचार समाविष्ट करते हुए एक टिप्पण इस अनुरोध के साथ भेज रहा हूं कि उसे आयोग की रिपोर्ट के साथ संलग्न किया जाए।

सादर,

संलग्नक : यथा उपर्युक्त।

भवदीय,
(पी.के.मल्होत्रा)

माननीय श्री न्यायमूर्ति ए.पी.शहा,
अध्यक्ष,
भारत का विधि आयोग,
एच.टी. बिलडिंग,
नई दिल्ली

मुझे 'मृत्युदंड' पर प्रारूप रिपोर्ट, जो कि मुझे 23 अगस्त, 2015 को उपलब्ध कराई गई थी, पढ़ने का लाभ प्राप्त हुआ है। रिपोर्ट से संलग्न बैठक की सूचना कहती है कि इस रिपोर्ट पर आयोग में 26 और 27 अगस्त, 2015 को विचार किया जाएगा। मैं आयोग की बैठक में 26 अगस्त, 2015 को मंत्रालय में समयबद्ध अन्य कार्यों में पहले से व्यस्त होने के कारण उपस्थित नहीं हो सका। मुझे बताया गया कि आयोग की 27 अगस्त, 2015 को कोई बैठक नहीं है। तथापि मुझे प्रारूप रिपोर्ट पर विधि आयोग के माननीय अध्यक्ष के साथ 27 तारीख को विचार-विमर्श करने का अवसर प्राप्त हुआ।

सादर, मैं कहना चाहता हूं कि मैं इस सिफारिश पर सहमत होने में असमर्थ हूं कि मृत्युदंड को आतंक से भिन्न सभी अपराधों के लिए तुरंत समाप्त किया जाए। तथापि मैं इस विचार से सहमत हूं कि मृत्युदंड की समाप्ति अंतिम उद्देश्य है। मेरा यह सोचा-समझा हुआ विचार है कि हमारे देश में अभी इसकी समाप्ति के लिए समय परिपक्व नहीं हुआ है। यद्यपि मैं इस विषय पर अपने ब्यौरे वार विचार देना चाहता था किन्तु ऐसा करना संभव नहीं हो सका है, क्योंकि वर्तमान विधि आयोग की अवधि 31 अगस्त, 2015 को समाप्त हो रही है। अंतिम निष्कर्ष और सिफारिशें 29 अगस्त, 2015 की संध्या को उपलब्ध कराई गई थीं और आयोग 31 अगस्त, 2015 के पूर्व अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करना चाहता है। रिपोर्ट में उठाए गए सभी प्रश्नों के बारे में विचार व्यक्त करने का कठिनता से ही समय है। मैं इस विषय पर अपनी राय के समर्थन में संक्षिप्त कारण दूंगा।

किसी अपराध के कुछ निहितार्थ होते हैं और किसी व्यक्ति को, जो कोई अपराध करता है, कोई गलत कदम उठाने से पूर्व उसके परिणामों के बारे में सोचना चाहिए। यदि निहितार्थों को छोड़ा जाता रहेगा तो एक समय ऐसा आ जाएगा जब विधि विद्यमान नहीं रह जाएगी। किसी सिद्धदोषी को दंड दिया जाता है जिससे कि वह शेष मानवता के लिए उदाहरण बन जाता है और आचार भ्रष्ट मस्तिष्क को ऐसे अपराध करने से डराता है। अत: यदि ऐसा अपराध जो किसी दूसरे का जीवन लेने जैसा जघन्य है किया जाता है तो दंड को गंभीर होना होगा। ऐसे उदाहरण हो सकते हैं जहां आजीवन कारावास वांछित उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता है। ऐसे उदाहरण हैं जहां आजीवन कारावास को भुगतने वाले सिद्धदोषी को पेरोल दी जाती है और वे अपने पुराने मार्ग पर, समाज को हानि पहुंचाते हुए लौट आते हैं। इस बारे में दो राय नहीं हो सकती है कि अभियुक्त के अधिकारों का आदर किया जाए। किन्तु ये पीड़ित व्यक्ति हैं और समाज है जिनके अधिकारों को अपराधी के अधिकारों के ऊपर अधिमान मिलना चाहिए। पीड़ित के अधिकारों का अतिक्रमण और समाज की सुरक्षा के मूल्य पर जघन्य अपराध करने वाले अपराधी व्यक्ति के अधिकारों के बारे में सोचना अभियुक्त के साथ गलत रूप से सहानुभूति रखने के बराबर होगा। पूर्व अमरीकन राष्ट्रपति श्री जार्ज बुश ने अपने राष्ट्रपतीय विचार-विमर्शों में से एक में उल्लेख किया है कि मृत्युदंड का समर्थन करने का कारक यह है कि यह दूसरे व्यक्तियों का जीवन बचाता है। सर जेम्स एफ. स्टीफन, एक विख्यात न्यायविद्, ने कहा है कि कोई अन्य दंड व्यक्ति को अपराध करने से इतने प्रभावी रूप से नहीं डराता है जितने कि मृत्युदंड। उसके अनुसार यह उन प्रतिपादनाओं में से एक है जिसे साबित करना केवल इस कारण कठिन है क्योंकि वह स्वयं उससे अधिक स्पष्ट हैं, जितना कि कोई सबूत उसे बना सकता है। किसी दूसरे दंड में, चाहे वह कितना भी भयानक हो, एक आशा होती है। किन्तु मृत्यु तो मृत्यु है, इसके क्षेत्रों को अधिक शक्तिशाली रूप से वर्णित नहीं किया जा सकता है।

संसद् ने, जो जनता की इच्छा का प्रतिबिंब होती है, स्त्रियों के विरुद्ध, इतने विलंब से कि, 2013 में कतिपय अपराधों के लिए मृत्युदंड के साथ एक विधि पारित की है। हाल में सरकार ने संसद् में विमान अपहरण विरोधी विधेयक पुर:स्थापित किया है, जहां उसने विमान अपहरण के कतिपय अपराधों के संबंध में मृत्युदंड प्रस्थापित किया है। यह देखना रोचक है कि इस विधि को विमान अपहरण विधि के बारे में कार्य करने वाले बीजिंग प्रोटोकाल पर आधारित रूप में संशोधित किया जा रहा है। संसदीय स्थायी समिति ने भी, विमान अपहरण विरोधी विधेयक पर अपनी रिपोर्ट में, यह कहा है कि एक व्यापक और सुदृढ़ विमान अपहरण विरोधी विधि की इस समय आवश्यकता है। विधेयक के उपबंधों के प्रति निर्देश करते हुए, जो किसी बंधक व्यक्ति या किसी सुरक्षा कार्मिक की मृत्यु की दशा में दंड विहित करते हैं, समिति ने यह कहा है कि सशस्त्र हस्तक्षेप के मामले में कार्मिक की या तो आरपार की गोला बारी के कारण या विस्फोटक फेंकने से या वायुयान के भूमि अथवा जल पर टूटकर गिर जाने से मृत्यु हो सकती है। समिति ने अनुभव किया कि ऐसी घटना की दशा में, जिसका परिणाम विमान अपहरण के अपराध के सीधे परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की मृत्यु में होता है, अपराधी पर अधिकतम दंड अधिरोपित किया जाना चाहिए। अत: उसने प्रस्तावित विधेयक में उस दशा में मृत्युदंड का उपबंध करने के लिए, जहां विमान अपहरण के अपराध के सीधे परिणामस्वरूप किसी व्यक्ति की, जिसके अंतर्गत बंधक व्यक्ति या सुरक्षा कार्मिक भी है, मृत्यु होती है, और संशोधन करने का सुझाव दिया है। संसद् की इच्छा दर्शित करती है कि देश में विद्यमान स्थिति को देखते हुए भारतीय समाज अभी मृत्युदंड के पूर्ण रूप से समाप्त किए जाने के लिए परिपक्व नहीं हुआ है।

मृत्युदंड पर विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट में यह विनिर्दिष्ट रूप से कहा गया है कि विद्यमान सामाजिक- आर्थिक, सांस्कृतिक विरचना (जिसके अंतर्गत शिक्षा का स्तर और अपराध की दरें भी हैं) के पिछले विश्लेषण के आधार पर और किसी आनुभविक अनुसंधान के न होने पर, मृत्युदंड को देश की वर्तमान स्थिति में बनाए रखा जाना चाहिए। हमारे लिए समुचित अनुक्रम यह होगा कि हम विद्यमान सामाजिक- आर्थिक सांस्कृतिक विरचना का विश्लेषण करें और यह देखने के लिए आनुभविक अनुसंधान करें कि क्या वह वातावरण, जो 1967 में था, जब विधि आयोग की 35वीं रिपोर्ट दी गई थी, परिवर्तित हो गया है और यदि वह परिवर्तित हो गया है तो क्या वह अच्छे के लिए हुआ है या खराब के लिए।

भारतीय दंड संहिता की धारा 364क को फिरौती के लिए अपहरण और व्यपहरण की घटनाओं में वृद्धि के कारण 1993 में निगमित किया गया था। उसके कुछ ही समय बाद इस उपबंध को संशोधित करना पड़ा, क्योंकि भारत ने बंधक व्यक्तियों को पकड़ लेने के विरुद्ध अंतरराष्ट्रीय कंवेंशन को अंगीकार किया था, जिसे संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा ईरानी बंधकों के संकट की पृष्ठभूमि

में अंगीकार किया गया था, चूंकि भारत ने उक्त कंवेंशन को अंगीकार करने का विनिश्चय किया था। अत: भारतीय दंड संहिता की धारा 364क को ऐसी स्थितियों को, जहां अपराध विदेशी राज्य या अंतरराष्ट्रीय अंत:सरकारी संगठन को विवश करने या कोई कार्य करने से अनुपस्थित रहने या फिरौती का संदाय करने के लिए विवश करने की दृष्टि से किया गया है, उसके अंतर्गत लाने के लिए उसके क्षेत्र का विस्तार करते हेतु संशोधित किया गया था। इस उपबंध की विधिमान्यता को उच्चतम न्यायालय द्वारा बनाए रखा गया। सर्वोच्च न्यायालय ने विक्रम सिंह बनाम भारत संघ (डीओजे 21.8.2015) के मामले में यह कहा कि दंड अपराध से आनुपातिक होना चाहिए, जिसे आपराधिक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धांत के रूप में संपूर्ण विश्व में स्वीकार किया गया है। सर्वोच्च न्यायालय के अनुसार दंड संहिता द्वारा विहित दंड सामाजिक आवश्यकताओं, संबंधित अपराध की गंभीरता, समाज पर उसके प्रभाव और यह कि विधान मंडल विशिष्ट अपराध के लिए दंड के रूप में क्या उपयुक्त समझता है, की विधायी मान्यता को प्रतिबिंबित करता है। न्यायालयों के लिए उस विधायी बुद्धिमत्ता को ग्रहण करना और उसका आदर करना आवश्यक है। भारतीय दंड संहिता की धारा 364क की संवैधानिकता को बनाए रखते हुए न्यायालय ने निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया :-

> 'हम पाते हैं कि भारतीय दंड संहिता की धारा 364क को लाने की आवश्यकता प्रारंभ में फिरौती के लिए अपहरण और व्यपहरण की घटनाओं में वृद्धि के कारण उत्पन्न हुई। यह विधि आयोग द्वारा की गई सिफारिशों से स्पष्ट है, जिनके प्रति हमनें इस निर्णय के पूर्ववर्ती भाग में निर्देश किया है। जब वे सिफारिशें सरकार के पास लंबित थीं, आतंकवाद के पिशाच ने न केवल नागरिकों की सुरक्षा और रक्षा को, किन्तु देश की संप्रभुता और अखंडता को भी भयभीत करते हुए सिर उठाना आरंभ कर दिया था, जिससे उस पर रोक लगाने के लिए, जो किसी देश को अस्थिर करने की संभावना रखता था, पर्याप्त अध्युपाय करने के लिए मांग की गई। आतंकवाद की अंतरराष्ट्रीय विमाओं की उपधारणा करते हुए, विधि को और संशोधित करने की आवश्यकता उठी, जिसके परिणामस्वरूप वर्ष 1994 में धारा 364क में संशोधन किया गया। 'फिरौती के लिए अपहरण और व्यपहरण, न केवल धनीय लाभ के लिए साधारण अपराधियों द्वारा या आर्थिक लाभ के लिए संगठित क्रियाकलाप के रूप में आतंकवादी संगठनों द्वारा भी दी गई चुनौतियों के क्रमिक विकास ने, भारतीय दंड संहिता की धारा364क के निगमन को और ऐसी कार्यवाहियों में लगने वाले व्यक्तियों के लिए कठोरतम दंड को आवश्यक बनाया है। उस पृष्ठभूमि को देखते हुए, जिसमें विधि अधिनियमित की गई थी और संसद् द्वारा नागरिकों की रक्षा और सुरक्षा, देश की संप्रभुता और अखंडता के लिए दर्शित चिंता को देखते हुए धारा 364क के विरोध में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए विहित दंड को अपराध की प्रकृति से इतना अधिक अननुपातिक के रूप में काटा-छांटा नहीं जा सकता, जिससे कि उसे असंवैधानिक घोषित किया जाए, ठीक इसलिए कि मृत्यु का दंड एक संभव दंड है, जिसे समुचित मामलों में दिया जा सकता है, इसे स्वत: अमानवीय या बर्बरतापूर्ण नहीं बनाया जा सकता। साधारण क्रम में और ऐसे मामलों में, जो विरले मामलों में से विरलतम कहलाए जाने के योग्य हैं, मृत्यु केवल वहीं दी जा सकती है जहां अपहरण या व्यपहरण के परिणामस्वरूप अपराध के किए जाने के क्रम में पीड़ित या किसी अन्य व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। ऐसी वास्तविक स्थितियां, जहां वह कार्य, जिससे अपराधी को आरोपित किया गया है, हमारे संघीय, पंथ निरपेक्ष और प्रजातांत्रिक विरचना के मर्म को धमकी देने वाला आतंकी कार्य साबित हो जाता है, केवल अन्य संभवतया ऐसी स्थितियां हो सकती हैं, जहां न्यायालय चरम दंड देने पर विचार कर सकते हैं। न्यायालयों द्वारा उन अपराधों के लिए, जो धारा 364क के विरुद्ध आते हैं, विहित दो दंडादेशों में से एक का चयन करने के न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग नि:संदेह न्यायिक रूप से मान्यताप्राप्त आधारों पर किया जाएगा और मृत्युदंड विरले मामलों में से विरलतम में ही दिया जाएगा किन्तु ऐसे चरम और विरले मामलों में से विरलतम में मृत्यु से कम, अपहरण या व्यपहरण के साबित हुए मामले में आजीवन कारावास ऐसा नहीं होगा कि उसे बर्बरतापूर्ण या अमानवीय वर्णित किया जाए, जिससे कि संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन गारंटीकृत जीवन के अधिकार का उल्लंघन होता हो।

मेरा विचार है कि आर्थिक विकास, शिक्षा के स्तर में सुधार के बावजूद अपराध की दरों में और समग्र रूप से सांस्कृतिक अवनति में वृद्धि हुई है। मेरा विचार है कि आतंकवाद का खतरा आज उससे अधिक है जो 1967 में था जब विधि आयोग ने मृत्युदंड

पर अपनी 35वीं रिपोर्ट दी थी। मुक्तिधन के लिए अपहरण और व्यपहरण के मामलें धनीय लाभ के लिए या संगठित क्रियाकलाप के रूप में आर्थिक लाभ के लिए बढ़ रहे हैं। नागरिकों की रक्षा और सुरक्षा और देश की एकता, संप्रभुता और अखंडता सर्वोच्च महत्व के हैं। कदाचित इन्हीं कारणों से संसद् ने अपनी बुद्धिमत्ता से हाल ही में पिछले दिनों में पारित की गई बहुत सी विधियों में स्वयं को आजीवन कारावास या कमतर दंड देने से नियंत्रित करते हुए मृत्युदंड के लिए उपबंध किया है।

यह कहना सही नहीं है कि मृत्युदंड का विहित किया जाना बदले की हत्या या आदिकालीन या बर्बरतापूर्ण हत्या में संलिप्त होना है। जब किसी मृत्युदंड को विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए दिया जाता है तो वहां उचित नियंत्रण होते हैं। यह विधि प्रणाली में पर्याप्त रूप से अंत: निर्मित है। जब मृत्युदंड विचारण न्यायालय द्वारा अधिरोपित किया जाता है, तो वह उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किए जाने के अधीन है, जहां अभियुक्त व्यक्ति अपनी प्रतिरक्षा को प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त करता है। अभियुक्त को उच्चतम न्यायालय को अपील के रूप में दूसरा अवसर प्राप्त होता है। मृत्युदंड से संबंधित विनिश्चिय/निर्णय की कभी कारण न देने वाले आदेश द्वारा पुष्टि नहीं की जाती है। विद्यमान पद्धति को ध्यान में रखते हुए अभियुक्त व्यक्ति साधारणतया सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष सुधारात्मक याचिका की तुलना में पुनर्विलोकन याचिका प्रस्तुत करने को अधिमान देता है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विचारण न्यायालय द्वारा सिद्धदोष के पश्चात्, अभियुक्त व्यक्ति को उच्चतर न्याय मंच के समक्ष मृत्युदंड के विरुद्ध अपने मामले में तर्क देने के लिए 4 अवसरों से अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। यदि सर्वोच्च न्यायपालिका अपनी बुद्धिमत्ता से मृत्युदंड का निर्णय उलटने में कोई गुणागुण नहीं पाती है, तो ऐसा मामला स्पष्ट रूप से सिद्धांतों के अनुसार, जिन पर विभिन्न मामलों में विचार-विमर्श किया गया है और आयोग की इस रिपोर्ट में विचार-विमर्श किया गया है, विरले मामलों में से विरलतम मामलों में आता है। अपराधी के लिए उपचार का अंत यहीं नहीं होता है। उसे राष्ट्रपति और राज्य के राज्यपाल के समक्ष भी दया याचिका फाइल करने का अवसर प्राप्त होता है। यह नहीं कहा जा सकता कि ये सभी प्राधिकारी, जो सर्वोच्च स्तर पर कार्य कर रहे हैं और संवैधानिक कृत्य का निर्वाह कर रहे हैं, अभियुक्त व्यक्ति द्वारा उपभोग किए गए अधिकारों के प्रति असावधान हैं। यदि ऐसे सभी प्राधिकारी इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अभियुक्त व्यक्ति को अवश्य ही मृत्युदंड द्वारा दंडित किया जाना चाहिए तो उसे किसी भी कल्पना द्वारा राज्य द्वारा 'बदले की हत्या' नहीं कहा जा सकता।

यह कहना गलत है कि विधानमंडल द्वारा उपबंधित न्यायिक विवेकाधिकार बिना मार्गदर्शन के या अनियंत्रित है। उच्चतम न्यायालय स्वयं बचन सिंह के मामले (1980) में इस विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, ऐसे मामलों में जहां अवश्य ही मृत्युदंड दिया जा सकता है, आज्ञापक दंडादेश-पूर्व की सुनवाई के प्रक्रम की अपेक्षा करता है। बचन सिंह के मामले में विकसित 'विरले मामलों में से विरलतम' का वर्गीकरण मृत्युदंड के मामलों पर निर्बंधन लगाने के लिए आशयित था। बरियार के मामले (2009) में, न्यायालय ने मनमानेपन की समस्या का और हल दिया। न्यायाधीशों को सिद्धदोषी के सुधार की संभावना को ध्यान में रखना होगा और उस पर विचार करना होगा। जब तक कि अभियोजन यह स्थापित करने में समर्थ न हो कि सिद्धदोषी सुधार से परे है, तब तक न्यायालय वास्तव में मृत्युदंड नहीं दे सकते हैं।

संसद् ने अपनी बुद्धिमत्ता से केवल जघन्य अपराधों में मृत्युदंड को विहित किया है। इस समय की आवश्यकता इसे बनाए रखने की किन्तु मृत्युदंड को विरले मामलों में से विरलतम में दिए जाने की शक्ति का प्रयोग करने की है। हमारे पास एक स्पंदनशील न्यायपालिका है, जिसका संपूर्ण विश्व में आदर किया जाता है। हमें अपने न्यायाधीशों की बुद्धिमत्ता में विश्वास रखना चाहिए कि वे इस शक्ति का प्रयोग केवल उसके योग्य मामलों में, जिनके लिए विधि विभिन्न निर्णयों में भली-भांति अभिनिर्धारित की गई है और इस रिपोर्ट में विचार-विमर्श किया गया है, प्रयोग करेंगे।

उन कारणों से, जिन पर मुख्य रिपोर्ट में विचार-विमर्श किया गया है, मैं इस बात से सहमत हूं कि मृत्युदंड का समाप्त किया जाना अंतिम उद्देश्य है, किन्तु मेरा यह सोचा-समझा हुआ दृष्टिकोण है कि हमारे देश में अभी तक इस स्थिति में इसको समाप्त करने के लिए समय परिपक्व नहीं हुआ है।

(पी. के. मल्होत्रा)

पदेन सदस्य,
भारत का विधि आयोग